THE UNIVERSITY OF JAMMU AND KASHMIR
UNIVERSITY LIBRARY
JAMMU
Class No. 635-977324
Book No. K9
Accession No. 72279

6/5
The University of Jammu and Kashmir
UNIVERSITY LIBRARY
722
Pg 101

पौधों का जीवन

[Translated into Hindi from Sir Frederick Keebles, book, 'Life of Plants' published by Geoffrey Cumberlege for the Oxford University Press, Amen House, E. C. 4., 1946 edition.]

एसर प्लैटेनाइडीज (Acer platanoides), एक वर्ष की वृद्धि प्रदर्शित करते हुए ।

हिन्दी समिति ग्रंथमाला-संख्या--१४४

पौधों का जीवन

मूल लेखक
सर फ्रेडरिक कीबिल्
भूतपूर्व प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान
ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय

अनुवादक
नारायण सिंह परिहार
रीडर, वनस्पति विज्ञान
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

हिन्दी समिति
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

PLANTS

प्रथम संस्करण
१९६७

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
की मानक ग्रंथ योजना के अंतर्गत प्रकाशित

मूल्य
पांच रुपये
५·००

The University of Jammu
LIBRARY
Acc. No. 72279
JAMMU

581
K23P

मुद्रक
प्रेम प्रेस, प्रयाग

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रंथ अधिक से अधिक संख्या में तैयार किये जायँ। भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ में सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर संपन्न करने की योजना बनायी है। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाये जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से प्रारम्भ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन कर रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नये साहित्य में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

'पौधों का जीवन' नामक पुस्तक हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक सर फ्रेडरिक कीबिल् और अनुवादक श्री नारायण सिंह परिहार हैं। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायेगा।

वी० एन० प्रसाद
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

प्रकाशकीय

हरे पौधों का साधारण जीवन स्थिर और निश्चल होता है। वे भूमि और वायुमंडल दोनों का अनुसंधान करने की स्थिति में होते हैं––भूमि से वे खनिज पदार्थों के अतुल भंडार तथा वायुमंडल से अन्य आवश्यक पदार्थ एवं ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार पौधों की दुनिया अन्य जीव-जन्तुओं की दुनिया से प्रायः भिन्न रहती है। इस भिन्नता की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पौधे बिना हाथ-पैर के चलते-फिरते हैं, बिना नेत्रों के देखते हैं तथा मस्तिष्क या स्नायु-प्रणाली के बिना अपना रास्ता ढूंढ लेते हैं। जब तक पौधे सबसे पहले किसी भूभाग पर अपना अधिकार नहीं करते, तब तक अन्य जीव-जन्तु भी वहाँ अपना आवास नहीं बनाते। सच तो यह है कि मिट्टी की उर्वरता को पौधों की सक्रियता का स्मारक कहना अधिक उचित होगा। मनुष्य और जीव-जन्तु खाद्य के लिए पौधों पर निर्भर रहते हैं, क्योंकि हरे पौधे खाद्य पदार्थों का निर्माण करते हैं, जिनसे स्वयं उनका तथा सम्पूर्ण जीव-जगत् का पोषण होता है। जीव-जगत् के प्रति पौधों के उपकारों की एक लम्बी और रोचक कहानी है। प्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री सर फ्रेडरिक कीबिल् ने पौधों की इसी कहानी का सरस वर्णन अपनी सुविख्यात पुस्तक 'लाइफ आफ प्लांट्स' में किया है। इस पुस्तक में पौधों का जन्म, विकास, प्रजनन, उपनिवेश, प्रागैतिहासिक फासिलों, उनके द्वारा अवशोषित और विकीर्ण ऊर्जा आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए सभी प्रकार की जिज्ञासाओं का सुन्दर समाधान किया गया है।

उपर्युक्त पुस्तक के प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तर में मूल लेखक की सहज-ग्राह्य सरल शैली एवं भावों को ज्यों का त्यों रखने का प्रयास किया गया है। आशा है, यह पुस्तक वनस्पति-शास्त्र के छात्रों तथा अन्य सभी जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

लीलाधर शर्मा, 'पर्वतीय'
सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

अध्याय — पृष्ठ

१—संसार में पौधों द्वारा संचालित कार्य। उच्च और निम्न कोटि के पौधे; एककोशिक और बहुकौशिक। पुष्पी पादप। स्थल वनस्पति की उत्पत्ति। प्लवक और नितल जीवी। संसार की वाटिका। १

२—वनस्पति जगत् और उसके सदस्य हरित और अहरित पौधे (कवक और जीवाणु)। गेहूँ का दाना: संघटन: अंकुरण। संसार की गेहूँ की फसल। .. १९

३—हरे पौधे द्वारा खाद्य-पदार्थों का निर्माण। कच्चे पदार्थ: खनिज लवण, पानी और कार्बन डाइऑक्साइड। मूल द्वारा जल और खनिज लवण का अवशोषण। जल और बालुकी संबर्ध। साधारण हरे पौधे और फलीदार पौधों के नाइट्रोजन का स्रोत। मूल ग्रंथिका और नाइट्रोजन यौगिकीकरण। हरी पत्ती द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण। कच्चे पदार्थ के संग्रह कार्य के सम्बन्ध में मूल, स्तम्भ और पत्ती। . ४१

४—हरी पत्ती द्वारा विकीर्ण ऊर्जा का अवशोषण। हरित लवक और अवर्णी लवक। पर्णहरित युक्त ऊतक: खंभ ऊतक और स्पंजी मृदूतक। पर्णहरित के रासायनिक तथा भौतिक गुण। कार्बोहाइड्रेट का प्रकाश-संश्लेषण: और कार्बनिक नाइट्रोजन यौगिकों का संश्लेषण। नाइट्रीकारी जीवाणु। ६३

५—खाद्य पदार्थों का संचालन। कार्बोहाइड्रेटों और प्रोटीनों के भौतिक तथा रासायनिक गुण। विसरण। परासरण: परासरण दाब। कोलॉइड और अकोलॉइड: कोलॉइडी अवस्था। एन्जाइम और संचालन में उनका भाग मल और स्तम्भ को संवाहन प्रणाली। ८५

६—रचना और शक्ति-उत्पादन के लिए खाद्य-पदार्थों का उपयोग। कोशिकाओं और ऊतकों के विभेदन और वृद्धि। श्वसन। वायुजीवी और अवायुजीवी जीवन। किण्वन और क्षय। स्वावलंबी (स्वपोषित) और परावलंबी परपोषित) पुष्पी पौधे। मृतजीवी, परजीवी, अर्ध परजीवी। सहजीवन। कीटाहारी पादप। १२४

अध्याय पृष्ठ

७—स्थल पादप का वातावरण : जल प्रदाय और सूर्य का प्रकाश। रंध्र, गैसों के विनिमय के नियंत्रक। रंध्र-गति की क्रियाविधि। वाष्पोत्सर्जन का पौधों की उपापचय व्यवस्था में महत्व। वाष्पोत्सर्जन धारार (रसारोहण।) १५१

८—विभिन्नता और आनुवंशिकता : विकास। जनन; अलैंगिक तथा लैंगिक। कोशिका और केन्द्रकीय विभाजन : गुणसूत्र आनुवंशिकता के भौतिक आधार के रूप में। पौधों और जन्तुओं का प्रयोगात्मक प्रजनन। मेन्डेलीय वंशागति। १७६

९—पादप राष्ट्रमंडल और उसका शासन; पादप का एकीकरण; छुईमुई का पौधा; उद्दीपन और उत्तेजन; ग्राही और प्रेरणा चालक; उत्तेजन का पारगमन; रासायनिक संदेशवाहक (हार्मोन)। २०८

अध्याय १

विषय-प्रवेश

संसार में पौधों द्वारा संचालित कार्य। उच्च और निम्न वर्ग के पौधे: एककोशिक और बहुकोशिक। पुष्पी पौधे। स्थल वनस्पतियों की उत्पत्ति। परिप्लावी और समुद्रतलजीवी। संसार की वाटिका

पौधों का अध्ययन एक दूसरे ही जगत् की जिज्ञासापूर्ण खोज के समान है जिसके निवासी जन्तुओं की दुनिया से विचित्र रूप में भिन्न होते हैं। पौधों की दुनिया के सदस्य बिना मुख के खाते हैं, बिना हाथ-पैर के चलते-फिरते हैं, बिना नेत्रों के देखते हैं, और मस्तिष्क या स्नायु-प्रणाली की सहायता के बिना विश्व में अपना मार्ग ढूंढ़ लेते हैं।

पृथ्वी की खोज तथा भूमि के संस्थापन में पौधे अग्रगामी हैं और जन्तु केवल उनके अनुगामी मात्र हैं। पौधों की दुनिया अग्रगामियों की दुनिया है। इसके सदस्य मार्ग बनाते हैं, और जब पौधे किसी भूमि पर अधिकार कर चुके होते हैं तो उसके बाद ही जन्तु उस पर अपना अधिकार जमा सकते हैं। पौधे नये भूभागों पर उपनिवेश ही नहीं बनाते बल्कि उन्हें उर्वर भी करते हैं। किसी चूने के पत्थर की चट्टान के बंजर तल पर भी खाकी और पीले लाइकेन (lichens) अपना पैर जमाते हैं, शिला के धरातल में प्रवेश करते हैं और वर्षा, बहता पानी, पाला, बर्फ और पवन आदि द्वारा उसे तोड़ने फोड़ने के कार्य में प्रकृति की शक्तियों की सहायता करते हैं और शिला से खनिज-मलवा (debris) उत्पन्न करते हैं, जो मिट्टी का प्रारम्भिक रूप है। जब तक कुछ सरलतर और अल्प प्रयासी पौधे कई पीढ़ियों तक मिट्टी पर उपनिवेश नहीं बना चुके होते तथा वहाँ जीवित रह कर मृत नहीं हुए होते तब तक वह वनस्पति-जगत् की उच्च किस्मों के निर्वाह के लिए यथेष्ट उर्वर नहीं होती। मिट्टी की उर्वरता, पौधों की सक्रियता का स्मारक है। पौधों द्वारा उत्पन्न भूमि की उर्वरता भी उन्हीं के द्वारा स्थिर रहती है। ऐसी भूमि जहाँ से सब हरियाली हटा दी गयी हो, कुछ दिनों में उस ऊसर अवस्था में पहुँच जायगी जिसमें वह हरियाली उगने से पहले थी।

पौधे सारी दुनिया के खाद्य प्रदाता हैं; वे—बल्कि उनमें से कुछ, और विशेषतया हरे पौधे—खाद्य-पदार्थ निर्माण की शक्ति रखते हैं, जिस पर उनका अपना तथा सारे

जन्तु जगत् का पोषण निर्भर करता है। निर्माण के प्रक्रम के लिए, जिसके अनेक महत्त्वपूर्ण ब्योरे को मनुष्य ने आविष्कृत कर लिया है और वह कुछ सीमा तक उनका अनुकरण कर सकता है, अन्य सब निर्माणों की तरह, कच्चे पदार्थ तथा शक्ति के स्रोत की आवश्यकता होती है। खाद्य पदार्थ, जिन्हें हरे पौधे निर्मित करते हैं, मुख्यतः दो किस्मों—शर्करा एवं प्रोटीन—के होते हैं। इनमें शर्करा तो तीन तत्त्वों, कार्बन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन से निर्मित होती है और प्रोटीन ऊपर लिखे सब तत्त्वों और नाइट्रोजन से निर्मित होता है। शर्करा के निर्माण में हरे पौधों द्वारा प्रयुक्त कच्चे पदार्थ, जल और कार्बन डाइऑक्साइड हैं जो पृथ्वी पर प्रचुरता से सुलभ और सरल पदार्थ हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त ऊर्जा (energy) सूर्य की विकीर्ण ऊर्जा है। जिस प्रकार निर्माण के प्रक्रम में कच्चे पदार्थ लुप्त हो जाते हैं, उसी तरह ऊर्जा भी लुप्त हो जाती है। किन्तु वास्तव में न तो वे तत्त्व ही नष्ट होते हैं जिनसे कच्चे पदार्थ निर्मित होते हैं और न वह ऊर्जा ही नष्ट होती है। वे निर्मित खाद्य पदार्थ में उस समय तक बने रहते हैं जब तक कुछ समय में, इन पदार्थों में एक या दूसरा, जैसे नमूने के लिए शर्करा, ऑक्सीजन से संयुक्त हो कर जलने की क्रिया नहीं करता, जब कि वे मौलिक कच्चे पदार्थ जिनसे वह निर्मित हुआ था, उत्पन्न होते हैं और शर्करा में स्थितिज (potential) ऊर्जा स्वतंत्र हो कर बाहर निकलती है। इस तरीके से निर्मित खाद्य पदार्थ जीवित प्राणियों द्वारा प्रयुक्त ऊर्जा प्रदान करते हैं। सूर्य केवल भाप का इंजन ही नहीं चलाता, जैसे जार्ज स्टिफेंसन ने कहा था, बल्कि वह इसी प्रकार सजीव इंजन—अर्थात् पौधे और जन्तु को भी संचालित करता है।

जहाँ तक भाप के इंजन का संबंध है, उसकी ऊर्जा के स्रोत की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है: बहुत ही प्राचीन काल में (इतिहास की घटना से भी पहले—प्रागैतिहासिक काल में) जो पौधे नदियों के समुद्री मुहानों के निकट उत्पन्न हुए थे उन की पत्तियों पर सूर्य चमकता था। किसी पत्ती पर जो विकीर्ण ऊर्जा गिरती थी, उसका कुछ अंश हरे ऊतकों (tissues) (एक ही तरह की और एक ही काम में लगी हुई कोशिकाओं के समूह जो कोशिकाओं की दीवाल या अन्य वस्तुओं से परस्पर बँधी होती हैं) द्वारा अवशोषित होती थी और शर्करा के निर्माण के कार्य में काम आती थी। शर्करा का अधिक भाग पौधे द्वारा ही अपने जीवन काल में प्रयुक्त होता था किन्तु कुछ भाग अपेक्षाकृत थोड़े रासायनिक परिवर्तन में पड़ कर काष्ठ के कंकाल का भाग बन गया। अन्त में पेड़ मृत हो गया और कीचड़ वाली गीली मिट्टी में गिर पड़ा और सड़ान द्वारा बर्बादी का कार्य पूरा होने से पहले ही पौधा कीचड़ की समाधि में संरक्षित हो गया तथा कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन, जो सूर्य की ऊर्जा और पौधे की सक्रियता से पहले

संयुक्त थे, अब भी संयुक्त पड़े रहे, यद्यपि समय के व्यतीत होने पर हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का कुछ भाग नष्ट हो गया और पौधे के अवशेष अधिक से अधिक कार्बन रूप होते गये। सूर्य से प्राप्त हुई ऊर्जा उसके अन्दर ही उस समय तक सुप्त पड़ी रही, जब तक कि भाप के इंजन की भट्ठी में पत्थर का कोयला ऑक्सीजन से संयुक्त नहीं होता, और दुबारा जल और कार्बन डाइऑक्साइड निर्मित नहीं करता, तथा बहुत दिनों से संचित शक्ति को मुक्त नहीं करता; और इस लिए बाहर निकलने वाली भाप के संगीत में इतिहास के युग प्रारम्भ होने से भी बहुत पहले हरी पत्ती पर सूर्य की किरणें पड़ने की घटना की प्रतिध्वनि है।

पौधों के पोषण का अध्ययन इस तथ्य को भी प्रकट करता है—जो किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए आश्चर्य की बात हो सकती है जो पौधों और जन्तुओं के मध्य भिन्नताओं का विचार करने के अभ्यस्त हैं—कि अपने ऊतकों की रचना में पौधों द्वारा प्रयुक्त पदार्थ उसी प्रकार के होते हैं जैसे जन्तुओं द्वारा प्रयुक्त पदार्थ होते हैं और पादप जगत् और जन्तु जगत् दोनों ही द्वारा जीवन के कार्य में प्रयुक्त शक्ति एक ही अंतिम स्रोत से पैदा होती है। हरा पौधा ऊर्जा का संचायक है। शर्करा या उससे बनने वाले अन्य खाद्य पदार्थ का प्रत्येक अणु ऐसी उत्कृष्टता की संचायक बैटरी के समान माना जा सकता है कि उसके अणु का जब विघटन होता है तभी ऊर्जा का संचय मुक्त होता है। सूर्य के प्रकाश में रहने वाले पौधों द्वारा इतनी अधिकता से निर्माण-कार्य होता है कि उत्पन्न हुए पदार्थ न केवल स्वयं उनके शरीर का ढाँचा तथा जन्तुओं के शरीर का कंकाल बनाने के लिए ही पर्याप्त होते हैं बल्कि दोनों ही दुनिया को ऊर्जा प्रदान करने के लिए भी पर्याप्त होते हैं।

पौधों के जगत् द्वारा जंतु-जगत् के प्रति उपकारों के इस वर्णन में वृद्धि करते जाना असंभव जान पड़ता है; किन्तु आधुनिक आविष्कारों ने यह प्रकट किया है कि यह किसी प्रकार पूर्ण नहीं है। पौधों द्वारा प्रदान किये हुये खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त, जो जन्तुओं के लिए शरीर रचना और ऊर्जा स्रोत का कार्य करते हैं, अन्य खाद्य-पदार्थ भी इससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जो प्राकृतिक अवरोधक औषधियों का कार्य करते हैं। यदि वे जन्तुओं के खाद्य में विद्यमान रहते हैं तो शरीर का स्वास्थ्य रक्षित रहता है; किन्तु यदि वे विद्यमान न हों तो उसका परिणाम अपर्याप्त पोषण और अव्यवस्थित वृद्धि होता है। ये सहायक खाद्य-वस्तुएँ या विटामिन प्रत्येक अवस्था में मुख्यतः पौधों की उत्पन्न की हुई होती हैं, यद्यपि यह विचित्र बात है कि यह भली भाँति ज्ञात नहीं है कि, स्वयं पौधों की वृद्धि के नियंत्रण में उनका कहाँ तक हाथ होता है।

यह तथ्य बहुत दिनों से ज्ञात रहा है कि ताजी सब्जियाँ स्वास्थ्यवर्धक होती

हैं। इसका अभिलेख है कि नेलसन जब फ्रांसीसी बन्दरगाहों की वर्षों तक नाकाबन्दी के लिए अपना महान जहाजी बेड़ा समुद्र में रखे रहा, तो उसने व्यायाम और प्याज द्वारा अपने नाविकों का स्वास्थ्य सुरक्षित रखा; और यह इतिहास की घटना है कि कप्तान कुक ने अपनी यात्राओं में स्कर्वी रोग से बचाव में ताजी सब्जियों को बहुत उपयोगी पाया। इस प्रकार के संकेतों से विज्ञान ने पौधों के ऊतकों के अन्दर स्थित पदार्थों की परख और पृथक्करण कर एक नये प्रकार के खाद्य-पदार्थों का आविष्कार किया है जो शरीर की वृद्धि और स्वास्थ्य के नियंत्रण का कार्य करते हैं, और ऐसा करने में विज्ञान ने यह प्रकट किया है कि पौधों के प्रति जन्तुओं का खाद्य-सम्बन्धी ऋण उतने से कहीं अधिक है जितना पहले माना जाता था।

पौधे संसार के स्वास्थ्य-मन्त्रणालय के कर्मचारियों के सदृश हैं। वे इसके विशेषज्ञ भी हैं। सरल संगठन के पौधों के अनुक्रमों की व्यवस्थित सक्रियता द्वारा पदार्थों के मृत-अवशेष जो कभी जीवित थे क्रमशः उस समय तक विघटित होते रहते हैं जब तक कि वे सरल अकार्बनिक पदार्थों के रूप में विभक्त नहीं हो जाते जिनसे हरे पौधों ने उनकी रचना की थी।

हरे पौधों के संसार द्वारा वहन किये हुए अखिल विश्व के खाद्य-उत्पादन के भार ने उस संसार से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के शरीर पर अमिट चिन्ह छोड़ा है। क्योंकि, जिस प्रकार मनुष्य द्वारा निर्मित यांत्रिकता जिस प्रयोजन के लिए नियोजित हुई उसकी योजना और रचना का ब्यौरा तथा अपने प्रयोजन को जिस तरह पूर्ण करती है, उस विधि को प्रकट करती है, उसी प्रकार सजीव यान्त्रिकता भी करती है। पौधे और जन्तु के काय (शरीर) के प्रत्येक अवयव मानों अपने ऊतकों (tissues) में उस कार्य को अंकित रखते हैं जिसे पूर्ण करने के लिए वह अस्तित्व में लाया गया है; और अवयव जितना ही विशिष्ट बना होता है, अर्थात् वह एक ही प्रकार के कार्यमात्र के लिए जितना ही अधिक समर्पित होता है, उसकी रचना की योजना और ब्यौरा उसके कार्यों के उतने ही अधिक द्योतक होते हैं।

श्रम-विभाजन, जो सब उच्च जीवों का प्रतीक होता है, शरीर की अनुकूलित विभिन्नता द्वारा सहगामी तथा उस पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए ऊतकों (tissues) की पतली हरी चादरें जो पत्तियाँ कहलाती हैं (मुखपृष्ठ का चित्र देखें) अपनी अवस्थिति, तथा सूक्ष्मता और अपनी संरचना द्वारा यह प्रकट करती हैं कि सूर्य की विकीर्ण (radiant) ऊर्जा के उपयोग और अवशोषण का धंधा एक मुख्य कार्य रूप में उन्हीं के लिए सुरक्षित है। जो शल्क (scales) पुष्पी पौधों की कलिकाओं (buds) को अपने भीतर बन्द रखते हैं, वे भी सत्य-पत्रों की तरह एक समान उत्पत्ति

और सारतः समान रचना की पत्तियाँ होती हैं; परन्तु जैसा उनकी स्थिति, रूप, और गठन द्वारा प्रदर्शित होता है उनका कार्य अधिक यान्त्रिक होता है तथापि वह कलिका के दुर्बल ऊतकों (tissues) को रक्षा प्रदान करने के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता (चित्र १)। बाह्यतल के वार्निश समान आवरण या कठोर शुष्कता, उनके घटे हुए आकार, और जब कलिका की पर्णावली जिस समय खिलना प्रारम्भ करती है, ठीक उसी समय सूख जाने और गिर जाने की विचित्र सामयिक वृत्ति में कलिका-शल्कों के विशिष्ट कार्यों का प्रमाण मिलता है।

साधारण वृक्षों और झाड़ियों की कलिका और कलिका-शल्क वर्ष के विभिन्न समयों में जिस प्रकार प्रकट होते हैं, उनका तुलनात्मक अध्ययन, केवल प्रेक्षण के अभ्यास रूप में ही करने योग्य नहीं है, बल्कि इसलिए भी आवश्यक है कि यह पौधों द्वारा प्रस्तुत प्रायः असीम अनेकता की प्रकृति पर भी प्रकाश डालता है। सब पुष्पी पौधों की रचना बहुत सीमित संख्या के सदस्यों—मूल या पार्श्विक मूलों युक्त अवरोही अक्ष, प्ररोह (shoot) या पार्श्विक शाखाओं और पत्तियों युक्त आरोही अक्ष और पुष्प द्वारा धारण किये हुए जनन अंग से होती है।

जैसा कि अनेक प्रकार के पौधों की कलिकाओं तथा कलिका-शल्कों की तुलना से प्रकट होता है, पुराने सदस्यों द्वारा नये कार्य ग्रहण करने से पौधों में थोड़ी ही अनेकता नहीं उत्पन्न होती। बाह्य रूप में इतना अधिक परिवर्तन हो सकता है कि एक कार्य या दूसरे विशेष कार्य में संलग्न किया हुआ सदस्य जैसा वह होता है वैसा दिखायी पड़ना रुक जाता है। ऐसी स्थितियों में प्रसंगाधीन सदस्य, उसकी उत्पत्ति और संवर्धन के मार्ग की खोज करने, या किसी सदस्य की प्रत्येक सदस्य को लेकर अधिक सामान्य और निकटतः सम्बन्धित पौधों से तुलना करने से ही, एक वर्ग या दूसरे वर्ग—मूल, स्तम्भ, पत्ती आदि से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञात किया जा सकता है।

कुछ झाड़ियों (क्षुपों) और वृक्षों, जैसे डाग वुड (कोर्नस सैंग्विनी) और वेफेअरिंग वृक्ष (वाइबर्नम लैंटाना) में कलिकाओं में विशिष्ट शल्क-पत्र नहीं होते। वे नग्न होती हैं और अनुक्रमतः लघुतर पत्तियाँ जो कलिका की प्राथमिक अवस्था के अक्ष में उचित क्रम में उत्पन्न होती हैं तथा उसके वर्धन अग्र कोशिका (growing point) को ढके रहती हैं, वे सब एक प्रकार की होती हैं। जब वसन्त आता है और कलिका खिलती है तो छोटी पत्तियों में से कोई भी नहीं गिरती। सभी स्थायी होती हैं और सत्य-पत्र रूप में बढ़ती हैं। प्रत्येक पत्ती एक पत्र वृन्त संवर्धित करती है और दीर्घ तथा हरी हो जाती है और उसी समय कलिका का अक्ष शाखा निर्मित करने के लिए दीर्घित होता है, इस कारण तने की कुछ फूली-सी गाँठ पर धारण की हुई प्रत्येक

पत्तियों की जोड़ी स्तम्भ के दीर्घतर या लघुतर जोड़ या पर्व (internode) द्वारा क्रमागत जोड़ी से पृथक् हो जाती है।

किन्तु अधिकांश झाड़ियों और वृक्षों में कलिकाएँ कलिका-शल्कों द्वारा आवृत रहती हैं और उन सब में कलिका-शल्क, वे चाहे जितने प्राथमिकरूपी और पत्र के असमानरूपी हों, पत्रवत् प्रकृति के, अर्थात् आकार की रूप-रचना की दृष्टि से पत्र के समान प्रकट किये जा सकते हैं। कलिका-शल्क और सत्य पत्र में से प्रत्येक एक प्रकार ही अक्ष के धरातलीय पार्श्विक उद्वर्ध (outgrowths) रूप में उत्पन्न होते हैं; प्रत्येक सीमित वृद्धि का होता है और तने के समान नहीं होता जो असीमित वृद्धि प्रदर्शित कर सकता है, और वर्ष प्रति वर्ष लम्बाई तथा मोटाई में वृद्धि करता जाता है। जिस क्रम में अनुक्रमिक कलिका-शल्क धारण किये जाते हैं वे सत्य-पत्रों के समरूप ही होते हैं जो उनका अग्रगमन और अनुगमन करते हैं। उदाहरणार्थ हार्स चेस्टनट (इस्कुलस हिप्पोकैस्टेनम) में सत्य-पत्र विपरीत युग्मों में होते हैं, जिनमें क्रमागत युग्म एक दूसरे से एकान्तरित होते हैं और इसी प्रकार कलिकाओं के भूरे वार्निश युक्त शल्क पत्र होते हैं (चित्र १); अलूचा और अनेक अन्य पौधों में क्रमागत सत्य-पत्रों के तने से बन्धन के बिन्दु को जोड़ने वाली रेखा एक सर्पिलाकार बनाती है और इसी प्रकार कलिका-शल्क भी कलिका के क्षुद्राकार अक्ष पर सर्पिलाकार लगे होते हैं।

यद्यपि रूप-रचना (morphology) की दृष्टि से कलिका-शल्क (bud scales) पत्तियों के ही समान होते हैं तथापि वे बिरले ही पूर्ण पत्ते होते हैं। एक पूर्ण संवर्धित सत्य पत्र (foliage leaf), पत्रदल (lamina), वृन्त (petiole) और पर्णाधार (leaf base) निहित देखा जा सकता है, जो कभी-कभी, जैसे गुलाबों और वायलेट आदि में एक पत्रवत् उद्वर्ध धारण करता है जिसे अनुपत्र (stipules) कहते हैं।

कुछ थोड़ से पौधों, लिलाक (साइरिंगा वल्गेरिस) और प्रिवेट (लाइगुस्ट्रम वल्गेर) में प्रत्येक कलिका-शल्क एक पत्ती का बना होता है जिसका केवल पत्रदल ही संवर्धित होता है। यद्यपि वृन्त का वृद्धि-रोध हो जाता है, तथापि वह प्रकट कराया जा सकता है। यदि वसंत में, जब कलियाँ खिलने लगती हैं, प्रिवेट या लिलाक की कलिका की शिशु अन्तर्वर्ती पत्तियाँ पृथक् कर दी जायँ तो शल्क-पत्रों की वृद्धि संचालित होती है और अपने प्रतिद्वन्दियों के अभाव में वे सामान्य, वृन्तीय हरे सत्य-पत्र रूप में संवर्धित होते हैं। अधिकांश पौधों में जैसे हार्स चेस्टनट, मैपल (ऐसर कैम्पेस्ट्री), साइकामोर (ऐसर स्यूडोप्लैटेनस) और पुष्पी करंट (राइब्स सैंग्विनियम) में कलिका-शल्क रूप-रचना की दृष्टि से पर्णाधार का समवर्ती होता है—पर्णाधार सामान्य सत्य-पत्र का वह भाग होता है जो पत्र-वृन्त को तने से आबद्ध रखता है। ऐसी दशा में पत्र-दल

और वृन्त का वृद्धि-रोध पर्णाधार की अत्यधिक वृद्धि का कारण होता है। इनमें से किसी पौधे में विशेषतया पुष्पी करंट, साइकामोर और हार्सचेस्टनट में उस समय

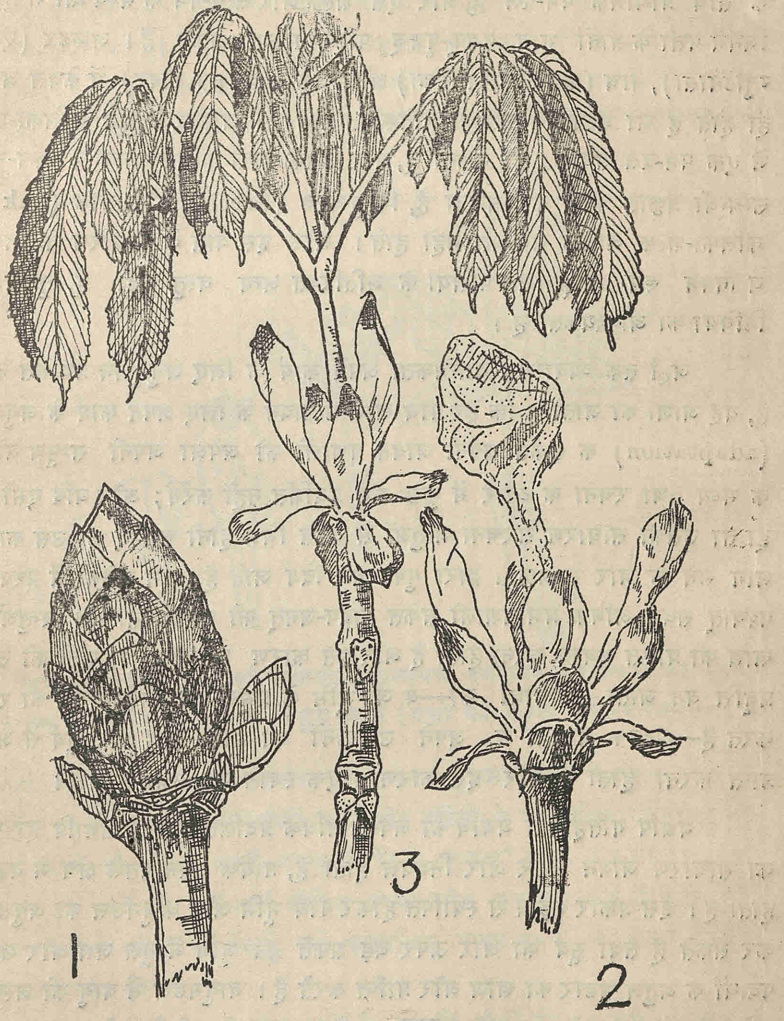

चित्र १—हार्स चेस्टनट (इस्कुलस हिप्पोकैस्टनम) की कलिकाओं के संवर्धन की अवस्थाएँ। १—विश्राम अवस्था में कलिकाएँ; २—स्फुटित होती हुई; ३—पूर्णतः स्फुटित हुई।

रूप-परिवर्तन देखे जा सकते हैं जब कलिका स्फुटित होती है (चित्र २)। कुछ पौधे कलिका-शल्क प्रदर्शित करते ह, कुछ में केवल पर्णाधार ही होता है, दूसरों में पर्णाधार के साथ प्राथमिक पत्र-दल है, और एसे शल्क और सत्य-पत्र के मध्यवर्ती से होते हैं जिनमें पत्ती के तीनों भाग पृथक्-पृथक् पहिचाने जा सकते हैं। आल्डर (एलनस ग्लुटिनासा), बीच (फगस सिलवाटिका) और ओक (क्वेरकस रोबर) में केवल अनुपत्र ही होते हैं जो शल्क-पत्र रूप में प्रतिरूपित होते हैं। आल्डर के कुछ कलिका-शल्कों में एक पत्र-दल सवर्धित हो सकता है, और उसके द्वारा कलिका-शल्क की रूप-रचना सम्बन्धी प्रकृति प्रकट कर सकता है, किन्तु बीच (beech) और ओक (oak) में कलिका-शल्क अधिक सवर्धित नहीं होते। और इस बात के निर्धारण के लिए कि ये निपत्र रूप में ह्रासित पत्तियों के अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं हैं, तुलनात्मक विधियों की आवश्यकता है।

जहाँ तक व्यवस्थित यान्त्रिकता अपने कार्य के लिए अनुकूलन प्रदर्शित करती है, यह आशा की जाती है कि हरे पौधे खाद्य-उत्पादन के लिए अपने कार्य के अनुकूलन (adaptation) के संकेत अपनी जीवन प्रणाली की अपेक्षा अपनी सम्पूर्ण योजना के मध्य तथा रचना के ब्यारे में कुछ कम प्रदर्शित नहीं करेंगे; और यदि ऐसी बात हो तो उसकी साधारण संरचना जन्तुओं से बहुत भिन्न होनी चाहिए जो उस कार्य में भाग लेने के भार से प्रकृति द्वारा मुक्त कर दिये जाते हैं। इन संकेतों में हरेपन के पश्चात् सबसे अधिक प्रभावशाली संकेत पादप-जगत् की गतिहीनता है। जन्तुओं को खाद्य की प्राप्ति अवश्य करनी होती है और इस कारण घुमक्कड़ हो जाने की उनकी प्रवृत्ति बन जाती है। पौधों को—वे जो भूमि के प्रमुख वनस्पति जगत की रचना करते हैं—प्रत्येक अवस्था में, अपने उपादानों को भूमि, वायु और सूर्य से अवश्य प्राप्त करना होता है और इस कारण वे एक स्थान पर अचर होते हैं।

यद्यपि गतिहीनता यथार्थ की अपेक्षा अधिक प्रदर्शित होती है तथापि हरे पौधों का साधारण जीवन स्थिर और निश्चल होता है, प्रत्येक अपने पतले क्षेत्र में बद्धमूल होता है। इस प्रकार दृढ़ता से स्थापित होकर पौधे भूमि और वायुमंडल का अनुसंधान कर सकते हैं तथा सूर्य की ओर ऊपर बढ़ सकते हैं। भूमि में मूल जल और खनिज पदार्थों के अतुल भंडार की खोज और प्राप्ति करते हैं। वायुमंडल में वायु की अल्पतम गति पत्तियों तक कार्बन डाइ-ऑक्साइड का नवीन प्रदाय पहुँचाती है; और ऊपर आकाश की ओर प्रयाण करने से स्तम्भ प्रकाश के लिए प्रतिद्वन्द्वियों को दूर तक छोड़ सकता है। इस कारण कि कुछ कच्चे पदार्थ इसे नीचे से, और अन्य पदार्थ तथा साथ ही विकीर्ण ऊर्जा ऊपर से प्राप्त होती है, स्थिर हरा पौधा द्विशीर्षी होता है। यह वृद्धि

द्वारा दोनों दिशाओं में प्रसारित होता है और दोनों जगतों का सर्वोत्तम लाभ उठाता है। कदाचित् यह कल्पनीय हो सकता है कि हरे पौधे चल फिर सकने की शक्ति बिना त्याज्य किये और अर्ध-अधोभूमिक तथा अर्ध-वायवीय हुए बिना ही पूर्णतः साधनों द्वारा आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति कर सके होते। यह असंभव बात नहीं है कि सुदूर युग ऐसे पौधों का जगत् देख सके जो आजकल के पौधों से सर्वथा भिन्न स्वभाव और रूप के हों; वह ऐसा पादप-जगत् हो जो आज पौधों में प्रचलित विधियों से उत्कृष्टतर

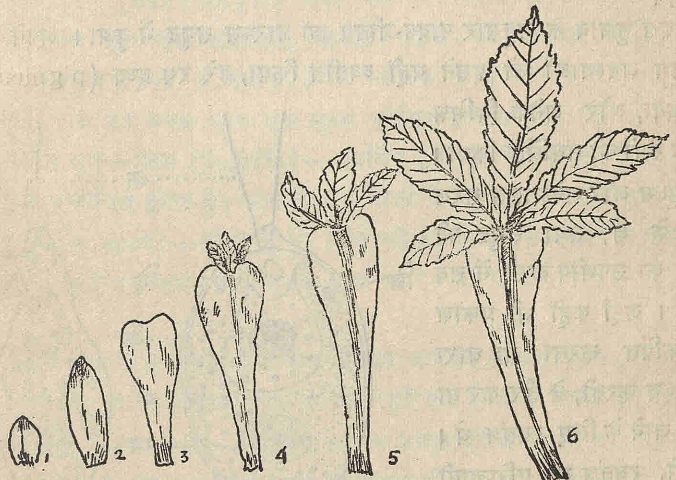

चित्र २—हार्सचेस्टनट की कलिका से शल्कपत्र, पर्णाधार से केवल पत्रदल युक्त पर्णाधार तक परिवर्तन प्रदर्शित करते हुए वृन्त (पत्ती का डंठल वृद्धि-रोधित।

और अपूर्व विधियों द्वारा खाद्य-निर्माण की समस्या सुलझा सकने में सफल हो सका हो। यदि ऐसा हो सके तो हमारे वृक्षों, क्षुपों और बूटियों के उत्तराधिकारी संसार को तिरोधायी करने की अपेक्षा अपनी प्रमुख स्थिति से च्युत हो जायँ, और या तो पूर्णतः समाप्त ही हो जायँ या जहाँ-तहाँ सीमित संख्या और संकुचित क्षेत्र में केवल उन अल्प उर्वर क्षेत्रों में फैले रहें जिन्हें नये काल्पनिक पादप-जगत् में अपना फैलाव करने से छोड़ रखा हो।

यद्यपि यह बात अकल्पनीय नहीं है, तथापि पौधों की इस नयी दुनिया का आगमन सम्भव नहीं है क्योंकि प्राचीनतम कालों से जिनमें पादप-जगत् के जीवन के फॉसिल अभिलेख हैं, स्थल-पादप के वे सब विभिन्न प्रकार जो भूमि पर जीवित रह चुके हैं और संवर्धन के निम्नतम स्तर से ऊपर उठ चुके हैं, संगठन के उन सार तत्त्वों

से ही अभिलक्षित रहे हैं जैसा आज वन और मैदान के हरे पौधों द्वारा प्रदर्शित होता है। वे सब स्थिर जीव रहे हैं और उन सब ने द्विशीर्षता संवर्धित किया है जिसे देखने के लिए मनुष्य इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि उन्हें उस पर आश्चर्य नहीं होता। सब युगों तथा संवर्धन की बहुत विभिन्न स्थितियों के स्थल पादपों में रचना की इस योजना के प्रति आसक्ति इतनी अविचल है कि यह सुझाव सम्मुख रखा गया है कि पादप-जगत् के सदस्यों के भूमि पर विद्यमान होने के पूर्व ही द्विशीर्षता उसका स्थिर लक्षण बन चुका था।

इस सुझाव के अनुसार पादप-जीवन का प्रारम्भ समुद्र में हुआ। अपने विकास की पूर्वतम अवस्थाओं को इसने वहीं व्यतीत किया, हरे रंग द्रव्य (pigment) को प्राप्त किया, और अनेक विभिन्न प्रकार के रूपों को संवर्धित किया। वे सब सूक्ष्म और अपेक्षाकृत सरल संगठन के थे, तथा समुद्र की स्वतंत्रता का उपभोग करने में सब समान थे। जहाँ कहीं भी प्रकाश उन्हें आकर्षित करता या धारा उनका वहन करती, वे तैर कर या बह कर जाने के लिए स्वतंत्र थे। इस समुद्री, स्वतंत्र या परिप्लावी (plankton) अवस्था में हरे पौधे जो सूक्ष्मदर्शीय आकार के थे, भूमि से स्थायी रूप से अपने को आबद्ध करने के लिए मूल (root) नहीं रखते थे, बल्कि जल द्वारा उतराये रह कर निष्क्रिय रूप में बहते रहते थे या अपने शरीर के चर वितान द्वारा अपने को जल में संचालित करते थे। जो पौधे इस अवस्था के पश्चात्‌जीवी हो सकते थे वे अब भी समुद्र में तथा ताजे पानी में भी जीवित हैं।

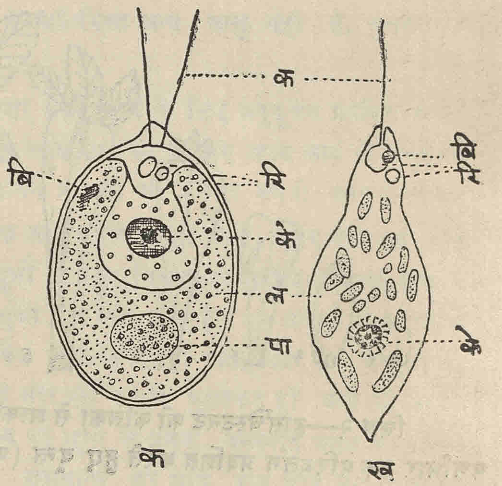

चित्र ३—क, क्लैमिडोमोनास (Chlamydomonas) की एक स्पीशीज–एककोशिक पौधा; ख, यूग्लीना (Euglena) की एक स्पीशीज—एककोशिक जन्तु। क, पक्ष्म; के, केन्द्रक; पा, पाइरीनॉइड; रि, रिक्तिका; बि, नेत्र-बिन्दु; ल, हरित लवक।

उनमें से एक (देखें चित्र ३ क) जीव के इस प्रारूप की आपेक्षिक सरलता तथा परिप्लावी और स्थल पादपों के मध्य अंतर को प्रदर्शित करता है। यह नग्न नेत्रों को अदृश्य होता है तथा ये इतने क्षुद्रकाय होते हैं कि ⅛ इंच लम्बी रेखा पर बगल-बगल रखने से एक हजार आसानी से लेट सकते हैं, किन्तु सूक्ष्मदर्शी से देखे जाने पर प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित तथा विशद संरचना प्रदर्शित करता है। अंडाकार काय जो जीवद्रव्यक (protoplast) या कोशिका की रचना करता है कोशिका-द्रव्य (cytoplasm) नाम के सजीव पदार्थ से निर्मित होता है जिसके हरित लवक भाग में पर्णहरिम (chlorophyll) नाम का हरा रंग-द्रव्य, उच्च हरे पौधों के समरूप ही रहता है। एक सघनतर, सजीव पदार्थ की विशिष्ट संहति, केन्द्रक (nucleus) कोशिकाद्रव्य के स्वच्छ, ऊर्ध्व, प्लास्क के आकार के भाग में देखा जा सकता है। काय का अन्त्य भाग एक सूक्ष्म कोशिकाद्रव्यीय गाँठ होता है जिससे दो दुर्बल, सजीव सूत्र—पक्ष्म (flagella)—प्रवर्धित होते हैं, जिनकी कलापूर्ण गति से वह पानी में संचालित होता है। काय के एक पार्श्व में रंग-द्रव्य का एक क्षुद्र धब्बा—नेत्र-बिन्दु (eye spot)—होता है जो जीव को वह दिशा जिस ओर से प्रकाश उस पर आता है, निर्देशित करने और उसके द्वारा प्रकाश की ओर गति करने में सहायक होता है।

अपने जन्म के क्षण से ही इस जीव में दृश्य आवरण न होता होगा, किन्तु उसकी नग्नता कोशिकाद्रव्य के तलीय स्तर से बनी हुई एक निर्जीव पदार्थ की झिल्ली—कोशिका-भित्ति (cell-wall)—से प्रायः तत्क्षण आवृत हो जाता है, जो पतली तथापि अविच्छिन्न होती है और इस प्रकार एक अवरोधक दीवाल का कार्य करती है जिसके आर-पार कोई ठोस वस्तु नहीं जा सकती। इसके मध्य से केवल जल और उसमें विलीन पदार्थ ही अवशोषित हो सकते हैं।

यद्यपि आद्यरूपी परिप्लावी पौधे निस्संदेह ही आजकल के समुद्र के तलीय जल पर पाये जाने वाले पौधों के समान ही विभिन्न संरचना के थे, यह जीव, क्लैमिडोमॉनैस प्रजाति की एक स्पीशीज है और यह प्रदर्शित करने का कार्य करती है कि वे किस प्रकार के थे। सक्रिय, स्वतंत्रतः, गतिमान प्राथमिक अवस्था के संवेदन इन्द्रिय युक्त, यह एककोशिक जीव स्थल पादप जगत के उच्च सदस्यों से विचित्रतः भिन्न प्रतीत होता है। तथापि यह अपने प्राच्यकालीन पूर्वजों से सुदूरतः संबंधित न होगा। इसके हरे रंग-द्रव्य और अविच्छिन्न ठोस परिधान या कोशिका-भित्ति ऐसे लक्षण हैं जिसे क्लैमिडोमॉनैस अन्य पौधों के और सर्वाधिक उच्च संगठित पौधों तक के साथ अपना भागीदार बनाता है।

यह सम्भव है कि जीवन-जगत् ने आदिकालीन परिप्लावी काल के पूर्वतम

अवस्थाओं में पादप और जन्तु-जगत् के मध्य कोई भेद नहीं प्रदर्शित किया और उस काल की पश्चात्वर्ती अवस्थाओं में ही जीव भेदक जन्तु-लक्षणों युक्त अवतरित हुआ। क्लैमिडोमॉनैस भी, जो पर्णहरिम धारण करने और अपने काय को कोशिका-भित्ति के पदार्थ से पूर्णतः आवेष्ठित करने में इतना पादपवत् होता है, ऐसी अवस्थाओं के मध्य प्रवेश कर सकता है जिनमें वह जन्तुवत् संलक्षण धारण करता है। यह कार्बनिक पदार्थों पर स्थित हो सकता है, अपने पक्ष्मों को भीतर समेट सकता है, अपने को एक गोले रूप में लपेट सकता है और अपने पर्णहरिम का लोप कर सकता है। इस अवस्था में यह जन्तुओं के व्यवहार के अनुसार कार्बनिक पदार्थों से वृद्धि की सामग्री प्राप्त कर अपने काय के विभाजन और वृद्धि द्वारा अपना आकार बड़ा कर सकता है। इसी प्रकार, जन्तु-प्रकृति के सरल संगठित जंतु-जीवन के जलीय रूप कभी-कभी पादपवत् लक्षण प्रदर्शित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, साधारण, सूक्ष्मदर्शीय, एककोशिक जीवों में से एक, जो आज भी विद्यमान है (यूग्लीना स्पी० चित्र ३ ख) स्पष्ट रूप में यह जन्तु संलक्षण रखता है कि इसके काय का आवेष्ठन एक संक्षिप्त क्षेत्र या कंठ के पास समाप्त हो जाता है और उसे आवृत नहीं करता जो ऊपरी तल से बदन के अन्दर तक गया होता है। खुले मार्ग की विद्यमानता ठोस कणों के प्रवेश करने की सुविधा देती है जो यदि खाद्यदायक प्रकार के हों तो पाचन क्रिया में पड़ते हैं और जन्तु के पोषण का कार्य करते हैं। पोषण की यह विधि जन्तु-जगत् का संलक्षण है, अर्थात् पाचन नलिका में ठोस कण ठूँसना और वहाँ उनसे ऐसे पोषण तत्त्वों को निष्कासित करना तथा उसे शरीर में अवशोषित करना जो इन ठोसों से प्राप्त हो सकता है। इस पोषण विधि के सर्वथा विपरीत पादप-जगत् की पोषण विधि है। अविच्छिन्न ठोस परिधान या भित्ति जो पादप-काय को आवेष्ठित रखती है, किन्हीं भी ठोस कणों को प्रवेश नहीं होने दे सकती। केवल विलयन (solution) रूप में ही पदार्थ भित्ति पार कर सकते हैं और जीवद्रव्य अर्थात् कोशिकाद्रव्य, केन्द्रक और कोशिका के अन्य सजीव अवयवों तक पहुँच सकते हैं।

जन्तु, तैयार खाद्य-पदार्थ बाहर से ठोस या द्रव रूप में प्राप्त करता है। हरा पौधा, यद्यपि सार रूप में उन्हीं खाद्य-पदार्थों का उपयोग करता है, किन्तु उन्हें अपने ही शरीर के अन्दर कच्चे पदार्थों के विलयन से तैयार करता है जिन्हें वह मिट्टी और वायु से प्राप्त करता है। जब इन विपरीत संलक्षणों में जीवों के एक वर्ग में एक और दूसरे वर्ग में दूसरा स्थिर हो गया, तो जन्तु-और पादप-जगत् के मध्य विभाजक रेखा स्थापित हो गयी और तब से दोनों जगत् के सदस्य अपने अनेक विभिन्न मार्गों का अनुसरण करने लगे।

तथापि, जन्तु लक्षणों के होने पर भी, यूग्लीना की स्पीशीज वैसा ही रंग-द्रव्य रखती हैं, जो पौधों के पर्णहरिम के समरूप होता है और हरे पौधों की ही भाँति खाद्य-पदार्थों के निर्माण में उसका उपयोग करती है।

इसमें तनिक भी सन्देह करने का कोई कारण नहीं है कि परिप्लावी अवस्था के उत्तर काल में समुद्रों में पौधे और जन्तु दोनों ही विद्यमान थे। यदि ऐसा था तो जीवन का अपव्यय अवश्य अत्यधिक रहा होगा। परिप्लावी जीवन की भौतिक स्थितियाँ कृश, सूक्ष्म तथा क्षणभंगुर वस्तुओं के लिए यथेष्ट भीषण होती हैं। तूफानी समुद्र और ज्वारभाटा तथा भीषण लहरें भारी संख्या में मृत्यु लाती हैं क्योंकि जिस गहराई तक सूर्य-रश्मियाँ प्रवेश कर सकती हैं, उससे नीचे जाना अन्धकार और मृत्यु का आलिंगन करना होता है। इनके साथ ही परिप्लावी जन्तुओं के शरीर के अंतर्गत पहुँच जाने तथा पच जाने की भयानक आशंका कम नहीं होती। तथापि सतत् घटित अपव्यय के होने पर भी परिप्लावी पादप ने अपनी रक्षा की तथा विभिन्न रूप धारण किये जिनमें से कुछ अपने वंशज छोड़ गये हैं जो समुद्र में आज भी जीवित हैं।

जीवन का आद्यरूपी जगत् कब तक केवल परिप्लावी जीवों से ही बना था, आज उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती; क्योंकि उन बहुसंख्यक रूपों का, जो विकसित हुए थे और वर्षों की संख्या में गणना द्वारा मन्दगति की दृष्टि से, जिस प्रकार विकास प्रचलित प्रतीत होता है, यह बहुत लम्बी अवधि थी। तथापि कालान्तर में पादप-जगत् ने एक नये प्रकार के जीव का संवर्धन किया। कुछ परिप्लावी पादपों ने जीवन के एक नये रूप को प्राप्त किया। सच्चे अग्रगामियों की भाँति आद्यरूपी परिप्लावी साहसिकों ने अपनी स्वतंत्रता का परित्याग किया और स्थिर जीव या समुद्र के पेटे के नितलवासी पादप (बेंथोस) बन गये। उथले समुद्रों के चट्टानी तटों पर प्रतिष्ठापित होकर, उच्च पादपों के अग्रजों ने अपने शरीर से लंगरनुमा उद्वर्ध उत्पन्न किये और इन बन्धनों द्वारा चट्टानों से अपने को बाँध दिया या गीले पंक में लंगर सा डाल दिया। अब पादप जगत् दो अनुजगत में विभाजित हो गया: परिप्लावी जो स्वतंत्र बने रहे तथा नितलवासी (benthos) जो स्थिर और अचल बन गये। इनमें पिछले वर्ग के हाथ में ही भविष्य बँधा था। उन्होंने अपनी द्विशीर्षता को संवर्धित किया। निम्न मूल शीर्ष एक दृढ़ बंधनी बना, स्वतंत्र शीर्ष सूकाय (thallus) बनाने के लिए परिवर्धित हुआ जो अनेक कोशिकाओं द्वारा निर्मित सूत्र या पट्टियों या ऊतकों (tissues) की संहति से बना। कुछ अवस्थाओं में यह एक अक्ष रूप में विभाजित हुआ जो पार्श्विक प्रसारणों को धारण करता था—यह स्तम्भ और पत्ती का प्रथम अकलात्मक पूर्व रूप था जो पश्चात्काल में वनस्पति जगत् के उच्च रूपों में स्थिर और मापदंडीय बनने वाला

था। इस प्रकार नितलवासी पौधों के शरीर अपने बंधक मूल शीर्षों से स्थिर होकर समुद्र में समुद्री शैवाल के ढंग से तैरने लगे (चित्र ४) जो निस्संदेह ही उनके बहुपरिवर्तित वंशज हो सकते हैं।

चित्र ४—फ्यूकस प्लैटीकार्पस—एक नितलजीवी स्वभाव का भूरा समुद्री शैवाल।

जिस अवस्था में परिप्लावी और नितलवासी रूप में समुद्री पादप-जगत् ने अपना विभाजन किया, नितलवासी अवस्था की भाँति जिसका यह उत्तरवर्ती था, युगों तक व्याप्त रहा होगा, और उस समय तक प्रचलित रहा होगा जब तक पौधों के निवास करने योग्य पृथ्वी का धरातल नहीं बन गया। जब ऐसा घटित

हुआ तो संयोग का आकस्मिक किन्तु निश्चित हाथ कुछ नितलवासी पौधों को स्थल पर अग्रसर होने में कदाचित ही चूक सकता था। क्योंकि जिस प्रकार पकाने के समय कचौड़ी की पपड़ी स्थानीय उभाड़ और गिरावट प्रदर्शित कर सकती है, उसी प्रकार पृथ्वी की पपड़ी वैसी हलचलों में पड़ चुकी है। जब समुद्र तट का उभाड़ हुआ तो उसके तटवर्ती पौधे अपने को पानी से ऊपर उठते देखते होंगे, और यदि यह प्रक्रम बहुत मन्द और क्रमिक रहा हो तो खारे उथले पानी में कुछ पौधे जीवित रह सकते थे और उस शोष का भी सामना कर सकते थे जिसमें ज्वार के समय पड़ने के संकट में होते थे। उन सब युगों में जब-तब नितलवासी पौधों को स्थल मंडलीय बनने का अवसर मिल सकता था; और यद्यपि अधिकांश अवस्थाओं में वे निस्संदेह ही विफल हुये, किन्तु कभी कहीं कोई संयोग से सफल होकर पृथ्वी के वर्तमान काल के वनस्पति का पूर्वगामी बना। यदि ऐसा हुआ, तो वनस्पति जगत् के जिन सदस्यों ने स्थल पर अपना पैर जमाया, और उच्च रूपों में गुरुपरिवर्तन की यातनाएँ सहन कर प्रभावाधीन हुए, वे समुद्र में दीर्घकाल से अर्जित स्वभाव—स्थिर अवस्था तथा द्विशीर्ष रूप, के अभ्यस्त हो चुके थे।

उस स्वभाव (स्थिर अवस्था) तथा रूप ने उन्हें अवसर प्रदान किया, परन्तु उनकी सीमाएँ भी निर्धारित कीं, जिससे रूप की प्रायः अगणित विभिन्नता होते हुए भी जो स्थल पादप प्रदर्शित करते हैं, और पृथ्वी पर विद्यमान अवस्थाओं की अनेकता होने पर भी, उच्च स्थल पादपों में से कोई भी भूतकाल के प्रतिबंधों को त्याज्य नहीं कर सका है। वे सब स्थिर रहते हैं तथा द्विशीर्षी होते हैं। वे सब इस सीमा तक जलीय होते हैं, कि केवल उस भूमि में ही जहाँ मिट्टी के कण जल के पटल द्वारा आवृत होते हैं, इनके मूल जीवित रह सकते हैं।

अपने जीवन कार्य को करने के लिए पूर्णतः एकमात्र अनुकूलित यान्त्रिकता रूप में स्थल पादपों को मानना भूल है क्योंकि ऐसा करना भूतकाल को विस्मृत कर देना है और भूतकाल को विस्मृत कर देना वर्तमान को भ्रान्त रूप में देखना है। बल्कि स्थल-पादप के विकास की कहानी उस सजीव यान्त्रिकता की कहानी प्रतीत होगी जो अवस्थाओं के एक समूह—समुद्र-तट की अवस्थाओं—से सम्बन्ध रख कर उत्पन्न हो कर अवस्थाओं के एक बिल्कुल भिन्न समूह—शुष्क स्थल की अवस्थाओं—में अपने को स्थानान्तरित पा सका। पौधे ने अपने भूतकाल को एक सहायक और बाधक रूप में अपने साथ वहन किया। स्थापित्र (holdfast) मूल ने सहायता की, प्रकाश की ओर वृद्धि करने की शक्ति ने सहायता की किन्तु स्थिर स्वभाव और द्विशीर्ष रूप ने उसके मार्गों को सीमित रखा। यदि भूतकाल भिन्न रूप का होता तो समुद्र

के हरे पौधों ने स्थलीय अस्तित्व की समस्याएँ सुलझाने में उनका उपयोग किया होता।

समस्याएँ सुलझाव में सरल नहीं थीं। समुद्र से प्रवास करने वाले प्रथम स्थल पादप के सम्मुख कठिनाइयाँ महान और अनेक थीं, और भूमि के पूर्ण बसाने में इनके प्रत्येक पग पर जो कठिनाइयाँ पड़ती गयीं वे भी कम महान और अल्पसंख्यक नहीं थीं। जिस सीमा तक स्थल पर पौधों का विस्तार है, और विभिन्न स्थानों पर अपने को अनुकूलित करने में जिन विभिन्न रूपों को उन्होंने धारण किया, वे उनकी सफलता की माप हो सकती हैं जिसके साथ उन्होंने इन कठिनाइयों का प्रतिकार किया। कुछ ही क्षेत्र ऐसे हैं जिन्होंने उनकी प्रगति का प्रतिरोध किया है। संसार के यथेष्ट वर्षा वाले अनुकूल भागों में तिरोधायक रूप के वनस्पति वृक्ष बन गये हैं, तथा उन्होंने संसार की वनभूमि का निर्माण किया है। न्यून अनुकूल क्षेत्रों में वन का स्थान घास के मैदान लेते हैं, और केवल उन स्थानों को छोड़ कर जहाँ मनुष्य व्याघात पहुँचाता है, ये दोनों समावास अपरिवर्तित बने रहते हैं। यद्यपि संयोग के उदार हाथों द्वारा पौधों के अन्य प्रकार के बीज यहाँ बोये जाते हैं, तथापि प्राकृतिक वनों को अधिकृत किये हुए वृक्ष तथा न्यूनतर पौधे पीढ़ी दर पीढ़ी स्थायी रहते हैं, और बहुत कम कोई नवागंतुक पौधा उनके मध्य वहाँ स्थायी निवास प्राप्त करता है। यही बात घास के मैदान के सम्बन्ध में भी है। प्राकृतिक अवस्था में उस स्थान के स्थानीय निवासी पौधे वर्ष प्रति वर्ष अपनी संख्या और किस्म की स्थिरता उच्च मात्रा में रक्षित रखते हैं।

ये समावास—वन और घास के मैदान—बन्द समावास हैं। बन्द इस कारण कि वे पहले से ही भरी होती हैं, और इस कारण भी कि उनके अधिकारी वहाँ पर विद्यमान अवस्था के इतने उत्तम रूप से अभ्यस्त हो गये हैं कि यदि कोई भू-क्षेत्र खाली पड़ जाता है तो उनका अधिकार सर्वश्रेष्ठ होता है। अतएव यह स्थिति है कि आज संसार के वनस्पति एक महान सुव्यवस्थितता का उपभोग करते हैं। वसंत का जिस प्रकार आगमन निश्चित है, उसी प्रकार उसके साथ वनों में ब्लूबेल्स प्रकट होते हैं और वनों के तटों पर प्रिमरोज प्रस्फुटित हो उठते हैं। तथापि वर्ष के पूर्वतर समय में डाग मर्करी (मर्कुरियालिस पेरेनिस) की प्रगाढ़ हरी पत्तियाँ तथा धूमिल पीले पुष्प मृत भूरी पत्तियों के ऊपर दिखाई पड़ सकते हैं, जो बीच के वन के अंचल में भरे होते हैं और वर्ष के आगे बढ़ने पर निश्चित नियमित अनुक्रम में वनों और घास के मैदानों, कँटीली झाड़ियों की पंक्ति और खंदकों के पार्श्व, कच्छ प्रदेश तथा दलदली भूमि के पौधे अपने पुष्पन के समय भूमि के विशेष क्षेत्रों तथा वर्ष के समय पर अपने स्थायी अधिकार को प्रदर्शित करते हैं।

जैसे सुव्यवस्थित तथा प्रतिष्ठापित वाटिका में प्रत्येक पौधे का एक स्थान होता है और वह उसे ही अधिकृत रखता है, उसी प्रकार बड़े और साधारण रूप में प्रकृति के उद्यान में भी यही बात होती है। जब वह उद्यान—संसार—प्रथम स्थापित हुआ, वह सब आगंतुक पौधों के लिये खुला था। अनेक किस्मों के स्थान उसने सामने रखा। कुछ स्थान यथेष्ट सिंचित तथा अल्पोषण, मानों पौधों के स्वर्ग ही थे, उष्ण कटिबंधीय वनों की भाँति इतने सघन घिरे कि उनमें प्रवेश करना एक असंभव सा कार्य था। जो पौधे वहाँ अपना सुखद निवास बनाने के लिये पहुँचे, उष्णता और आर्द्रता के स्थान का सर्वोत्तम उपयोग करने में विशेषता प्राप्त करने में उन्होंने शीत के प्रतिरोध की शक्ति इतनी खो दी कि उनमें से कोई भी शीत-प्रदेशों में काँच-गृह की रक्षा बिना जीवित ही नहीं रह सकते। वे, गुरुतापी—ऐसे पौधे जो उच्च ताप के जीवन के अभ्यस्त होते हैं, शीतोष्ण कटिबन्ध के मध्यतापी पौधों और उन सूक्ष्मतापी पौधों की विपरीत तुलना में हैं जो इतने निम्नताप में ही जीवित रहते हैं जो अन्य पौधों के लिये मृत्यु का द्वार होता है। अन्य स्थान जो यद्यपि न्यूनतर उष्णता के थे, तथापि वृक्षों की वृद्धि के लिये यथेष्ट थे और इस प्रकार वन वनस्पति योग्य थे। फिर भी अन्य स्थान, जो अधिक दुर्लभ जल प्रदाय के थे, घासों तथा शाकीय पौधों के लिये यथेष्ट सिद्ध हुये जो अनुकूल ऋतु होने पर सक्रिय जीवन में आते हैं तथा प्रतिकूल ऋतु में मृत हो जाते हैं और विश्राम करते हैं। इन परिस्थितियों में पौधे की पौधे के प्रति प्रतिद्वन्दिता भीषण तथा सतत थी, और सब प्रतिद्वन्दी अतिजीवित नहीं हो सकते थे।

किन्तु सब समय में पवन और पक्षी तथा अन्य जन्तु और प्रवाहित जल एक न एक दिशा में बीजों को वहन करते रहे और पृथ्वी पर उन्हें दूर तक फैलाते रहे। अतएव यदि कोई पौधा जो वन में या घास के मैदान में प्रतिद्वन्दिता में ठहरने में विफल हुआ, स्थल पर कहीं बाहर के स्थान में अवसर पा सकता था, और वहाँ ठीक पनप सकता था। इस प्रकार पृथ्वी के अल्प अनुकूल क्षेत्र भी अपना एक वनस्पति जगत रखने में समर्थ हुये, यहाँ तक कि शुष्क और पवन प्रवाहित कच्छ भूमि भी अपनी भटकटैया उत्पन्न करती है, नंगा पर्वत पार्श्व भी अपना लाल नीली छोटी झाड़ी–लिंग तथा हीदर झाड़ी रखता है, समुद्र-तटवर्ती रेत के टीले (ड्यून) भी अपने पीले रंग के पोस्त और मर्रम घास रखता है जो भागती हुई रेत को बाँध रखती है। तालों और चश्मों ने उन स्थल-पादपों को शरण दी जिन्होंने वहाँ अपनी समुद्री उत्पत्ति की, मन्द प्रतिध्वनि प्राप्त की और एक बार फिर जलजीवी हो गये। ज्वार भाटा की सीमाओं के मध्य समुद्री तट ने भी शरण दी और ग्रासरैक (जोस्टेरा मेरिना) समान पौधे जो विफल हुये, पुनः नितलवासी बने। पंकमय भूमि ने स्फैगनम मॉस और श्वेत तथा चमकीले

गुलाबी बैंगनी रंग के पुष्पयुक्त कीट भक्षी बटरवर्ट और सनड्यू को स्थान प्रदान किया। आज नवागंतुकों के लिये स्वतंत्रतापूर्वक खुले क्षेत्र केवल मरुस्थल--उष्ण, वृष्टिहीन, रेतीले बंजर मैदान, और ध्रुवों के चारों ओर तथा हिम रेखा से ऊपर के पर्वत श्रृंगों के हिम और बर्फ के मैदान हैं। ये आज भी खुले हैं। वे और समुद्र से ऊपर उठने वाले नये स्थल ही ऐसे क्षेत्र हैं जो पादपों द्वारा विजय के लिए शेष हैं।

अध्याय २

वनस्पति जगत् और उसके सदस्य। हरित और अहरित पौधे (कवक और जीवाणु)। गेहूँ का दाना: रचना: अंकुरण। संसार की गेहूँ की फसल

प्राकृतिक जगत में, पौधों की आभासी आधीनता के होते हुए भी मनुष्य और जन्तु उसके दास बने हुए हैं। मनुष्य और जन्तु खाद्य के लिए पौधों पर निर्भर होते हैं और खाद्य-प्रदाय जन्तुओं और मानव समाज के स्थानान्तर और वृद्धि का नियंत्रण और निर्धारण करता है। समाज जिस प्रकार जटिल बनता जाता है, उसी प्रकार पौधों की दुनिया पर मानव वर्ग द्वारा प्रस्तुत की गई माँग बढ़ती है। वह दुनिया मनुष्य को खाद्य और वस्त्र प्रदान करती है। यह मानव शरीर तथा औद्योगिक कार्यों में एक समान प्रयुक्त शक्ति प्रदान करती है और ऐसे पादप-उत्पादों, जैसे पत्थर का कोयला और शहतीर की खपत की मात्रा किसी देश की औद्योगिक प्रगति की अवस्था का निश्चित निर्देशक होती है। यद्यपि, पादप-जगत के अवलंब को छोड़ कर, मनुष्य जल-शक्ति का आश्रय लेता है और नदियों तथा झरनों की ऊर्जा विद्युत-शक्ति में रूपान्तरित करता है तथापि उसे विद्युत् धारा वहन करने वाले तारों को पृथक्कृत करने के लिए रबड़ और गटापार्चा, और यन्त्रों के स्नेहन के लिए तेल के लिए पौधों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा।

रासायनिक आविष्कार की प्रगति ने मानव और पादप-जगत् के मध्य सम्बन्ध में परिवर्तन लाना प्रारंभ कर दिया है, तथा यह आशा की जाने लगी है कि आगामी वर्षों में जन्तु-जगत् उस मधुर दासता से मुक्त हो जायगा जिसमें वह आज पादप जगत् द्वारा आबद्ध है और मानव वर्ग कृत्रिम शक्तियों, अकार्बनिक पदार्थों तथा रासायनिक ज्ञान से कच्चे माल और शक्ति की अपनी आवश्यकताओं के प्रदाय में पौधों के निर्माणात्मक माध्यम के बिना ही समर्थ हो सकेगा। रसायनज्ञ ने अकार्बनिक पदार्थों से शर्करा निर्मित करने में सफलता पा ही ली है और इससे भी अधिक जटिल नाइट्रोजन संयुक्त प्रोटीन को कृत्रिम रूप में बनाने में सफलता का पग बढ़ाया है जो जीवद्रव्य के परमावश्यक अवयव होते हैं।

यद्यपि कृत्रिम रूप में प्रोटीन बनाने में उसके प्रयासों को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है, तथापि रसायनज्ञ ने पौधे के प्रोटीन संश्लेषण की सक्रियता को तीव्रतर

करने के साधन ढूँढ़ निकाले हैं। इस सफलता के पूर्व प्रोटीन-निर्माण में पौधों द्वारा प्रयुक्त अकार्बनिक नाइट्रोजन यौगिक के प्रदाय वहीं तक सीमित थे, जो वनस्पति जगत स्वयं उत्पन्न करता था। उनमें से मुख्य नाइट्रेट हैं जिनकी उर्वर मिट्टी में विद्यमानता कुछ प्रकार के अणुजीवों (micro-organisms) की सक्रियता के कारण होती है। किन्तु भूमि के जीवाणुओं द्वारा नाइट्रेट के उत्पादन की गति सदा तीव्र नहीं होती, और जहाँ तक भूमि का सम्बन्ध है मिट्टी के नाइट्रेट का अपव्यय प्रायः तीव्र-वेग से संचालित रहता है। शीतकालीन वर्षा मिट्टी के विलेय नाइट्रेटों को इतनी बहा ले जाती है, कि उर्वर भूमि में भी किसी एक समय केवल एक फसल की आवश्यकता के लिये भी नाइट्रेट का यथेष्ट प्रदाय नहीं रहता। निरंतरित हानि की क्षति पूर्ति के लिए किसानों ने बहुत दिनों से भूमि में नाइट्रोजन-संयुक्त कृत्रिम खाद, चिली शोरे की तहों से नाइट्रेट आफ सोडा, या पत्थर के कोयले की गैस निर्माण की उपउत्पाद की तरह प्राप्त सल्फ़ेट आफ अमोनिया का उपयोग करना सीख लिया है। ऐसा होने पर भी संसार की फसलों की उत्पत्ति नाइट्रोजन मिश्रित खादों के सस्ते प्रदाय की अपर्याप्तता के कारण सीमित है। अब रसायनज्ञों और इंजीनियरों ने औद्योगिकों को यह सिखलाया है कि किस प्रकार वायु के नाइट्रोजन को अन्य तत्त्वों के संयोग में लाकर और नाइट्रेट, अमोनिया का लवण; यूरिया आदि उत्पादित कर, जो मिट्टी में मिलाये जाने पर फसलों को उस सब नाइट्रोजन को प्राप्त करने में समर्थ बनाते हैं, जितना वे प्रयुक्त कर सकते हैं, प्राकृतिक प्रदायों में वृद्धि की जाय।

अन्य दिशाओं में भी रसायनज्ञ संसार के पदार्थ निर्माण के स्थान से पौधों को क्रमशः बहिष्कृत कर रहे हैं। कृत्रिम रंग, नील, और अन्य पदार्थ पौधों से निस्सारित पदार्थों से होड़ लेते हैं, और प्रत्येक वर्ष नये कृत्रिम उत्पादों के आविष्कार की घोषणा होती है। तथापि, व्यावहारिक रसायन के इन विस्मयजनक कार्यों और इनसे भी अधिक विस्मयजनक आविष्कारों की आशा के होने पर भी, जन्तुओं और मनुष्यों के जीवन धारण तथा मानव वर्ग के सामाजिक तथा औद्योगिक जीवन के संचालन तथा संवर्धन के लिये ऊर्जा और पदार्थों के प्रदाय के लिये महान् स्रोत पादप-जगत आज भी है और बहुत दिनों तक रहेगा। कल्पनाप्रसूत सृष्टि विज्ञान का कच्छप, जिसकी पीठ पर धरती को धारण करने वाले शेषनाग को अवलंबित करने वाले दिग्गज खड़े रहते हैं, आज भी हरे मैदानों की घास द्वारा पोषित होता है।

इस कार्य में आधुनिक और भूतकालीन सक्रियता योगदान देती है। आधुनिक सक्रियता द्वारा पौधे संसार को प्रायः अगणित प्रकार के पदार्थ प्रदान करते हैं। अपनी भूतकालीन सक्रियता द्वारा (पौधों ने) संसार में ईंधन—पीट, पत्थर का कोयला, और

कदाचित् पेट्रोलियम को भी बनाया है। इनमें प्रथम पदार्थ उतने अधिक भूतकाल का उत्तरदान नहीं है और अब भी संचित हो रहा है। अन्य पदार्थ पृथ्वी पर अधिकार जमाने के लिए मानव के अवतरित होने के बहुत ही पूर्व उत्तराधिकृत हुए थे। वनस्पति जगत् के सब विभाग पदार्थ रूप में प्रदान कार्य में भाग लेते हैं; किन्तु उच्चतम और निम्नतम वर्ग सदस्य ही ऐसे हैं जो अत्यधिक प्रचुरता प्रदान करते हैं।

बीजधारी पौधे, जिनमें शंकुवृक्ष (कोनिफरस) और सामान्य पुष्पी पौधे, दोनों ही सम्मिलित हैं, खाद्य-पदार्थ, रेशे वाले पदार्थ, शहतीर, रुर्जास, रबड़, गटापार्चा, कपूर, मोम, वार्निश, मलहम, मसाले, अचार, सुगन्धि, विष, रंग, और औषधियाँ प्रदान करते हैं। ये पौधे पृथ्वी के जीवन को संचारित रखते हैं। निम्नतम वर्ग (थैलोफाइटा) का सदस्य, शैवाल या काई, समुद्र के सकुल जीवन को पोषित करता है; परिप्लावी और समुद्रतलजीवी पौधों में समुद्री जीवन अपना पोषण आधार पाता है।

वनस्पति जगत् के मध्यवर्ती वर्गों से सम्बन्ध रखने वाले पौधे पर्णांग (फर्न) और उनके सहयोगी (टेरिडोफाइटा) तथा मॉस और लिवरवर्ट (ब्रायोफाइटा) आधुनिक काल में संसार को अल्पतर योगदान करते हैं, यद्यपि आधुनिक टेरिडोफाइटा से बंधुता रखने वाले पौधों के भूतकालीन योगदान के प्रमाण संसार के कारखानों की प्रत्येक धुँआ देने वाली चिमनी प्रस्तुत करती है। वे पत्थर के कोयले के उत्पादक थे। मॉस तक भी—जो यूथचारी, सूक्ष्म और विचित्रतः संरचित होते हैं—पीट के रूप में प्रदान करते हैं। यद्यपि पर्णांग (फर्न) और मॉस आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत महत्त्वहीन होते हैं, तथापि वे महान् वैज्ञानिक महत्त्व के हैं क्योंकि उनका अध्ययन उस मार्ग का निर्देश करने में सहायक होता है, जिसके द्वारा पौधों के विकास ने प्रगति की है।

निम्नतम वर्ग (थैलोफाइटा) में केवल शैवाल ही सम्मिलित नहीं हैं (देखें चित्र ४) बल्कि कवक (fungi) भी सम्मिलित हैं (चित्र ५ और ६)। शैवाल और कवक यद्यपि सहसंबंधी हैं, तथापि अपने जीवन क्रम में अत्यधिक विभिन्न होते हैं। एक में तो पर्णहरिम होता है और वह स्वावलंबी होता है, दूसरा पर्णहरिम विहीन होता है, स्वयं पोषण करने की शक्ति से भी हीन होता है। किन्तु कवक की खाद्य-आवश्यकता अन्य जीवों, पौधे या जन्तु के समान ही होती है, अतएव जन्तुओं की भाँति कवकों को भी बाह्य-स्रोतों से खाद्य-प्रदाय प्राप्त करना आवश्यक है। अतएव कवक को विवशतावश या तो एक पराश्रयी (parasite) रूप में अन्य पौधों का शिकार कर या मृतोपजीवी (saprophyte) रूप में किसी समय जीवित रहने वाले पदार्थों के मृत-अवशेष पर पलकर जीवन यापन करना पड़ता है।

इस दृष्टि से कवक वनस्पति जगत के एक दूसरे विभाग, जीवाणु (शाइजो-

फाइटा) के सदस्यों से सादृश्य रखते हैं, जो साधारणतया इतनी सूक्ष्मता और प्रायः दृश्य संरचना की इतनी चरम सरलता के होते हैं कि जीवन-जगत में उनकी यथार्थ स्थिति, आदिम या अपविकसित या विभिन्न उत्पत्ति के मिश्रित संचयन की है, इसका समाधान कोई नहीं कर सकता। कवक की भाँति साधारण रूप में जीवाणु पर्णहरिम-विहीन होते हैं, और उनकी भाँति, कतिपय विस्मयजनक अपवादों के साथ वे मृतोपजीवी या पराश्रयी रूप में रहते हैं।

पौधों का यह अनुजगत––कवक और जीवाणु––संसार के कार्य में इतना अधिक भाग लेता है कि इसके संक्षिप्त वर्णन की आवश्यकता प्रतीत होती है।

एक एकाकी प्रोटोप्लास्ट, जो क्लैमिडोमॉनैस (चित्र ३ क) के शरीर की रचना करता है, के बहुह्रसित आकार की कल्पना कीजिये जिससे सूक्ष्मदर्शी की दीर्घतम क्षमता में भी वह छोटा दिखाई पड़े, और हरित कवक और नेत्र-बिन्दु विलुप्त हो गया हो, केन्द्रक कठिनता से ही लक्षित हो, पक्ष्म विद्यमान हों या लुप्त हो गये हों, भित्ति सैलूलोस की नहीं, बल्कि प्रोटीनवत् या श्लेषीय पदार्थ की हो, आकृति या तो गोलाकार ही हो या अनेक रूपों––दंड या कोमावत् आदि में से किसी एक में रूपान्तरित हो गई हो––और स्वयं सरलतर जीवाणु रूपों में से एक के शरीर का स्थूल चित्र आपके मस्तिष्क में आ जायेगा। कभी-कभी कोशिका इकाइयाँ एक सर्व संबंधी श्लेष्मी छाद में सम्बद्ध पड़ी रहती हैं जिससे वे संख्या में वृद्धि करते जाने पर नंगी आँखों को दृश्य एक जीवाणु-मंडल स्थापित कर लेती है। विभाजन द्वारा संतानोत्पादन होता है, जिससे एक कोशिका से दो उत्पन्न होती हैं, जिनमें से प्रत्येक वृद्धि करती है और विभाजित होती है जिससे संख्या वृद्धि की गति प्रायः अत्यन्त तीव्र होती है। जब खाद्य-प्रदाय समाप्त हो जाते हैं, तो कोशिकायें सक्रियताहीन होकर अपने में से प्रत्येक को एक स्थूल आवरण युक्त, शुष्क, सूक्ष्म बीजाणु (spores) बना सकती हैं जो अनेक अवस्थाओं में ताप और शष्कता की चरम सीमा को भी प्रतिरोधक हो जाती हैं। इस अवस्था में जीवाणु विश्राम करता है, इसका पूर्व सक्रिय जीवन उस समय तक गुप्त बना रहता है जब तक वायु तथा जल द्वारा वहन किया जाकर ऐसे स्थान पर न पहुँच जायं जहाँ सक्रिय जीवन पुनः प्रारम्भ किया जा सके।

कवक द्वारा प्रस्तुत विभिन्न रूपों में से कुछ की जानकारी प्राप्त करने के लिये उस क्लैमिडोमॉनैस की कल्पना कीजिये जो कोशिकाद्रव्य और केन्द्रक को रक्षित रख कर भी पर्णहरिम, नेत्र-बिन्दु और पक्ष्म को लुप्त कर देता है और यह यीस्ट-कोशिका का एक नमूना है (चित्र ५)। कोशिका सक्रियतः वृद्धि करती है, विभाजन करती है जिससे पहले एक नई कोशिका मूल कोशिका से छोटे आकार में उससे सम्बद्ध मुकुल

रूप में प्रकट होती है। अनुजात कोशिका (daughter-cell) अपनी बारी में एक कोशिका मुकुलन द्वारा उत्पन्न कर सकती है और इस प्रकार यीस्ट कोशिकाओं की एक श्रृंखला बन जाती है। इस प्रकार एक समय यीस्ट पौधा एककोशिक जीव रूप में प्रकट हो सकता है और दूसरे समय कोशिकाओं की श्रृंखला निर्मित कर वह बहु-कोशिक हो सकता है।

जीवाणु की भाँति, यीस्ट भी बीजाणु उत्पन्न कर सकते हैं। कोशिका की जीव-द्रव्यीय अन्तर्वस्तु विभाजित होती है और चार से आठ कोशिकायें तक निर्मित कर सकती है जिनमें प्रत्येक अपनी निजी भित्ति द्वारा परिवारित होती है (चित्र ५ ख)। मूल कोशिका की भित्ति के विखंडन से मुक्त हुये बीजाणु किसी प्रकार की क्षति के बिना शोषण को सहन कर सकते हैं। इस प्रकार सुप्त रहकर वे वायु के प्रवाह द्वारा बहुत अधिक संख्या में ले जाये जाते हैं और संसार भर में उग जाते हैं। इनमें से कुछ अवश्य ही अच्छी भूमि पर गिरते हैं और वहाँ उत्पन्न हो कर अपनी संख्या-वृद्धि करते हैं।

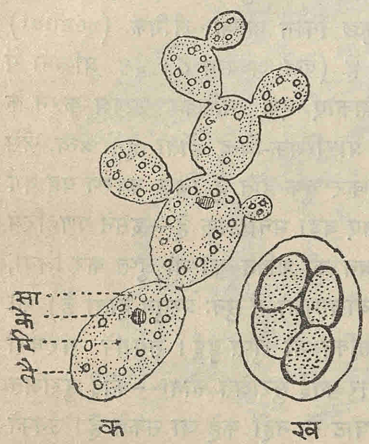

चित्र ५––यीस्ट। क, मुकुलन; ख, बीजाणुओं का निर्माण। सा, कोशिकाद्रव्य; के, केन्द्रक; रि, रिक्तिका; तै, तैल-गोलिका।

या, सरलतर कवक के दूसरे वर्गों में से एक वर्ग के किसी व्यक्ति की जानकारी प्राप्त करने के लिये क्लैमिडोमॉनैस को इस रूप में कल्पना कीजिये जिसमें कि यह एक पर्णहरिम, पक्ष्म और नेत्र-बिन्दु को लुप्त कर (विहीन होकर) लंबोतरे सूक्ष्म, नलिकाकार, शाखायुक्त या शाखाहीन कवक तंतु (hypha) रूप में वृद्धि कर गया हो। उसका कोशिकाद्रव्य कोशिका-भित्ति के आन्तरिक तल से संलग्न एक पतले स्तर रूप में निर्मित हो गया हो, और कवक तंतु के सिरे पर संचित होते जाने की वृत्ति रखता हो। कोशिका के बढ़ते जाने पर केन्द्रक विभाजित होता है, जिससे कुछ अवधि के अन्तर से सूक्ष्मदर्शीय नलिकाकार काय में एक केन्द्रक कोशिकाद्रव्य में अन्तः स्थापित रहता है।

इस झाँकी को एक उच्च वर्ग के कवक रूप में परिवर्तित करने के लिए कवक तंतुओं के अनुक्रमिक केन्द्रक के मध्य केवल अनुप्रस्थ भित्ति खड़ी करने की आवश्यकता है। इस प्रकार उच्च कवकों में पादपकाय सत्यतः बहुकोशिक हो सकता है

और जहाँ तक कवक द्वारा प्रस्तुत दोनों प्रकार की संरचनायें शैवालों में अपना प्रतिरूप अंग रखती हैं, यह सम्भव है कि कवकों के विभिन्न वर्गों ने शैवाल पूर्वजों से स्वतंत्र अपना विकास किया हो।

अधिकांश कवकों में बीजाणु निर्माण होता है, जो भूमि पर जीते हैं वे प्रायः भारी संख्या में क्षुद्र, गोल या अडाकार, आवृत्त बीजाणु उत्पन्न करते हैं और वायु द्वारा वहन किये जा सकते हैं; किन्तु जो पानी में रहते हैं, वे नग्न, चर बीजाणुओं को उत्पन्न करते हैं और अपना शैवाल उत्पत्ति के साक्ष्य रूप में नेत्र-बिन्दु भी धारण किये होते हैं।

बीजाणु उत्पन्न करने के अतिरिक्त कुछ निम्न कवक लैंगिक (sexual) जनन के प्रक्रम द्वारा अपनी संतान वृद्धि करते हैं (देखें अध्याय ८) इस प्रक्रिया में विशेषतया जनन के लिए ही निर्मित दो कोशिकाएँ एक कोशिका उत्पन्न करने के लिए सायुज्यित होती है जो नये व्यक्ति का प्रारम्भिक-बिन्दु होता है। अन्य, जैसे अनेक उच्च कवक, लैंगिक जनन शक्ति लुप्त कर चुके होते हैं जिस कारण यह वर्ग लोप या ह्रास द्वारा विकास प्रदर्शित करने के लिए बड़ा मनोरंजक है—इसने पर्णहरिम का लोप किया और उसी के साथ आत्मावलंबन की शक्ति को भी लुप्त कर लिया, नेत्र-बिन्दु और पक्ष्म (जो निम्न कवक के चर बीजाणुओं में पुनः प्रस्तुत होता है) का लोप किया और इसके साथ लैंगिक जनन की शक्ति भी लुप्त हुई। तथापि संरचना में अधःपतित हुए, कवक अपना रक्षा करने और कोई सुरक्षित कोना—कोई सुरक्षित स्थल—प्राप्त करने जिसमें वे रह सकें, वे कुछ घाटे में नहीं कहे जा सकते हैं। उनकी आकृति पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे अधःपतित हैं परन्तु जीवन यापन की शक्ति पर विचार करने से वे स्वयं हरे पौधों से कम सक्षम नहीं प्रतीत होते हैं, और निस्सदेह भविष्यवाणी की जा सकती है कि कवक और जीवाणु संसार में अपने लाभ और हानि के लिए उस समय तक जीवित रहेंगे जब तक हरे पौधे सार्वभौम खाद्य-प्रदान का अपना कार्य सचालित रखे रहेंगे।

उच्च कवकों—कुकुरमुत्ता या छत्रक आदि में वर्धी काय बहुसंख्यक शाखान्यस्त कवक ततुओं द्वारा रचित होता है जो मकड़ी के जाले के समान कवक जाल (mycelium) का निर्माण करता है और मिट्टी के अंदर, जीवित या सड़ते हुये काष्ठ आदि के अन्दर प्रविष्ट रहता है। जब कवक तन्तु बीजाणु उत्पादन के लिये परिपक्व हो जाता है तो यह शीघ्रता से वृद्धि कर एक दूसरे से लिपट जाता है और वृहदकाय बीजाणुधारी संरचना—बीजाणुधानी वृन्त (sporophore) को उत्पन्न करता है जो अवभूमि को धक्का लगा कर वायु में उठ आता है और कुकुरमुत्ता को जन्म देता है (चित्र ६)

बीजाणुधानी वृन्त के किसी न किसी भाग पर बीजाणु अगणित संख्या में साधा-

रणतया चार के वर्ग में उत्पन्न होते हैं किन्तु कृष्य कवकों की कुछ किस्मों में दो के वर्ग में उत्पन्न होते हैं (चित्र ७)। प्रत्येक बीजाणु, मुक्त हो जाने पर यदि अनुकूल भूमि पर गिरता है तो अंकुरित होता है तथा एक नये पौधे को जन्म देता है।

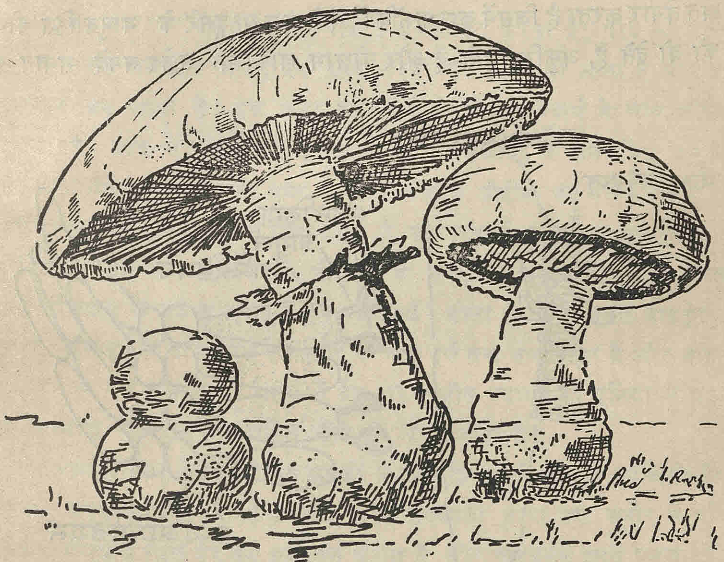

चित्र ६—ऐगैरिकस कैम्पेस्ट्रिस, सामान्य छत्रक (कुकुरमुत्ता)

जिस प्रकार वर्षा सज्जन और दुष्ट सब के ऊपर होती है, उसी प्रकार अनेक किस्मों के वायुवाही अणुजीवों की वर्षा अदृश्य और प्रायः अनवरत होती है। कुछ ही अच्छी भूमि पर गिरते हैं, तथापि उनकी वृद्धि की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि साल के बारहों महीने अणुजीवों की अनेक ज्ञात जातियाँ (स्पीशीज) उत्तरजीवी रहते हैं, और पृथ्वी के तल से किसी एक किस्म के सर्वथा लुप्त हो जाने का कोई अभिलेखित उदाहरण नहीं हैं।

अणुजीवों की सार्वभौमता भी इस तथ्य से प्रकट होती है कि किसी भी प्रकार का कार्बनिक पदार्थ यदि वायु में खुला हुआ रख दिया जाय तो उसका केवल क्षय ही प्रारम्भ नहीं होता, बल्कि प्रत्येक प्रकार का क्षय प्रायः समान रूप से ही होता है। दूध खट्टा हो जाता है, सेब कड़वे हो जाते हैं, अचार और पुराने चमड़ों पर फफूँदी लग जाती है, और मक्खन दुर्गन्धयुक्त हो जाता है: ये तथ्य हैं जो उस निश्चितता

और निर्दिष्टता को प्रमाणित करते हैं जिनके साथ प्रत्येक अणुजीव अपने विकासगत निर्धारित स्थान तक पहुँचता है और उस नियमितता तथा यथार्थता की साक्षी देते हैं जिसके साथ वह रासायनिक परिवर्तन प्रस्तुत करता है जिसमें यह विशेषज्ञ होता है। एक नम रोटी का टुकड़ा वायु में खुला रखने पर प्रायः अनिवार्यतः एक बीज बोने योग्य खेत तैयार करता है जिसमें कुछ फफूँदियों में से एक या दूसरे के वायुवाहित बीजाणु अपने को बो देते हैं, अंकुरित होते हैं और नीलाभ खाकी या सफेद नमदे समान वस्तु

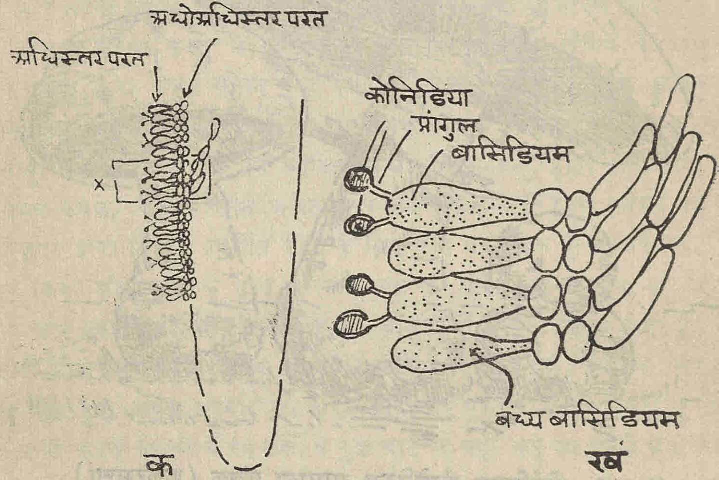

चित्र ७—छत्रक में बीजाणु निर्माण। क, गिल का काट बीजाणुओं (कोनिडिया) की स्थिति प्रदर्शित करते हुए। ख, का एक भाग विवर्धित।

उत्पन्न करते हैं जो फैलकर शीघ्र बीजाणुओं की फसल तैयार कर देती है। प्रत्येक सेव जो रस निकालने के लिये लगाये बागों में नीचे गिरता है, अपने साथ भूमि पर यीस्ट के बीजाणु धारण किये रहता है, जो वायु से उसके तल पर आ गये होते हैं और क्षय के पश्चात् सेव की शर्करा का किण्वन (fermentation) प्रारम्भ कर देता है। यह तथ्य यीस्ट की विद्यमानता और सक्रियता बलात प्रकट करता है। अंगूर के बागों में अन्य प्रकार के यीस्टों के बीजाणु इतने होते हैं कि वे प्रत्येक आततायी ततैया द्वारा धारण किये होते हैं, और वे इतनी निश्चितता से वाहित होते हैं कि अंगूर उगाने वाला जानता है कि जब ततैया बहुसंख्यक हैं, और पकने वाले अंगूरों को छेदने में संलग्न हैं तो अंगूरी मदिरा का सहज ही किण्वन हो सकेगा।

मृतोपजीवी जीवाणुओं में कई किस्में होती हैं जो उनकी तथा कवकों की सक्रियता से क्षय व्यवस्थित अवस्थाओं में अग्रसर होता है। क्रम-क्रम से जटिल कार्बनिक पदार्थ जिनसे मृत शरीर निर्मित होते हैं, विघटित होते हैं यहाँ तक कि अन्त में वे अकार्बनिक पदार्थों के रूप में बिखर जाते हैं जिनसे प्रारम्भ में वे हरे पौधों द्वारा रचित हुये थे। इस प्रकार हरा पौधा मिट्टी से नाइट्रेट अवशोषित करता है; पौधे की संश्लेषण शक्ति से उनमें अन्तर्हित नाइट्रोजन अन्य तत्त्वों से संयुक्त हो जाता है और प्रोटीन का अवयव बन जाता है: इस तरह यह पौधे के जीवित पदार्थ के साथ सम्मिलित हो जाता है: बाद में पौधा मृत हो जाता है; अणुजीवों के अनुक्रमिक दल क्रमशः उसके रासायनिक अवयवों को नष्ट करते हैं जिनमें प्रोटीन भी सम्मिलित है जिसमें से नाइट्रोजन अकार्बनिक रूप में मुक्त होता है, उदाहरणार्थ अमोनिया का एक अवयव। अमोनिया मिट्टी के नाइट्रीकारी जीवाणु के जीवन के पोषण का कार्य करता है: उनकी सक्रियता से यह ऑक्सीकृत (oxidized) होता है और इससे नाइट्रेट उत्पन्न होता है: इस प्रकार नाइट्रोजन परिवर्तन का चक्र पूर्ण वृत्त बन जाता है और नाइट्रोजन एक बार पुनः ऐसे रूप में हो जाता है कि वह सजीव पदार्थों की दुनिया में घटनापूर्ण तथा अनवरत मात्रा पर संवाहित होने के योग्य होता है।

अन्य जीवाणु केवल जीवित ऊतकों में ही वृद्धि करते हैं। वे पराश्रयी विशेषज्ञ होते हैं। इनमें से प्रत्येक अपनी वृद्धि और सक्रियता द्वारा उस शरीर में परिवर्तन उपस्थित करता है जिस पर यह आक्रमण करता है और परिवर्तन इतने प्रमुख हो सकते हैं कि विकृतिविज्ञानी (pathologists) लक्षणों से ही रोगी के रक्त या ऊतकों में रोगाणु की विद्यमानता अनुमान कर सकते हैं और अपने परिणाम की सत्यता शरीर से बाहर अणुजीव को अलग कर तथा पोषित कर सिद्ध कर सकते हैं। इस प्रकार के रोगों की तीव्रतापूर्वक संख्या वृद्धि में गवेषणा ने प्रकट किया है कि किस प्रकार रोगोत्पादक अणुजीवों द्वारा उत्पन्न विष (जीव-विष या टाक्सिन) प्रभावहीन या नष्ट किया जा सकता है और रोग अवरुद्ध किया जा सकता है

यद्यपि रोगोत्पादक जीवाणु की अधिकांश किस्में जन्तुओं पर आक्रमण करती हैं, तथा उनमें से कुछ पौधों के पराश्रयी रूप में विशेषता प्राप्त कर चुकी हैं। इसके विपरीत कवकों में अनेक ऐसी किस्में हैं जो पौधों पर पराश्रयी होते हैं और अपेक्षाकृत थोड़ी ही ऐसी होती हैं जो जन्तुओं पर आक्रमण करती हैं। कोई भी व्यक्ति जो गेहूँ या गुलाब या गुलखैरा पर गेरुए पीले धब्बे या धारियाँ देखता है या लापरवाही से बोये टमाटर में साधारणतया काले धब्बे देख सकता है, कवक के कारण परजीविता का उदाहरण देख सकता है। किसी रोगी टमाटर के नर्म काले धब्बे में पहले सुई

की नोंक प्रविष्ट कर बाद में स्वस्थ टमाटर के फल में प्रविष्ट करने पर रोगोत्पादक कवक के यथेष्ट कवक सूत्रों को लगाने का काम करता है जिससे स्वस्थ फल में रोग पहुँच जाय जिस पर कि उचित समय में सतत वृद्धिशील आकार का काला धब्बा प्रकट होता है।

वनस्पति जगत् के इस सरसरी और स्थल सर्वेक्षण से कम से कम यह स्पष्ट है कि उनमें विभिन्न तथा अनवरत सक्रियता प्रचलित है। वनस्पति जगत् शान्त आवरण धारण किये रहता है, उसके पीछे निर्माण के विशाल तथा विविध कार्य संचालित होते हैं। हरे पौधे के जीवन वृत्त के विश्लेषण द्वारा उसकी विशालता और विविधता का ज्ञान हो सकता है।

हरे पौधों में गेहूँ का प्रमुख स्थान है, अतः उसके उदाहरण द्वारा उपयुक्त कथन की पुष्टि की जा रही है। बीज सदृश फल या गेहूँ का दाना—साधारणतया अन्य सभी बीज सदृश्य अधिक शुष्क पदार्थ और अपेक्षाकृत अल्प जल अन्तर्विष्ट करता है। जहाँ पानी पत्तियों, कंदों और मांसल (गूदेदार) फलों में तीन चौथाई से नवदशांश या और अधिक मात्रा में होता है, वहाँ यह गेहूँ के दाने या अन्य अन्नों में एक दशांश से कुछ ही अधिक होता है। (देखिये सारणी १)

सारणी १

गेहूँ के दाने और अन्य वनस्पति उत्पाद की प्रतिशत रचना और खाद्य-मूल्य

	पानी	प्रोटीन	वसा	कार्बोहाइड्रेट मंड और शर्करा	रेशा	राख	कैलॉरी प्रति पौंड
गेहूँ का दाना	१०·६	१२·२	१·७	७१·३	२·४	१·८	१६२५
आलू	७८·३	२·२	०·१	१८·४	०·४	१·०	३७५
चुकन्दर	८७·५	१·६*	०·१	८·८	०·९	१·१	२००
बन्दगोभी	८९·६	१·८*	०·४	५·८	१·१	१·३	१६५
ककड़ी	९५·९	०·८*	०·१	२·१	०·५	१·४	७०

*प्रोटीन और अन्य नाइट्रोजन मिश्रित पदार्थों का प्रतिशत।

जब तक बीज शुष्क रहते हैं, सुषुप्त—जीवित किन्तु निष्क्रिय पड़े रहते हैं। 'निलंबित चेतना' की स्थिति अधिक समय तक रह सकती है, किन्तु यदि अनुचित रूप में विलंबित हों तो सक्रिय जीवन धारण करने की शक्ति क्षीण होती जाती है। कुछ

प्रकार के बीज (प्याज, चुकन्दर आदि) दो या तीन वर्षों में अंकुरण की शक्ति खो देते हैं: अन्य यह शक्ति कई वर्षों तक रखते हैं। कुछ फलीदार बीज विशेष सावधानी से न रखने पर लगभग १०० वर्ष के पश्चात अंकुरण के समर्थ प्रकट हुये हैं और यह सम्भव है कि अक्षुब्ध मिट्टी में गड़े होने पर भी जंगली सरसों (चार लाक) और फाक्सग्लोव के समान पौधों के बीज इससे भी अधिक सुषुप्त पड़े रह सकते हैं। गेहूँ के दाने में सहन करने की यथेष्ट शक्ति होती है और तीस या चालीस वर्ष के बाद भी अंकुरित हो सकते हैं परन्तु ममी गेहूँ अर्थात हजारों वर्ष पुराने ममी (सुरक्षित शव) के खानों का गेहूँ अंकुरित होने की बार-बार घोषणा मानव-वर्ग की विश्वास प्रवणता के अतिरिक्त और कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करती।

नई फसल का गेहूँ का दाना पानी में भिगोने या नम मिट्टी में डालने पर अंकुरित होना प्रारम्भ करता है। जिस गति से बीज का अंकुरण होता है, वह कुछ अंश में तो बीज की आयु पर और कुछ अंश में फसल की किस्म पर निर्भर करता है, जिसमें से वह लिया गया होता है। यदि बीज तीन या चार वर्षों से अधिक का रखा होता है तो वह मंद गति से तथा अनियमित रूप से अंकुरित होता है किन्तु यदि अच्छी और नूतन फसल का हो तो बीज तत्परता से तथा एक साथ ही अंकुरित होते हैं। अंकुरण की गति बाह्य अवस्थाओं पर निर्भर करती है। केवल निश्चित तापों के मध्य ही गेहूँ या अन्य बीज अंकुरित होते हैं।

गेहूँ में निम्न सीमा लगभग २° सेंटीग्रेड और ऊपरी सीमा लगभग ५०° सेंटीग्रेड है। मिट्टी में वायु के प्रवेश करने पर ही अंकुरण निर्भर है। जलाक्रान्त मिट्टी में बोने पर गेहूँ का अंकुरण मन्द, और पूर्णतया विफल भी हो सकता है। अंकुरण के लिये वायु का अवयव ऑक्सीजन आवश्यक है। यह जलमग्न दाने के व्यवहार का प्रेक्षण करने से प्रकट हो सकता है। इस प्रयोजन के लिये जौ, जो पानी में तत्परता से अंकुरित होता है, गेहूँ से उत्तम होता है। नल के साधारण पानी में जल मग्न होकर यह अंकुरित होता है और हरी पत्तियाँ उत्पन्न करता है, परन्तु यदि नल का पानी इतनी देर तक अच्छी तरह उबाला गया हो कि उसमें विलेय ऑक्सीजन बाहर हो गई हो और ऐसी दशा में ठंडा किया गया हो कि तनिक भी ऑक्सीजन अवशोषित न हो सकी हो तो उसमें जल मग्न जौ के दाने का अंकुरण अत्यन्त मन्द होता है और यदि तेल के आच्छादन से वायु द्वारा ऑक्सीजन अवशोषण अवरुद्ध कर दिया गया हो तो वह पूर्णतः दब सकता है।

अंकुरण के मार्ग के अनुसरण के लिए गेहूँ के दानों को एक प्याली में रखना चाहिये जिसमें एक स्वच्छ, श्वेत, स्याही सोख कागज गीला कर या पानी में नम

रख कर अस्तर की तरह लगा दिया गया हो और इसी प्रकार की अस्तर लगी दूसरी प्याली से पहली प्याली ढकी हो। दाने जब पानी अवशोषित करते हैं तो फूलते हैं; और स्थूल हो जाते हैं और कुछ दिनों के भीतर फूलों के रूप में अंकुरण का प्रथम संकेत दिखाई पड़ता है। गेहूँ और राई में प्राथमिक मूलों (primary roots)

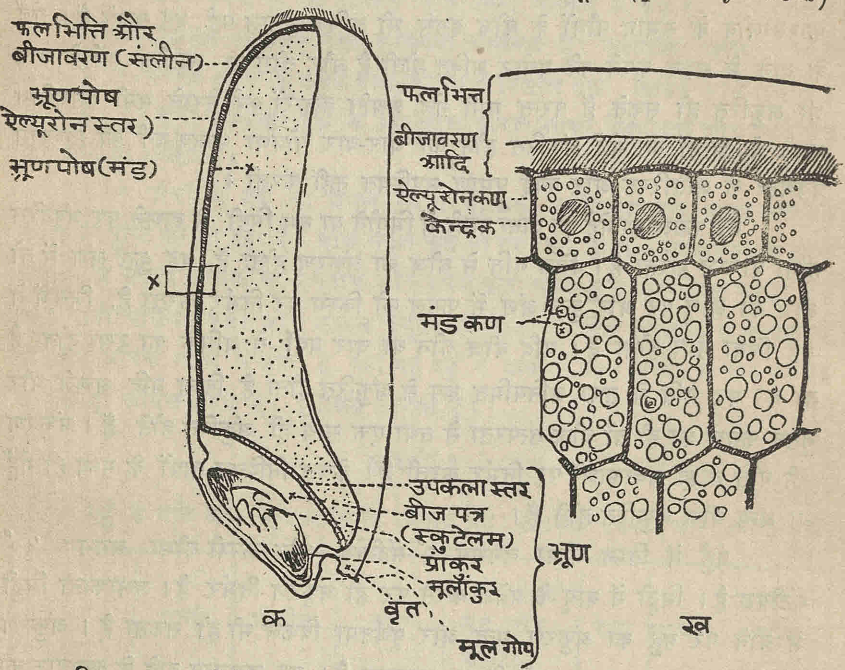

चित्र ८—क, गेहूँ के दाने का अनुदैर्ध्य काट; ख, काट (अति उच्च आवर्धित) ऐल्यूरोन कण स्तर और भ्रूणपोष के मंड धारण करने वाले कौशिकाओं को प्रदर्शित करते हुए।

की संख्या तीन होती है, और जौ तथा जई में पाँच। वे अपना मार्ग बलात निकालते हैं और आवरक ऊतक को इस तरह चीर लेते हैं जैसे कोई जर्जर उँगली दस्ताने को चीर दे। प्राथमिक मूल क्षुद्र और प्रायः विषम कोण सम चतुर्भुज के आकार के श्वेत से भ्रूण (embryo) के अधो भाग से, (चित्र ८) जो दाने के एक सिरे के निकट तल के समीप होता है, उत्पन्न होते हैं। भ्रूण का ऊपरी भाग, अब भी दाने के अंदर बने रहने पर, एक क्षुद्र प्ररोह अक्ष (shoot axis) युक्त होता है। इसकी चोटी पर्ण के अविकसित रूप से आवेष्टित होती है जो एक दूसरे के निकट अक्ष से उत्पन्न

University of Jammu
LIBRARY
Acc. No 72279
JAMMU

होती हैं और वर्धन-अग्र कोशिका के जितने ही समीप होती है उतनी ही छोटी होती है। पत्तियाँ नग्न गुम्बजाकार अग्रक या अक्ष के वर्धन अग्रकोशिका के चारों ओर लिपटी होती हैं और एक प्रौढ़ पौधे के स्तंभ पर धारण की हुई कलिका के समान, कलिका की रचना करती हैं। भ्रूण का एक दूसरा विचित्र भाग बरूथिका (scutellum) कहलाता है (चित्र ८) जो न तो पत्ती, न स्तम्भ और न मूल से समान दिखाई पड़ता है। यह अंग भ्रूण के अक्ष से कवचाकार के समान होता है और इसका धरातलीय बाह्यत्वचा सम्बन्धी स्तर भ्रूण से बाहर रहने वाले ऊतकों से सम्पर्क स्थापित करता है। बरूथिका जो अंकुरित दाने में बड़ी और अभिदृश्य होती है, अंकुरण समाप्त होते ही मुरझा कर गिर जाती है। इसलिए यह भ्रूणीय अंग मानी जा सकती है अर्थात एक ऐसा अंग है जो प्रारम्भ जीवन में एक मत्त्वपूर्ण कार्य करता है किन्तु प्रौढ़ व्यवित के लिये निरर्थक होता है। कवचवत् संरचना की आकारिकीय प्रकृति अनिश्चित है, किन्तु इसको एक रूपान्तरित बीजपर्ण या बीजपत्र (cotyledon) मानने के कुछ आधार हैं। इस मत के समर्थन में यह इंगित किया जा सकता है कि गेहूँ पुष्पी पौधों के उस उपवर्ग से सम्बन्ध रखता है जिसके सदस्य एक बीजपत्र धारण करने का लक्षण युक्त होते हैं। इस दृष्टि से और अन्य कई दृष्टियों से भी पुष्पी पौधों के दूसरे उपवर्ग द्विबीजपत्री से, जो प्रायः निश्चिततः दो बीजपत्र धारण करते हैं, (देखें चित्र ११) बिल्कुल भिन्न रूप के होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक एक-बीजपत्री—प्याज आदि के भ्रूण, एक विलक्षण, कुछ-कुछ कवचाकार या चषकाकार चूषक धारण किये होते हैं जो बरूथिका के समान ही कार्य करते हैं और बीजपत्र के सिरे से स्पष्टतः निर्मित होता है।

जब तक प्राथमिक मूल कुछ निश्चित लम्बाई तक नहीं पहुँच गये होते हैं, अंकुरित दाने में जीवन का अन्य कोई स्पष्ट चिह्न नहीं होता। मिट्टी में दृढ़ता के साथ अपने को स्थापित कर लेना जड़ के लिये जीवन और मृत्यु का प्रश्न होता है जिससे वह बीजांकुर (seedling) को केवल यंत्र की तरह सँभाले ही न रह सके, बल्कि जल और अन्य पोषक पदार्थ भी ग्रहण कर सके। यदि मूल मिट्टी में दृढ़ता के साथ प्रविष्ट न हो जाय, तो बाद में पत्तियों का निकलना कठिन हो जाता है, और इससे भी खराब बात यह है कि नये पौधे के मिट्टी में हिलते-डुलते रहने से जड़ों की वृद्धि और उनके अवशोषण, दोनों ही कार्य में बाधा पड़ती है। यह निस्संदेह प्रौढ़ एवं बीजांकुर दोनों ही के लिये सत्य है और जो माली पौधों के जड़ की मिट्टी भुरभुरी करने की उपेक्षा करता है, वह पौधा बेचने वाले व्यवसायियों का परम मित्र होता है, क्योंकि उसके पौधे अवश्य सूख जायँगे और उसको दूसरे पौधे खरीदने पड़ेंगे।

सारणी १ का प्रेक्षण उन पदार्थों की प्रकृति का सुझाव देता है, जिनको नये मूलों को आवश्यकता होती है।

कोमल पत्तियाँ जिन्हें पौधों को अवश्य ही तुरन्त उत्पन्न करना होता है, लगभग नव दशांश भाग जल से निर्मित होती हैं। इसलिये पौधे को अवश्य ही जल का निरंतर प्रदाय रखना चाहिये। कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन का प्रचुर भंडार दाने में रहता है किन्तु खनिज पदार्थ (सारणी १ में राख देखें) का भंडार अत्यल्प होता है। इसलिए यह संभाव्य प्रतीत होगा कि बीजांकुर मूल की प्रारम्भिक और तीव्र वृद्धि का कारण भ्रूण में उनकी स्थिति और बीजांकुर को एक अवलंब का निश्चित बिन्दु प्रदान करने की

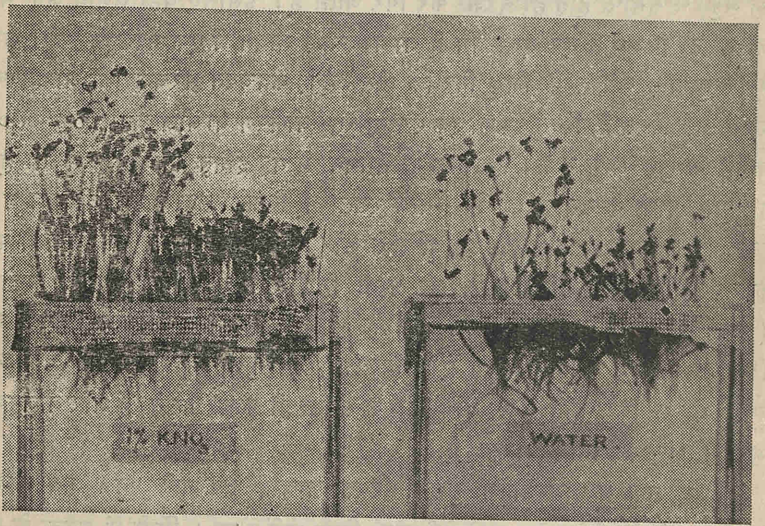

चित्र ९—नवोद्भिदों की वृद्धि पर पोटैशियम नाइट्रेट का प्रभाव। सरसों और क्रेस एक साथ १% पोटैशियम नाइट्रेट विलयन और जल में बोये हुए।

आवश्यकता ही नहीं है, बल्कि मिट्टी से खनिज पदार्थ प्राप्त करने की नितान्त आवश्यकता भी है। सरसों और क्रेस (cress) के बीजों से किया हुआ प्रयोग इस निष्कर्ष का समर्थन करता है (चित्र ९ देखें)। इनमें से किसी एक या दोनों किस्मों के कुछ बीज, एक काँच के मर्तबान में लगभग पूरा पानी भरकर, उसके मुँह पर एक मोटा मलमल फैलाकर और बाँधकर, उसके ऊपर बोने से वे अंकुरित होंगे और कुछ समय में स्वस्थ बीजांकुर के रूप में वृद्धि करेंगे; किन्तु यदि एक दस्ती चाकू के फलक के सिरे पर आ

सकने की मात्रा में नाइट्रेट आफ सोडा जल में मिला लिया जाय तो बीजांकुर के वायवीय भागों की वृद्धि बहुत अधिक प्रबल होगी यद्यपि जैसा चित्र ४ में प्रदर्शित किया गया है, मूल की वृद्धि अल्प है। प्रकृति में अधिकांश पौधों के नवोद्भिद नाइट्रोजन के लिये भूखे होते हैं और नाइट्रोजन के विलेय और उपयुक्त यौगिक की अत्यन्त अल्प मात्रा के संयोग से उनके संवर्धन में बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

जब मूल निकल आते हैं तो एक पर्णवत् संरचना जो हरी, बेलनाकार, खोखली और शंकुरूप होती है; जिसे प्राकुर-चोल (coleptile) कहते हैं, गेहूँ के भ्रूण के ऊपरी भाग से उत्पन्न होती है। यदि दाने को ढकने वाली याली इतनी सटी हो कि प्रकाश भीतर न आ पाता हो तो प्रथम पत्ती हरी नहीं होती। प्रकाश के मिलने पर वह हरी होगी। यह पाण्डुरित (etiolated) होती है—अर्थात् श्वेत या पीलेपन युक्त बहुत लंबोतरी और पिलपिली होती है। प्रकाश के अभाव में पौधे के वायवीय भाग (स्तंभ और पत्तियाँ) अव्यवस्थित हो जाते हैं। केवल पर्णहरिम ही प्रत्येक अवस्था में पौधे के सर्वांग में सम्वर्धित होना रुक नहीं जाता, बल्कि पत्ती और तने के सम्बन्ध परिवर्तित हो जाते हैं। यदि गेहूँ के दाने की जगह सरसों या द्विबीजपत्री पौधों के बीज बोये जायँ तो यह आधिक सुन्दर रूप में दिखाई पड़ सकता है। प्रकाश की कमी के कारण पत्तियाँ छोटी रह जाती हैं; और तना जो प्रकाश में उत्पन्न हुये पौधों में छोटा और गठीला होता है, अत्यधिक लम्बा हो जाता है, पतला तथा इतना अपतृणीय सा हो जाता है कि कठिनाई से सीधा खड़ा हो सकता है। ये तथ्य, पहले जितना आभासित हो सकते हैं, उससे कहीं अधिक महत्व के हैं, क्योंकि वे प्रकट करते हैं कि हरे पौधे के निर्माणात्मक प्रक्रम में भाग लेने के अतिरिक्त प्रकाश पौधों की वृद्धि पर नियंत्रणकारी प्रभाव डालता है। जिस प्रकार धूप से वंचित स्वास्थ्य सदृश्य ही पौधों की वृद्धि के लिए धूप आवश्यक होती है।

गेहूँ के अंकुरण में दूसरी अवस्था विलक्षण होती है। प्राथमिक मलों का स्थान लेने के लिये निर्दिष्ट मलों का एक नया दल स्तम्भ के आधार पसे बाहर निकलता है। यह स्थानान्तर अन्नों और अन्य एकबीजपत्रियों के लिये विशिष्ट होता है और द्विबीज-पत्रियों में साधारणतया नहीं होता। द्विबीजपत्रियों के भ्रूण, नियमतः, एक मूसला जड़ (tap root) धारण करते हैं और बीज से बाहर निकलने के पश्चात्, पार्श्व मूलों की उत्पत्ति करते हैं। मुख्य या मूसला जड़ पर धारण किये पार्श्व मूल सत्य मूल कहे जा सकते हैं और स्तम्भ के आधार से उत्पन्न होने वाले मूल अपस्थानिक मूल (apventi-

tious roots) कहलाते हैं। द्विबीजपत्री नवोद्भिद एक सत्य मूल धारण करते हैं, जो साधारणतया स्थायी होता है और प्रौढ़ पौधों की मूल संहति निर्मित करता है; इसके विपरीत, यदि एकबीजपत्री भ्रूण मूल धारण भी किये होता है तो मुख्य मूल की अकाल मृत्यु हो जाती है और वह अपस्थानिक मूलों द्वारा स्थानापन्न होता है।

गेहूँ के नवोदभिद का प्रथम पर्ण अविकसित होता है। यह पूर्णतः एक आच्छादक पर्णाधार का बना होता है और वैसा ही दूसरा भी होता है, जो अपने ऊपर लिपट कर प्रथम के बेल्लित आधार के मध्य से बाहर निकलता है। यदि नवोद्भिद निरंतर अंधकार में रखा जाय तो, वृद्धि क्षीण हो जाती है, संवर्धन रुक जाता है और कुछ समय तक लड़खड़ाते रहने के बाद नवोद्भिद मर जाता है। इसके विपरीत प्रकाश में रहने वाले नवोद्भिद हरे और पुष्ट हो जाते हैं। दोनों अवस्थाओं में अंकुरण दाने के उस भाग में परिवर्तन का अनुगमन करता है जो भ्रूण से बाहर स्थित होता है। प्रारम्भतः कठोर और चकमकी, दाने के जल अवशोषित कर लेने के बाद भी दृढ़ बना रहने पर यह तन्तु जिसे भ्रूणपोष (endosperm) कहते हैं (चित्र ८) अंकुरण के प्रगति करने पर अधिकाधिक नर्म और जलीय होता जाता है, यहाँ तक कि अंत में उसका अल्प भाग भी नहीं रह जाता। सम्पूर्ण दाने में तनु-भित्तीय कोशिकायें जिनसे भ्रूणपोष निर्मित होता है (चित्र ८ ख), अधिकांश भाग में मंड के दानों से भरी होती है, जिनमें से प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी में अधिक हल्के और गाढ़े संकेन्द्र स्तरों युक्त एक ठोस, अंडाकार काय रूप में दिखाई पड़ता है। भ्रूणपोष का बाह्यतम स्तर, जो ऐल्यूरोन स्तर (aleurone layer) कहलाता है, मंडयुक्त नहीं होता, बल्कि प्रोटीन के कणों युक्त होता है। मंड (स्टार्च) और प्रोटीन, दोनों ही इस तथ्य से पृथक्कृत हो सकते हैं कि आयोडीन से अभिरंजित करने पर मंड तो नीला हो जाता है और प्रोटीन पीले भूरे रंग का हो जाता है। अंकुरण से विनष्ट होना प्रारम्भ होने वाले दाने में बरूथिका बहुत दीर्घित हुई दिखाई पड़ सकती है, और उसके तथा भ्रूणपोष के मध्य निकट सम्बन्ध ऐसे होते हैं कि यह इंगित होता है कि भ्रूणपोष से भ्रूण तक खाद्य-पदार्थ के स्थानान्तरण में बरूथिका महत्वपूर्ण भाग लेती है। इससे पुनः इस भ्रूणीय अंग की क्षणभंगुरता और विलक्षण रूप दोनों की ही व्याख्या होने में सहायता प्राप्त होगी।

अंकुरण की अनुक्रमिक अवस्थाओं में भ्रूणपोष की अन्तर्वस्तु का निरीक्षण उस अपव्यय की प्रकृति प्रकट करता है जो उसकी कोशिकाओं की अन्तर्वस्तु में संचालित होती है। प्रोटीन के दाने लुप्त हो जाते हैं, मंड के दाने फूल जाते हैं, अपना विशेष

स्तर-विन्यास (stratification) खो बैठते हैं, दरारों से फट जाते हैं, आयोडीन से अच्छा नीला रंग उत्पन्न करना बंद कर देते हैं। यहाँ तक कि अंत में दाने की केवल धूमिल प्रेतवत् रूप रेखा रह जाती है (चित्र १० देखें)। भ्रूणपोष से प्रोटीन और मंड के लुप्त होने के साथ ही ये पदार्थ नवोद्भिद में अपनी विद्यमानता प्रकट

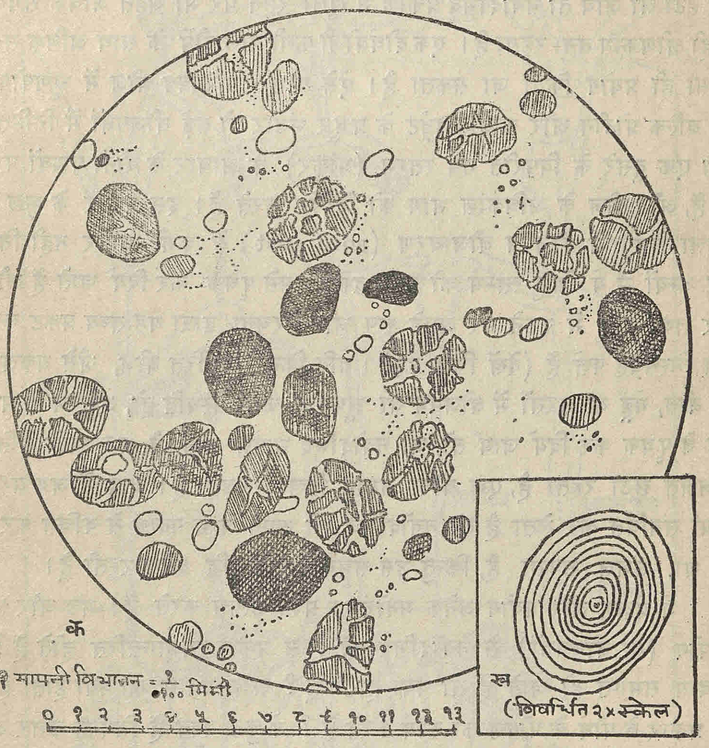

चित्र १०—जो के भ्रूणपोष के मंड कण। क, टायास्टेस की क्रिया मे विघटन होते हुए मंड कण; ख, संपूर्ण कण रेखांकन प्रदर्शित करते हुए।

करते हैं। इसलिये इसमें कठिनता से ही सन्देह हो सकता है कि खाद्य पदार्थ किसी रूप में भ्रूणपोष से नये पौधे तक संवाहित होते हैं। यदि ऐसा है तो यह स्पष्ट है कि जो जन्तुओं के लिये खाद्य है, वही पौधों के लिये भी खाद्य है, क्योंकि चक्कीवाला गेहूँ के भ्रूणपोष से ही आटा बनाता है। पिसाई के प्रक्रम में वह भूसी और भ्रूण को त्याज्य कर देता है। इस तथ्य के होते हुये भी कि ये मानव वर्ग के लिये महान पोषक मूल्य

के पदार्थ अन्तर्विष्ट रखते हैं, ये भाग साधारण सफेद आटे में नहीं होते बल्कि जानवरों की खुराक के लिये चोकर नामक बेकार वस्तु के नाम से बिकता है।

भ्रूण खाद्य पदार्थ भ्रूणपोष से प्राप्त करता है, यह प्रयोग द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। यदि, जब दाना अंकुरित होना प्रारम्भ हो गया हो, भ्रूणपोष की पूरी मात्रा हटा ली जाय तो नवोद्‌भिद प्रकाश में खुला रहने पर भी बहुत अधिक समय तक ऐसा ही क्षीणकाय बना रहता है। एक दीर्घबीजी फली वाले पौधे के साथ अधिक सरलता से ऐसा ही प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे पौधे परिपक्व बीज में भ्रूणपोष नहीं होता बल्कि प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट के प्रचुर भंडार दो बड़े बीजपत्रों में निहित होते हैं जो एक दूसरे के विपरीत नव स्तम्भ (प्रांकुर) के आधार के दोनों पार्श्वों पर लगे होते हैं, और बीज के अधिकांश भाग को निर्मित करते हैं। इस प्रकार के कुछ पौधों (बकला सेम) में बीजपत्र बीजावरण (soed coat) से कभी बाहर नहीं निकलते किन्तु अन्यों में ये शिशु स्तम्भ की वृद्धि द्वारा उससे पृथक कर दिये जाते हैं और हरे होकर तथा वायु में उठने पर अपने रूप और संरचना द्वारा यह तथ्य प्रकट करते हैं कि वे निस्संदेह पत्ते हैं (देखें चित्र ११)। यदि किसी अंकुरित बीज, जैसे बकला सेम रनर बीन, गेहूँ या सरसों में बीजपत्र या भ्रूणपोष, जैसी स्थिति हो, अंकुरण के प्रारम्भ में ही वे पृथक् कर दिये जायँ तो, जो नवोद्‌भिद उत्पन्न होता है, वह उसके अतिरिक्त जो अक्षत छूटा रहता है, एक बौना समान दिखाई पड़ता है। बाद में जब यह अन्य पत्तियाँ संवर्धित कर लेता है तो नवोद्‌भिद जो अपने खाद्य पदार्थ से वंचित कर दिया गया था, संभल सकता है, किन्तु उस समय उसकी वृद्धि क्षीण रहती है।

ये प्रेक्षण और प्रयोग अनेक मनोरंजक प्रश्न उत्पन्न करते हैं। मंड और प्रोटीन भ्रूणपोष (या बीजपत्रों) से नवोद्‌भिद को किस प्रकार स्थानान्तरित होते हैं? जब ये प्रदाय समाप्त हो जाते हैं तो क्या होता है? खाद्य पदार्थ, का क्या होता है और किस प्रकार वे पौधे के पोषण का कार्य करते हैं? ये कुछ प्रश्न हैं जिनका उत्तर अवश्य मिलना चाहिये, यदि पौधे के जीवन के सम्बन्ध में हमारे अन्वेषण को सफलता प्राप्त होती है, किन्तु स्वयं गेहूँ का पौधा, शीघ्र प्रौढ़ता को प्राप्त कर हमारे प्रथम ध्यान देने की वस्तु बनता है और उन प्रश्नों के उत्तर के लिये हमें बाद के अध्यायों में प्रतीक्षा करनी चाहिये।

शिशु गेहूँ का पौधा, सिकुड़े दाने से मुक्त होकर, मिट्टी में अपने मूल दृढ़ता से स्थापित करता है और हरी पत्तियाँ ऊपर की ओर प्रकाश में बढ़ती हैं, तथापि इसका स्तंभ भूमि के तल के कुछ नीचे अधिक समय तक रहता है। प्ररोह अक्ष छोटा और गँठीला बना रहता है। किन्तु बीजांकुर अवस्था पहमें जैसा था उससे अधिक स्थूल बन

जाता है और एक-एक कर अपनी पत्तियाँ वायु में ऊपर उठाता है। कुछ पत्तियों के कक्ष में पार्श्व कलिकाएँ उत्पन्न होती है जो प्रत्येक रूप में भ्रूण की अग्रस्थ कलिका के समान होती

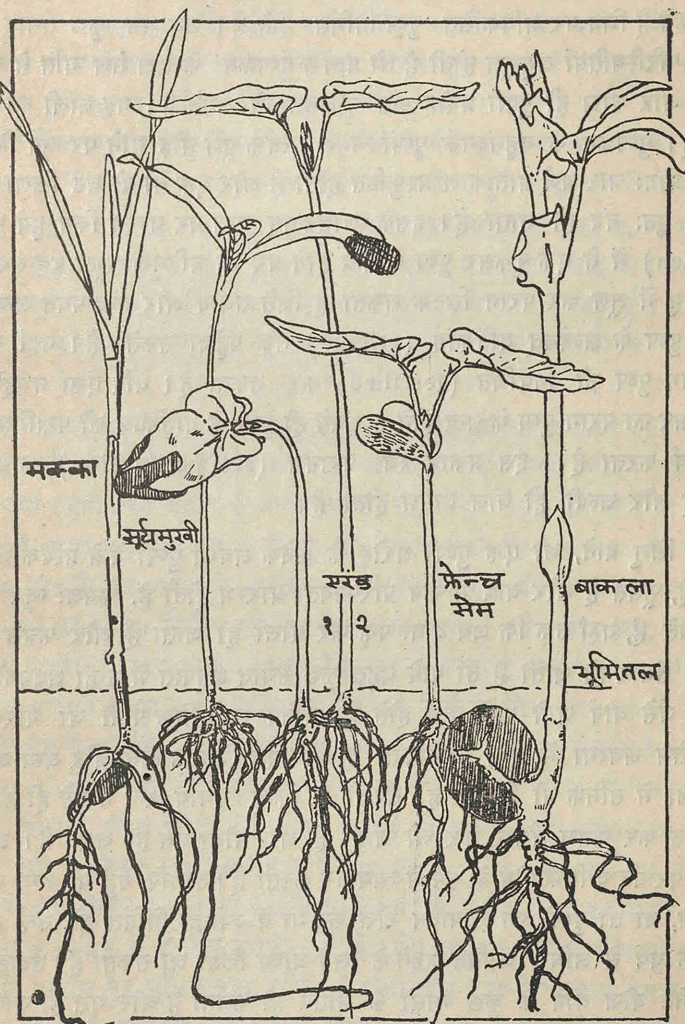

चित्र ११—नवोदभि, अंकुर में बीजपत्रों के व्यवहार को प्रदर्शित करते हुए।

है और वे भी वृद्धि करती है तथा पत्तियों का अनुक्रम उत्पन्न करती हैं। पौधा दोजी करता है। वह प्रौढ़ता के समीप पहुँचता है और धीरे से पुष्प स्फुटन के लिये तैयार

होता है। यद्यपि भूमि के ऊपर कोई संकेत दृश्य नहीं होता, गेहूँ के पौधे के अक्ष या स्तम्भ पुष्प के लिये परिपक्व होकर इस अवधि में प्रत्येक एक सूक्ष्म पुष्पक्रम व्यवस्थित करते रहते हैं जिन पर अविकसित पुष्प निर्मित होते हैं। जब सब कुछ तैयार रहता है तथा परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं तो प्रत्येक पुष्पक्रम के अक्ष तेज गति से दीर्घित होते हैं और शीघ्र ही पुष्पी प्ररोह खेत में लहलहाने लगते हैं। यह बाली का फूटना होता है। पुष्पक्रम के बहुसंख्यक पुष्पों में से प्रत्येक पूर्ण प्रौढ़ होने पर धूप निकलने के दिन प्रायः चार बजे प्रातःकाल प्रस्फुटित होता है और एक या दो घंटे खिला रहता है और पुनः बंद हो जाता है। इसके लोलकवत् वृन्त पर धारण किये हुये पुंकेसर (stamen) में से एक पुंकेसर पुष्प के बन्द होने पर भी बहिमुख छूटा रह सकता है और वायु में झूल कर पराग छिटक सकता है जिसे संयोग और मन्द पवन अन्य खुले गेहूँ के पुष्प के झब्बेवत् वर्तिकाग्र (stigma) तक पहुँचा सकते हैं। वहाँ पहुँचने पर पराग पुष्प को निषेचित (fertilize) कर सकता है। यदि ऐसा न हो सके, तो पुंकेसर का पराग पुष्प के बन्द होने से अपने ही पुष्प के वर्तिकाग्र को परागित करने का कार्य करता है। इस प्रकार स्व परागण (self pollination) कार्यान्वित होता है और जल्दी ही बीज उत्पन्न होता है।

शिशु दाने, जो एक पुष्पी प्ररोह के अनेक अबंध्य पुष्पों में से प्रत्येक में पाया जाता है, फूलते हैं और बाद में जब परिपक्वता प्रारम्भ होती है, क्रमशः न्यून जलीय होते जाते हैं, यहाँ तक कि जब दाना पक कर पीला हो जाता है और फसल कटने के लिये तैयार हो जाती है तो दाने बहुत कुछ समान अनुपात में उन्हीं अवयवों युक्त होते हैं जैसे बोये जाने वाले दाने होते हैं; तनिक सा अधिक पानी जो परिपक्वता की अंतिम अवस्था में लुप्त हो सकता है, और कदाचित् प्रोटीन और अन्य अवयवों की मात्रा में तनिक सी भिन्नता हो सकती है, किन्तु सर्वांग रूप में वैसे ही होते हैं। गेहूँ काट कर फसल तैयार कर ली जाती है, और पौधा मृत हो जाता है। इस ढंग से बोने पर यह वार्षिक पौधे के रूप में व्यवहार करता है। तथापि, गेहूँ या अन्य वार्षिक पौधे को, या तो पुष्पों का उत्पादन रोक कर या वे ज्यों ही निर्मित हों, उन्हें अवरुद्ध कर एक वर्ष से अधिक जीवित रहने के लिये बाध्य किया जा सकता हैं। उदाहरणार्थ मिगनोनेट बीज बोने के कुछ मासों के भीतर ही फूलता है और मृत हो जाता है; किन्तु यदि इसकी पुष्प कलिकायें प्रकट होते ही तोड़ ली जाया करे तो उसे कई वर्ष तक जीवित रखा जा सकता है। यह सत्य है कि पाला उसे मार गिरा सकता है किन्तु वह दुर्घटना रोकी जा सकती है और पौधा बहुवर्षी (perennial) बनाया जा सकता है।

सत्य बात यह है कि जो पौधा वार्षिक कहलाता है, वह ऐसा पौधा है जो बीज उत्पन्न करने के बाद मृत हो जाता है। यदि इसे बीज उत्पन्न करने से रोक दिया जाय, तो वह एक वर्ष से अधिक तक जीवित रह सकता है। अनेक अवस्थाओं में एक बार बीज पैदा करने वाले पौधों का जीवन–वृत्त एक वर्ष में संकुचित होता है और वह सुविधातया वार्षिक कहलाता है, किन्तु अन्यो में वर्धी वृद्धि अनेक वर्षों तक निरंतरित रह सकती है और ऐसा हो सकता है, जैसे कुछ ताड़ों व अगेव में, लगभग एक शताब्दी व्यतीत होने पर एक बार फूलने वाला पौधा पुष्पित होने के लिये परिपक्व हो जाता है। जब वह घड़ी आ पहुंचती है तो पुष्प प्रस्फुटित होता है, बीज बनता है और पौधा मर जाता है। सब एक बार फूलने वाले पौधे, चाहे वे अल्प जीवी, वार्षिक या दीर्घजीवी हों, अनेक बार फल धारण करने वाले पौधों से भिन्न होने के कारण एक बार फल धारण करने वाले कहे जा सकते हैं। अनेक बार फल धारण करने वाले पौधे पुष्प पैदा करने के पश्चात् मृत नहीं होते बल्कि स्थायी रूप से बहुवर्षी रूप में पुष्प और फल धारण करते रहते हैं। एक बार फल धारण करने वाले पौधों में द्विवार्षिक पौधे सम्मिलित हैं जैसे गोभी की जाति के पौधे। उनके जीवन की दीर्घता दो मौसमों (वर्षों) की अवधि के अन्दर सीमित रहती है। प्रथम वर्ष में पौधा अधिक मात्रा में खाद्य पदार्थ निर्मित करता है, जो विशेष अंगों में, जैसे प्याज के बल्ब या शलजम और मैंगोल्ड वर्जेल के कन्दिल मूल (अंशतः मूल और अंशतः स्तम्भ) में, संचित रह सकता है। द्वितीय वर्ष में संचित खाद्य-पदार्थ का भंडार पुष्प, बीज और फल के निर्माण में व्यय होता है तथा पौधा मृत हो जाता है, यद्यपि कोई नहीं जानता कि क्यों, पत्तियाँ मुरझा जाती हैं, स्तम्भ भंगुर हो जाते हैं और टूट जाते हैं, मूल सड़ जाते हैं और केवल बीज---नस्ल की भावी का प्रत्याभूत----जीवित रहता है।

गेहूँ के पौधे के जीवन-वृत्त को पूर्ण करने के लिये उस फसल का विचार करना चाहिये जो यह उत्पन्न करता है। संसार के गेहूँ की फसल प्रायः ध्रुवीय वृत्त से लेकर भूमध्य रेखा के निकट पठारों तक प्रायः प्रत्येक देश में बोई जाती है। वर्ष का प्रत्येक मास पीले परिपक्व दानों युक्त खेत देखता है। गेहूँ के खेत ४ लाख वर्ग मील----ब्रिटिश द्वीप समूहों के क्षेत्र के लगभग तिगुने----में फैले हैं। उत्पादन विभिन्न सीमाओं के अन्दर होता है, क्योंकि सब भूमि समान उर्वर नहीं होती और न सभी जलवायु समान अनुकूल होते हैं, न सब प्रकार के गेहूँ समान उपजाऊ होते हैं और न खेतों पर सदा यथेष्ट मजदूर या कौशल सुलभ होता है। सब प्रकार के हानिकारक जन्तु फसल की बर्बादी करते हैं, परजीवी कवक जैसे गेरुई, जो दाने के उत्पादन को अवरुद्ध करती है, से लेकर गौरैया के झुंड तक जो अपनी ही ओर से फसल काट सा लेते हैं, फसल का संहार

करते हैं। अनुकूल वर्षों में उत्कृष्टतया कृष्य के छोटे क्षेत्र और अत्यन्त उर्वर भूमि चालीस गुना अधिक उपज करती पाई गई है। प्रति एकड़ तीन बशल (प्रत्येक बुशल ६३ पौंड का) दाने बोने पर ११७ बुशल उपज प्राप्त हुई है। ब्रिटिश द्वीप समूह में, जहाँ कृषि का माप दंड इतना ऊँचा है कि उसकी तुलना केवल जर्मनी से की जा सकती है और केवल बेल्जियम तथा हालैन्ड केअतिरिक्त जहाँ केवल छोटे क्षेत्रों में ही बीज बोये जाते हैं, कोई अन्य देश उत्कृष्टता में नहीं बढ़ा है, आधुनिक वर्षों में औसत उपज प्रति एकड़ ३२ बुशल है। संसार का औसत १३ या १४ बुशल है। प्रति एकड़ १३ बुशल के आधार पर गेहूँ की उपज ३ अरब ५० करोड़ बुशल के लगभग पहुँचती है। गेहूँ की फसल के सम्पूर्ण खाद्य मूल्य का अनुमान करने के लिये भूसे की उपज का भी हिसाब लगना होगा, जिसका वजन दाने के वजन से कहीं अधिक होना है: क्योंकि भूसे का खाद्य-मूल्य न्यून नहीं है और यदि उचित रूप से प्रयुक्त हो तो यह खाद रूप में खेत में लौट आता है जो भूमि की उर्वरता को बहुत अधिक बढ़ाता है। किन्तु हमारा वर्तमान उद्देश्य खाद्य प्रदाय में गेहूँ के भाग लेने के परिणाम के स्थूल संकेत से अधिक नहीं है, भूसा हिसाब में छोड़ दिया जा सकता है। साथ ही बोवाई वाले बीज का भी हिसाब छोड़ा जा सकता है जिससे फसल उत्पन्न होती है। गेहूँ के दाने की रचना (सारणी १) और सम्पूर्ण उपज के हिसाब से प्रकट होता है कि संसार की फसल में लगभग ७ करोड़ टन काब हाइड्रेट, एक करोड़ बीस लाख टन प्रोटीन, लगभग १५ लाख टन वसा और इससे भी अधिक खनिज पदार्थ (राख) होते हैं।

अब फसल के खाद्य मूल्य का स्थूल अनुमान लगाना रह गया है। खाद्य मूल्य इकाइयों के रूप में मापे जाते हैं जिन्हें कैलोरी (calorie) कहते हैं। एक बड़ी कैलोरी का अर्थ १००० ग्राम (एक किलोग्राम = २.२ पौंड) पानी के ताप को ०° सेन्टीग्रेड से १° सेन्टीग्रेड (शतांश) तक बढ़ाने के लिये आवश्यक ऊष्मा की मात्रा है। जैसा सारणी १ में प्रदर्शित किया गया है, एक पौंड गेहूँ के दाने में स्थित कैलोरी १६२५ होती है। साधारण मात्रा में शारीरिक श्रम करने वाला व्यक्ति यदि वह अपना स्वास्थ्य और शरीर भार रक्षित रखना चाहता है, तो उसको प्रतिदिन ३००० कैलोरी प्रदान करने वाले यथेष्ट खाद्य की आवश्यकता होती है। यह कहना अनावश्यक है कि भोजन में सब प्रकार के खाद्य-पदार्थ--कर्बोहाइड्रेट, प्रोटीन आदि उपयुक्त अनुपात में होने चाहिये। विटामिन भी अवश्य होना चाहिये। किन्तु यदि मनुष्य रोटी पर ही जीता आया है तो संसार के गेहूँ की फसल केवल ३० करोड़ मनुष्यों के लिये एक वर्ष का भोजन प्रदान करेगी। मनुष्य को खिलाने के लिये गेहूँ के पौधे का यह योगदान है।

अध्याय ३

हरे पौधे द्वारा खाद्य-पदार्थों का निर्माण। कच्चे पदार्थः खनिज लवण, पानी और कार्बन डाइऑक्साइड। मूल द्वारा जल और खनिज लवण का अवशोषण। जल-और बालुकी-संवर्ध। साधारण हरे पौधे और फलीदार पौधों के नाइट्रोजन का स्रोत। मूलग्रन्थिका और नाइट्रोजन विनिवेशन (यौगिकीकरण)। हरी पत्ती द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण। कच्चे पदार्थों के संग्रह कार्य के सम्बन्ध में मूल, स्तभ और पत्ती

हरे पौधे द्वारा खाद्य पदार्थ निर्माण की तीन अवस्थाएं हैं, यद्यपि वे एक साथ ही घटित होती हैं, फिर भी उनका अलग-अलग विचार हो सकता है। जैसे औद्योगिक निर्माण के कारखाने में, वैसे ही हरे पौधे के कारखाने में, निर्माण की ये अवस्थाएं पायी जाती हैं: कच्चे पदार्थों का संग्रह, तैयार उत्पादन की रासायनिक या अन्य साधनों द्वारा तैयारी, और उनका उपभोक्ता या मध्यवर्ती व्यक्तियों तक वितरण। कच्चे पदार्थ का संग्रह वर्तमान अध्याय का विषय है; उत्पादन की तैयारी, वितरण और उपयोग भी बाद के अध्यायों के विषय हैं।

हरे पौधे द्वारा प्रयुक्त कच्चे पदार्थ केवल बाह्य जगत् से ही प्राप्त हो सकते हैं। बीज जिससे पौधा उत्पन्न होता है, और प्रदाय का विकल्प स्रोत है--अल्प मात्रा में ही उन्हें रखता है और किसी भी अवस्था में प्रौढ़ पौधे की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए यथेष्ट मात्रा धारण कर सकने के लिए अत्यन्त छोटा होता है।

पौधे द्वारा प्रयुक्त कच्चे पदार्थ की उत्पत्ति और प्रकृति का अन्वेषण करने की दिशा में एक पग बढ़ना पादप ऊतकों की अंतिम रचना अर्थात् रासायनिक तत्त्वों में से प्रत्येक की मात्रा, जिनसे ऊतक निर्मित हुए हैं--निश्चित करने के द्वारा हो सकता है। पौधे के विभिन्न भाग, बीज, स्तम्भ, कंद और पत्तियों का विश्लेषण (सारणी २) प्रकट करता है कि विभिन्न ऊतकों में समान रासायनिक तत्व होते हैं। वे ये हैं: कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और कतिपय खनिज तत्त्व जिनमें से मुख्य गंधक, पोटैशियम, मैग्नीशियम, कैल्सियम, फॉस्फोरस, और लोहा है। ये तत्व नइट्रोजन

के साथ पादप-ऊतक के अन्तिम अवयवों का प्रतिनिधित्व करते हैं, यद्यपि निस्सन्देह वे पौधे में स्वतंत्र रूप में नहीं, बल्कि संयुक्त रूप में रहते हैं। उनमें से कार्बन अधिकतम मात्रा में रहता है। गेहूँ का दाना १००° सेन्टीग्रेड पर उस समय तक सुखाने के बाद, जब कि जल का लुप्त होना बन्द हो जाता है, अवशेष का लगभग आधा भाग (४६·१ प्रतिशत) कार्बन होता है।

सारणी २

	कार्बन	हाइड्रोजन	ऑक्सीजन	नाइट्रोजन	(राख) खनिज पदार्थ
गेहूँ········	४६·१	५·८	४३·४	२·३	२·४
राई का भूसा··	४९·९	५·६	४०·६	०·३	३·६
आलू·······	४४	५·८	४४·७	१·५	४
लाल चुकन्दर की पत्तियाँ	३८·१	५·१	३०·८	४·५	२१·५

शेष आधा भाग ऑक्सीजन (४३·४ प्रतिशत) और कम मात्रा में हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और खनिज तत्वों से बना होता है। अधिकांश अन्य पौधों के ऊतकों में ये ही तत्व प्रायः इसी अनुपात में रहते हैं; किन्तु पत्तियों में खनिज तत्वों का उच्च अनुपात होता है।

इन तथ्यों के आधार पर कोई भी व्यक्ति इसकी कल्पना कर सकता है कि पौधा, कच्चे पदार्थों का प्रदाय किस स्रोत से प्राप्त करता है। खनिज पदार्थ मिट्टी से ही प्राप्त हो सकते हैं। जल, जिसका इतना अधिक अंश मूल अवशोषित करता है, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के अधिकांश का प्रदाता हो सकता है। नाइट्रोजन और कार्बन या तो मिट्टी से, या वायु से या दोनों से प्राप्त हो सकते हैं।

इस प्रकार की कल्पनाएं, यद्यपि वे अवश्य ही सन्देहपूर्ण होंगी, आधुनिक रसायन के दिनों के पूर्व संचालित प्रयोगों पर आधारित निष्कर्षों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट होंगी। उदाहरणार्थ सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पादप कार्यिकी के एक उद्भट और जिज्ञासु, वान हेल्मांट (१५७७–१६४४) ने उस पदार्थ की प्रकृति का निर्धारण प्रारम्भ किया जिससे पौधे के अन्य सब विभिन्न अवयव संघटित होते हैं। ऐसा करने के लिए उसने एक स्थूल विलो वृक्ष की ५ पौंड वजन की शाखा

एक मिट्टी के गमले में लगायी जिसमें घने रूप में २०० पौंड वजन की मिट्टी भरी थी जो भट्टी में सुखा ली गयी थी। बर्तन के मुँह पर एक छिद्रिल ढक्कन था जो धूल को भीतर न आने देता और सिंचाई करने की सुविधा देता। यह प्रयोग ५ वर्ष तक चलता रहा और उस अवधि में कोई भी वस्तु न डाली गयी, केवल आसुत (distilled) जल या वर्षा का जल पौधे को दिया गया। पौधा जीवित रहा, और उस वक्त वजन १६९ पौंड याने, प्रयोग के समय से १६४ पौंड अधिक हो गया। इसके विपरीत मिट्टी के सुखाने पर उसका वजन प्रयोग के प्रारम्भ किये जाने के समय से दो औंस कम पाया गया। मिट्टी के सूखे पदार्थ की न्यूनता की उपेक्षा कर वान हेल्मांट ने निष्कर्ष निकाला कि जल ही पोषक स्रोत या मातृ-पदार्थ है, जो सब रचकों—दारु, छाल और मूल को जन्म देता है, जिनसे पौधा निर्मित होता है। और न यह निष्कर्ष आश्चर्यजनक ही है जब इस बात का स्मरण किया जाता है कि वान हेल्मांट ने आधुनिक रसायन की उत्पत्ति के सौ वर्ष पूर्व जन्म धारण किया था और प्रयोग किया। उसके समय में वायु की रचना का ज्ञान न था, और इस कारण उसको इसका ध्यान हो ही नहीं सकता था कि उन प्रदायों का भी हिसाब रखा जाय जो पौधे को वायुमंडल से प्राप्त हो सकती हों। ऑक्सीकरण की प्रकृति तो अकल्पनीय बात थी। रासायनिक तत्वों का आविष्कार नहीं हुआ था और न यह बात ही निश्चित हो सकी थी कि जब रासायनिक परिवर्तन उपस्थित होता है तो तत्व स्वयं अपरिवर्तित ही रह जाते हैं, केवल नये संयोगों में प्रविष्ट हो जाते हैं। वान हेल्मांट के समकालीन वैज्ञानिक इस बात का विश्वास करने के लिये तैयार थे कि एक पदार्थ—जल—उन सब विभिन्न पदार्थों को जन्म दे सकता है जो पौधे में निहित होते हैं।

यह आविष्कार कि खनिज पदार्थ पौधे के जीवन के लिये परमावश्यक हैं, लेवायशिये के बाद अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रकट हुआ जब आधुनिक रसायन की आधारशिला रखी गयी, और जब उन आधारशिलाओं पर रासायनिक विश्लेषण की विधियों का विस्तार हुआ तथा पौधों के अध्ययन के लिए उनका प्रयोग हुआ। तब इस बात का आविष्कार हुआ कि वान हेल्मांट के प्रसिद्ध प्रयोग में प्रयुक्त मिट्टी में दो औंस की क्षुद्र न्यूनता का कितना बड़ा महत्व है। उदाहरणार्थ, यह प्रकट हुआ कि यदि नवोद्भिद पौधे अपने मूल के साथ शुद्ध जल में लगाये जायँ तो उनके खनिज रचकों में कोई वृद्धि नहीं होती और पौधों की वृद्धि शीघ्र अवरुद्ध हो जाती है तथा वे जल्दी ही मर जाते हैं। यह आविष्कार जो अन्य आविष्कारों की भाँति पूर्वतर कार्यकर्त्ताओं द्वारा पूर्व आभासित हुआ था, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में किया गया था और अन्य आविष्कारों की ही भाँति इसे सार्वभौम मान्यता प्राप्त होने में अर्द्ध जीवन काल लग गया।

जब उन्नीसवीं शताब्दी के तृतीय दशाब्द में, यह तथ्य कि खनिज पदार्थ पौधे के जीवन के लिए परमावश्यक हैं, साधारण ज्ञान भंडार की बात हो गया; तो इस बात को ज्ञात करने की ओर ध्यान आकर्षित हुआ कि मिट्टी में विद्यमान कौन से खनिज तत्व पौधे के जीवन के लिए परमावश्यक हैं और कौन से नहीं हैं। स्वयं पौधे, जब विश्लेषण के आधीन रखे जाते हैं, तब भी निश्चित उत्तर नहीं देते। कुछ अवसरों पर उनमें खनिज पदार्थों की असाधारण विभिन्नता निहित हो सकती है। पौधों की राख में एक या दूसरे समय इकतीस खनिज तत्वों तक के चिह्न प्राप्त हुए हैं और उनमें अपेक्षाकृत ऐसे विरल तत्व मिले हैं जैसे वंग (tin), सीसा, ताँबा, चाँदी, पारा, और आयोडीन। यह तथ्य कि इसमें इतने अधिक तत्व नहित हो सकते हैं, यह इंगित करता है कि हरे पौधे केवल उन खनिज यौगिकों को अवशोषित करने की शक्ति नहीं रखते, जो उनके लिए उपयोगी होते हैं; बल्कि आटोलाइकस के समान अविचारणीय क्षुद्र वस्तुओं के भी ग्राहक हैं।

अनेक विभिन्न पौधों के विश्लेषण के परिणामों की तुलना इस जाँच को एक पग और आगे बढ़ाती है। इकतीस खनिज तत्त्वों में से जो पौधों की राख में पाये गये हैं, नौ ही प्रायः उसमें विद्यमान रहते हैं। वे गंधक, पोटैशियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम, फॉस्फीरस, लोहा, सोडियम, सिलिकन और क्लोरीन हैं। किन्तु दो अन्य तत्त्व हैं, जो यद्यपि पौधे की राख में नहीं पाये जाते, तथापि जाँच में उनको भूला नहीं जा सकता। सूखे पौधे को जलाने पर राख पैदा होती है, और इस प्रक्रम में कार्बन तथा नाइट्रोजन दोनों संयुक्त रूप में बाहर कर दिये जाते हैं। वे उन नौ तत्त्वों से किसी भी तरह कम नहीं हैं जो सदा ही पौधे की राख में विद्यमान रहते हैं, इसलिये अवश्य ही इन्हें योग में लिया जाना चाहिये; क्योंकि दोनों ही परमावश्यक हैं, और इनमें से एक या दोनों, अनुमानतः मिट्टी से प्राप्त किये जा सकते हैं। अन्य दो पदार्थों, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के सम्बन्ध में इतना सावधान रहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जल के बिना पौधे उगाये ही नहीं जा सकते और जल ऑक्सीजन और हाइड्रोजन से निर्मित होता है अतएव यह तथ्य कि वे परमावश्यक हैं परन्तु स्वीकृत किया जा सकता है।

अब जो अनुसंधान किये जाने वाले हैं वह इस प्रकार वर्णित किये जा सकते हैं: कार्बन, नाइट्रोजन, और नौ सतत पाये जाने वाले खनिज तत्वों में कौन से तत्त्व पौधे के जीवन के लिये परमावश्यक हैं, और उनमें से कौन मिट्टी से प्राप्त होते हैं? सभी न्यूनाधिक मात्रा में मिट्टी में खनिज लवण या अन्य यौगिक रूप में प्राप्त होते हैं,

किन्तु उनमें से दो——कार्बन और नाइट्रोजन——वायुमंडल में भी पाये जाते हैं, पहला तो कार्बन डाइऑक्साइड रूप में और दूसरा गैसीय नाइट्रोजन रूप में।

जिस विधि से इस समस्या का निराकरण हो सकता है, वह हरे नवोद्भिदों की वृद्धि के लिए कुछ पदार्थ प्रयुक्त करना है जो इनमें से कोई भी तत्व प्रदान नहीं करता——यथार्थ में केवल पानी ही देना——और इस माध्यम में नाइट्रोजन के यौगिकों और नौ सार्वभौमतः विद्यमान खनिज तत्वों को मिलाना है। इस बात का निश्चय करने के लिए कुछ प्रारम्भिक झंझट उठा लेने की आवश्यकता है कि चुने हुए यौगिक पौधों को ग्राह्य हों क्योंकि पौधे अन्यों की अपेक्षा किसी एक यौगिक से कोई निश्चित तत्त्व सहज ही ग्रहण कर लेते हैं। निष्पक्ष माध्यम में संयुक्त किया हुआ प्रत्येक पदार्थ विलेय और अनुकूल दोनों ही होना चाहिए। जिस माध्यम में मूल उगाये जाते हैं, वे जल या शुद्ध स्फटिक बालू (sand) हो सकता है। इसमें सब नौ ख नज तत्त्वों के उपयुक्त लवण और साथ ही नाइट्रोजन के यौगिक मिला दिये जाते हैं। इन अवस्थाओं में पौधे उसी प्रकार पनपते हैं जैसे मिट्टी में। दूसरा संवर्ध (culture) भी संचालित किया जाता है जिसमें यौगिक में कोई एक तत्त्व बहिष्कृत रखा जाता है और इसी तरह तत्वों में से प्रत्येक बहिष्कृत रखा जाता है। इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है कि अधिकांश हरे पौधे जब जल-या बालुकी-संवर्ध (sand culture) में बोये जाते हैं जिसमें निम्न पदार्थों से निर्मित विलयन में निहित तत्व मिलाये जाते हैं, पूर्णतया पनपते हैं तथा बहुसंख्यक बीज उत्पन्न करते हैं। (देखें चित्र १२ सामान्य)।

जल-या बालुकी-संवर्ध के लिए विलयन।

जल	१००० सी. सी. (घन सें. मी.)
कैल्सियम नाइट्रेट	१ ग्राम
मैग्नीशियम सल्फेट	०.३५ ग्राम
एसिड पोटैशियम फॉस्फेट	०.२५ ग्राम
पोटैशियम नाइट्रेट	०.२५ ग्राम
फेरिक क्लोराइड	विरल

यदि फेरिक क्लोराइड के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में लोहा प्रदान किया जाय जैसे लोह फॉस्फेट तो भी वे कुछ कम न पनपेंगे किन्तु प्रयोग से प्रकट होता है कि संवर्ध माध्यम में हरे शैवाल और जीवाणु की वृद्धि के निवारण में सहायता के लिये क्लोराइड उपयोगी है। इसके विपरीत, यदि सूची में गिनाये तत्त्वों में से कोई भी अन्य तत्त्व बहिष्कृत रखा जाय तो पौधा केवल पनपना ही बन्द नहीं कर देता (चित्र १२ देखें) बल्कि देर-सबर मृत भी हो जाता है। अतएव सब पौधों की राख

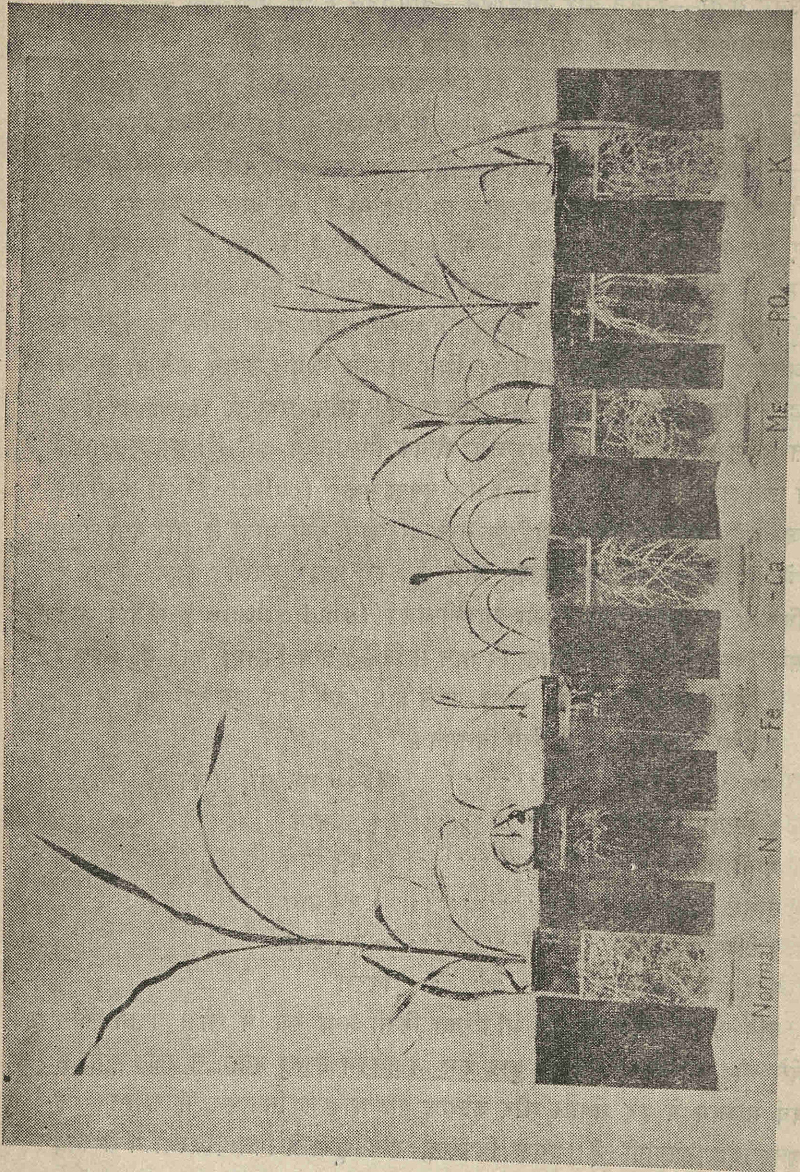

चित्र १२—मक्का के जल-संवर्ध जो परमावश्यक खनिज पदार्थों में से कोई न कोई बहिष्कृत रखने का प्रभाव दिखाते हैं; normal—पूर्ण संवर्ध विलयन; –N विलयन नाइट्रोजन विहीन है; इसी तरह अन्य हैं।

में निहित नौ खनिज तत्वों में से छः तो परमावश्यक हैं और तीन अपरमावश्यक हैं। छः परमावश्यक तत्व ये हैं--गंधक, पोटैशियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम, फाँस्फोरस और लोहा। यह विचित्र बात है अधिकांश प्रायः सब फलीदार पौधों को बोरॉन की भी आवश्यकता होती है।

परमावश्यक तत्त्वों में से प्रत्येक पौधे में एक निश्चित और अपरिहार्य कार्य करता है। एक की न्यूनता की पूर्ति दूसरे की अधिकता से नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त, यद्यपि पुष्ट वृद्धि के लिये आवश्यक मात्रा अत्यन्त आश्चर्य-जनक रूप से कम होती है, तथापि उनमें से किसी की एक निश्चित सीमा से नीचे न्यूनता हो तो उस का परिणाम दोषपूर्ण संवर्धन होता है, अतएव पौधे को प्रत्येक परमावश्यक तत्व का यौगिक ही प्रदान करना आवश्यक नहीं है, बल्कि प्रदाय की यथेष्टता भी होनी चाहिए। स्वस्थ्य वृद्धि के लिये आवश्यक यथार्थ मात्रा विभिन्न तत्वों के लिये विभिन्न होती है। लोह यौगिक का केवल विरल यथेष्ट होता है; किन्तु जब तक अनुकूल नाइट्रोजन यौगिक की अपेक्षाकृत वृहद मात्रा प्रदान न दी जाय, वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है। किसी परमावश्यक खनिज तत्त्व की न्यूनता या अभाव द्वारा उत्पन्न लक्षण कभी-कभी इतने स्पष्ट होते हैं कि उनके ज्ञान का उपयोग कृषि कर्म में प्रवृत्त किया जा सकता है। नाइट्रोजन के अभाव (देखें चित्र १२–N) का परिणाम हल्की पीली पत्तियाँ और दुर्बलतः संवर्धित पत्तियों के रूप में होता है। इसके विपरीत मिट्टी में विलेय नाइट्रोजन यौगिक की अतिशयता का परिणाम अतिशय पर्ण वृद्धि होता है। पोटाश के अभाव या न्यूनता से प्रायः पत्तियों पर भूरा धब्बा या भंगुर मोरचापन दिखाई पड़ता है; पोटाश के प्रचुर प्रदाय से पौधे वृद्धि करते जाते हैं, और साधारण रूप से अधिक समय तक हरे रहते हैं तथा उन्हें जलाभाव की अवधि का सामना करने में समर्थ बनाता है। फॉस्फोरस की अपर्याप्तता दुर्बल मूल-संवर्धन तथा फूल, फल और बीज की हल्की उपज द्वारा प्रदर्शित होती है। लोहे का अभाव--जो कि प्रकृति में प्रायः विरल ही प्राप्त होता है--उल्लेखनीय ढंग से प्रदर्शित होता है। लोह-लवण के विरल को छोड़ कर संवर्ध-विलयन के अन्य सब अवयवों से संयुक्त जल-संवर्ध में पत्तियाँ हरिमाहीन (chlorotic) हो जाती हैं, अर्थात् वे रोगीले सफेद या पीले रंग की हो जाती हैं। वे पर्णहरिम संवर्धित नहीं करतीं, और पौधा बढ़ने में असफल हो जाता है। पर्णहरिम के संवर्धन को उत्तेजित करने के लिये लोहा की इतनी कम मात्रा आवश्यक होती है कि ऐसा विरलतः ही होता है कि लोहाविहीन संवर्ध विलयन में वृद्धि करने वाले पौधे द्वारा उत्पन्न प्रथम पत्तियाँ हरी होने में असफल हों, बीज में विद्यमान अल्प मात्रा से ही वे यथेष्ट लोहा प्राप्त कर लेती है जिससे इन

पत्तियों में पर्णहरिम का संवर्धन पूर्ण हो; किन्तु उसके समाप्त हो जाने पर बन्द में निर्मित पत्तियाँ हरे रंग के द्रव्य से विहीन होती हैं। फिर भी, यदि सफेद या पीली पत्तियाँ लोह-लवण के तनु विलयन से रंग दी जाय तो वे हरी हो जाती हैं और पौधा जी जाता है। कृष्य पौधों में चितकबरी (vasiegeted) पत्तियों (पेलरगोनियम, मक्का, आदि) के सफेद धब्बे जो इतनी साधारणतया पाये जाते हैं, इस साधन द्वारा हरे नहीं किये जा सकते। हरिमाहीनता के विपरीत, जितकबरापन मिट्टी में लोहे के अभाव के कारण नहीं होता, बल्कि कुछ आन्तरिक दोष के कारण होता है जिसके परिणामस्वरूप हरित लवक (पर्णहरिम के धारण कर्त्ता) उचित रूप से संवर्धित होने में असफल हो जाते हैं, और यह दोष पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होता रहता है।

जब जीवित पौधे के रसायन पर विचार किया जाता है तो छः खनिज तत्वों की अपरिहार्यता किसी भी प्रकार विस्मयजनक नहीं प्रतीत होती। पोटैशियम, गंधक और फॉस्फोरस तथा साथ ही नाइट्रोजन, ये सब प्रोटीन या उसके उद्भवों की रचना में प्रविष्ट होते हैं जो जीवित ढाँचे–जीवद्रव्य–का मुख्य भाग निर्मित करते हैं। मैग्नीशियम हरे रंगद्रव्य (पर्णहरिम) का एक रचक है, लोहा पर्णहरिम की रचना के लिए अपरिहार्य प्रकट किया जा चुका है, और कैल्सियम शिशु भित्तियों की रचना में प्रविष्ट होता है।

परमावश्यक खनिज तत्वों में से केवल चार ऐसे हैं, जो कृष्य भूमि में अपूर्ण हो जाया करते हैं। वे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम और नचूा हैं। इनमें से एक या अधिक तत्वों की अपूर्णता की पूर्ति करने के लिये मिट्टी में कृत्रिम खाद या उर्वरक, जो लवणों या उनके अन्य यौगिक से निर्मित होते हैं––सल्फेट आफ अमोनिया, नाइट्रेट आफ सोडा, नाइट्रोजन के प्रदाय के लिये संयुक्त करना एक साधारण चलन है; बेसिक धातुमल (बेसिक स्लैग), सुपरफॉस्फेट या अस्थि-चूर्ण आदि फॉस्फोरस (और फलतः चूना) प्रदान करने के लिये और केनिट पोटाश प्रदान करने के लिये डालना चलन है। चूना भी अक्सर मिलाया जाता है, किन्तु साधारणतया अपूर्णता की पूर्ति करने की अपेक्षा मिट्टी की भौतिक अवस्था सुधारने के लिये ही डाला जाता है यद्यपि बलुई और पीटयुक्त मिट्टी चूने से अपूर्ण हो जाया करती है। किन्तु मालियों को अपनी बुद्धि से चूना डालना चाहिये, क्योंकि कुछ पौधे, रोडोडेंड्रोन, एजेलिया, फाक्सग्लब्ज, अधिकांश हीथ, और अन्य पीट-प्रिय पौधे मिट्टी में अत्यल्प मात्रा से अधिक चूने के प्रति असहिष्णु हैं और अपनी असहिष्णुता पहले पत्तियों के पीले होने और बाद में मृत होने द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

जल-और बालुको-संवर्ध के परिणाम प्रदर्शित करते हैं कि हरा पौधा अपने मूल को विलयन रूप में प्रदान किये हुये यौगिकों से नाइट्रोजन और अन्य परमावश्यक खनिज पदार्थ प्राप्त करते हैं। वे यह भी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि पौधे में कार्बन के प्रदाय के लिये अन्य स्रोत भी होता है, क्योंकि यह पानी में पूर्णतया पनपता है जिसमें से जल में विलीन केवल विरल मात्रा कार्बन डाइऑक्साइड के अतिरिक्त कार्बन के अन्य सब यौगिक बहिष्कृत कर दिये गये हों। हरे पौधों के कार्बन यौगिक के प्रदाय की समस्या पर तुरन्त विचार किया जायगा, परन्तु वैसा करने के पूर्व कतिपय हरे पौधों द्वारा प्रदर्शित उल्लेखनीय विलक्षणता ध्यान देने योग्य है।

यदि जल-संवर्ध प्रयोग के लिए निर्वाचित विषय––सेम, मटर या अन्य फलीदार पौधा हो तो संवर्ध विलयन से नाइट्रोजन वंचित रखने का परिणाम उतना ही भयंकर होगा जैसा किसी प्रकार के हरे पौधे की अवस्था में होगा। किन्तु यदि प्रयोग शुद्ध बालू में किया जाय और पौधे को केवल नाइट्रोजन छोड़ कर सब परमावश्यक खनिज पदार्थों युक्त विलयन प्रदान किया जाय तो परिणाम विस्मयजनक होगा। नाइट्रोजन यौगिक से वंचित होने के कारण पौधा कुछ समय तक म्लान रहता है, और कठिनाई से ही कुछ वृद्धि करता है; किन्तु कुछ समय के बाद वह सुधार करना प्रारंभ करता है पूर्णतः पुनरुद्धार कर लेता है तथा पुष्टतया वृद्धि करता है और स्वस्थ तथा फलप्रद हो जाता है। बालुकी-संवर्ध की दशा में यह घटित हो सकता है या नहीं हो सकता, किन्तु यदि थोड़ी-सी वाटिका की मिट्टी––एक या दो ग्राम––शुद्ध पानी में घोल कर बालू के ऊपर उडेल दी जाय तो यह निश्चित ही घटित हो सकता है।

म्लान पौधे के पुनर्जीवित होने के साथ ही साथ उसे उखाड़ने पर यह देखा जा सकता है कि मूल पर बहुसंख्यक उभाड़ (ग्रंथिका) निर्मित हो रहे हैं (चित्र १३)। ये उभाड़ वैसे ही होते हैं जो किसी सेम, मटर आदि, जो मैदान में बोये जाते हैं, के मूल पर दिखाई पड़ सकता है। जल-संवर्ध में उत्पन्न फलीदार पौधा के मूल पर ऐसे उभाड़ दिखाई नहीं पड़ते और न वे फलीदार पौधों के बालुकी-संवर्ध में ही विद्यमान होते हैं, जैसा प्रायः होता है, कि वे पुष्ट रूप में वृद्धि करने में असफल हो जाते हैं। परमावश्यक खनिज तत्त्व तथा अनुकूल नाइट्रोजन यौगिक भी संयुक्त रखने वाले जल-संवर्ध में सेम या अन्य संबंधित पौधे की पुष्ट वृद्धि प्रकट करती है, कि अन्यों की तरह, फलीदार पौधे मूलोत्पादक माध्यम में निहित यौगिकों से नाइट्रोजन का प्रदाय प्राप्त कर सकते हैं। इन अवस्थाओं में मूल ग्रंथिका (nodules) उत्पन्न नहीं करते। नाइट्रोजन यौगिक से विहीन, किन्तु तनिक मिट्टी मिले बालुकी-संवर्ध में इससे कुछ न्यून पुष्ट वृद्धि न होना प्रदर्शित करता है कि इस कुल

(लेग्युमिनोभी) के सदस्य नाइट्रोजन के साथ विलक्षण और बिल्कुल अपूर्व सम्बन्ध रखते हैं। यदि वे मूल ग्रंथिका संवर्धित कर लेते हैं तो यद्यपि मिट्टी नाइट्रोजन विहीन हो तब भी वे पनपते हैं। तथापि, जैसा विश्लेषण प्रकट करता है, नाइट्रोजन यौगिक का न्यूनतम विरल निहित रखने वाले मिट्टी मिश्रित बालुकी-संवर्ध में उत्पन्न पौधों के ऊतक नाइट्रोजन की प्रचुरता युक्त होते हैं, अतएव इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस कुल के सदस्य एकमात्र अन्य स्रोत——वायुमंडल——से नाइट्रोजन प्राप्त करने के साधन युक्त होते हैं, जो हरे पौधों के साधारण वर्ग को नहीं प्राप्त होते, और जब उनके मल ग्रंथिकाएं धारण किये होते हैं, तभी वे इस प्रदाय से लाभ उठा सकते हैं। मूल की सूक्ष्मदर्शी जाँच प्रकट करती है कि ग्रंथिका में मूल-ऊतक होते हैं जिसकी कोशिकाओं में एक जीवित जीव——जीवाणु की एक स्पीशीज (बैक्टीरियम रेडिसिकोला) की प्रचुर संख्या होती है। यह जीव मिट्टी में विद्यमान रहता है और कृष्य भूमि में इतना वितरित रहता है कि थोड़ी-सी मिट्टी एक फलीदार नवोदभिद के मूल को संक्रमित करने के स्रोत रूप में यथेष्ट होती है। संक्रामक जीव एक मूल-रोम (root-hair) में प्रविष्ट करता है (देखें पृ० ५३), उसके मध्य संलग्न कोशिकाओं में वृद्धि करता है और उनमें अत्यधिक वृद्धि प्रेरित करता है जो ग्रंथिका रूप में अपने को प्रकट करता है। मूल की कोशिकाओं में सुरक्षित रूप में गुप्तवास कर ग्रंथिका जीव उनसे कार्बोहाइड्रेट का प्रदाय प्राप्त करता है, किन्तु वह नाइट्रोजन मूल के चारों ओर प्रवाहित वायु से प्राप्त करता है। यह स्वतंत्र नाइट्रोजन संयोग में अज्ञात विधियों से प्राप्त

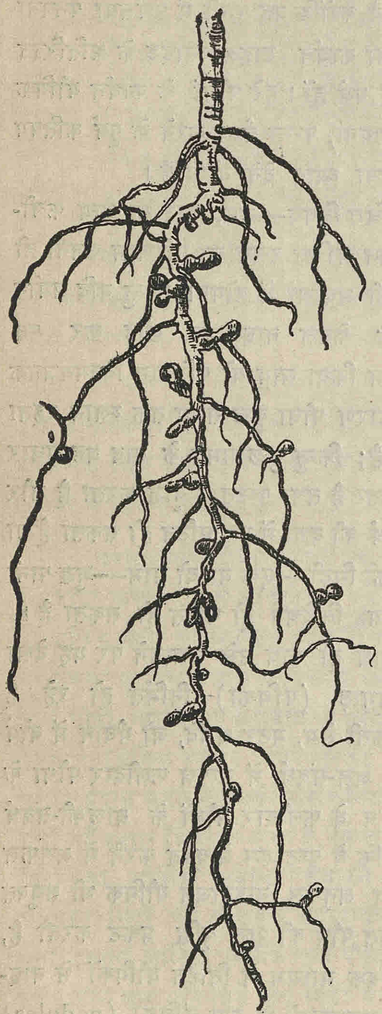

चित्र १३——मटर की मूल ग्रंथिकाएं।

करता है। यह जो नाइट्रोजन यौगिक उत्पन्न करता है, नाइट्रोजन विनिवेशक जीवाणु (nitrogen fixing organisms) फलीदार पौधे से उसका भागीदार बनता है और उसे प्रदान करता है जिसमें इसे आश्रय प्राप्त हुआ रहता है।

प्रदाय के इतने असीमित स्रोत के कारण इस सुखी कुल के सदस्य नाइट्रोजन अपर्याप्तता की आशंका से सुरक्षित रहते हैं, जब कि अधिकांश अन्य पादप कुलों के सिर पर यह आशंका यम के शूल की तरह लटकी रहती है। अन्य तो सदा नाइट्रोजन की अपूर्णता के प्रश्न में उलझे रहते हैं; फलीदार पौधे इस प्रश्न से मुक्त रहते हैं। ग्रंथिका जीवों के साथ सहजीवन उन्हें अपूर्णता से मुक्त करती है।

यद्यपि ग्रंथिका जीव का आविष्कार——फलीदार और कुछ अन्य पौधों की जड़ों के साथ इसका सहजीवी सम्बन्ध, और वायवीय नाइट्रोजन के यौगिकीकरण की इसकी शक्ति——पचास वर्षों से अधिक पूर्व नहीं हुई थी, मूँग, मोठ, इत्यादि और अन्य फलीदार फसलों के लाभकारी प्रभाव, उस भूमि पर जिसमें वे बोये जाते हैं, शताब्दियों से ज्ञात थे। रोम निवासी इस तथ्य से जानकार थे कि अन्न की फसल उस भूमि में अच्छी उत्पन्न होती है जहाँ पूर्व वर्ष में मूँग, मोठ इत्यादि बोये गये थे, और अपने फसलों के हेर-फेर की पद्धति में वे इस ज्ञान का उपयोग करते थे। ग्रंथिका जीव द्वारा संपादित भाग का आविष्कार व्याख्या प्रस्तुत करता है, क्योंकि जब ऐसी भूमि जोती जाती है जिसमें पूर्व वर्ष मूँग, मोठ या अन्य फलीदार फसल बोई गई हो तो मूल में निहित नाइट्रोजन यौगिक सारी मिट्टी में वितरित हो जाते हैं और अगली फसल के लिये सुलभ बन जाते हैं।

फलीदार पौधों द्वारा नाइट्रोजन का यौगिकीकरण हल्की बलुई भूमि के पुनरुद्धार करने में उपयुक्त किया जाता है, जो अपनी प्राकृतिक अवस्था में कृषि के लिये अत्यन्त दुर्बल होती है। जब यह कृत्रिम उर्वरों से मिश्रित हो जाती है और उसमें ल्यूपिन बोई जाती है तो वह अन्य फसलों को उत्पन्न करने में समर्थ हो जाती है और इस प्रकार वह यथेष्ट उर्वर अवस्था में लाई जा सकती है।

अब यह प्रकट किया जा चुका है कि परमावश्यक खनिज पदार्थ, जिनकी पौधों को आवश्यकता होती है मिट्टी से प्राप्त होते हैं; किन्तु उस विधि का विचार करना रह गया है जिससे मूल उन्हें अवशोषित करता है। यह समझना कठिन नहीं है कि एक जल-मग्न जलीय पौधा——जैसे समुद्री घास-पात——किस प्रकार इन पदार्थों का प्रदाय प्राप्त करता है। पौधे का सम्पूर्ण पृष्ठ विलयन रूप में लवण युक्त जल से ढका रहता है, और इनमें से कोई भी लवण, या इनका कोई रचक आयन (ion) जिसका कोई सजीव भित्ति अवरोध नहीं उपस्थित करती, पौधे में प्रवेश कर सकता है। किन्तु

स्थलीय पौधे में अधिक सरल समस्या निराकरण के लिए होती है। खनिज पदार्थ जिन्हें इन्हें अवश्य प्राप्त करना चाहिए, मिट्टी के विलयन में निहित रहते हैं; अर्थात् जल के सूक्ष्मदर्शी पटल में निहित होते हैं, जो अगणित सूक्ष्म कणों को घेरे रहता है जिससे मिट्टी निर्मित रहती है। यदि मूल को सदा एक ही स्थान में रहना होता तो वह अपने निकट सामिप्य के जल तथा खनिज लवणों को समाप्त कर देता।

यह सत्य है कि केशिकात्व (capillarity) और विसरण मूल की पहुँच के बाहर के क्षेत्र से जल और खनिज लवण का पुनर्वितरण मूलों के पहुँच के क्षेत्र तक क्रमशः उपस्थित कर सकते हैं। किन्तु विसरण (diffusion) मन्द प्रक्रम है, और नवीन प्रदाय पहुँचने के पूर्व ही पौधा जलाभाव और निराहार के कारण मृत हो सकता है।

किन्तु जल और लवण के अवशोषण के अतिरिक्त अन्य कार्य भी मूल को करना होता है। उसे पौधे को मिट्टी में अवश्य ही स्थिर करना चाहिए। जिस विधि से यह इन दोनों कार्यों का समन्वय करता है वह प्रकृति के हस्तकौशल की विशदता प्रदर्शित करता है। मूल के प्राचीनतर भाग वृद्धि के कारण मिट्टी में आबद्ध हो जाते हैं और वृद्धि करना रुकने से लंगर की तरह अचल होते हैं और लंगर की तरह पौधे को पकड़े रहते हैं। मूल के शिशु सिरे, विपक्षतः, यद्यपि उनकी गति मन्द होती है, एक ईलवत् गतिशीलता रखते हैं। जब वे अपने को सूक्ष्म गठन (texture) की मिट्टी में पाते हैं तो वे एक सीधी रेखा में वृद्धि करते हैं। किन्तु कोई भी बाधा, उदाहरणार्थ एक पत्थर, मूलाग्र (root tip) को अपने मार्ग से विचलित कर सकती है। किन्तु शीघ्र ही, जब अग्र भाग के ठीक पीछे के मूल के भाग की वृद्धि द्वारा बाधा पार कर ली गई होती है तो अग्र भाग पुनः अपने प्रारंभिक सीधे मार्ग पर अग्रसर होता है।

जिसे मूल कहते हैं, वह एक जटिल संहति है। अनेक पौधों में इसमें मूसला जड़ होती है जो उदग्रतया नीचे वृद्धि करती है, पार्श्व या द्वितीयक मूल की शृंखला जो उदग्रतया नहीं बल्कि तिरछे रूप में नीचे वृद्धि करती है, और प्रत्येक पार्श्व मूल पर धारण किये हुए उपपार्श्व या तृतीयक मूल जिनमें से प्रत्येक क्षैतिज रूप में नीचे की ओर या तिरछे रूप में ऊपर की ओर वृद्धि करता है। इस व्यवस्था से मूल के पहुँच के क्षेत्र में प्रत्येक इंच मिट्टी अन्वेषित होती है और मूलाग्र के पीछे के क्षेत्र की सतत वृद्धि से प्रत्येक दिन मूल मिट्टी के नये क्षेत्र में पहुँच जाती है ।

जल और खनिज लवण के अवशोषण के कार्य का केवल अल्प भाग मूल संहति के साधारण पृष्ठ द्वारा सम्पादित होता है: निस्सन्देह ही मूल के प्राचीनतर भाग का पृष्ठीय स्तर कागीय (corky) और जल अप्रवेश्य होता है। कार्य का मुख्य भाग सरल रचना के विशेष अंगों द्वारा सम्पादित होता है, किन्तु महान दक्षता में कोई न्यूनता

नहीं होती। वे मूल-रोम (root-hairs) हैं। मूल के वर्धन भाग के ठीक पीछे, सिरे से एक इंच या उससे लगभग दूरी पर एक क्षेत्र--मूल-रोम प्रदेश होता है, जो पीछे की ओर मूल पर एक या दो इंच तक फैला होता है, और सफेद से रोमवत् उद्वर्धों से आच्छादित होता है। यद्यपि प्रत्येक एकल मूल-रोम नग्न नेत्रों से देखे जाने के लिए अति सूक्ष्म होता है, किन्तु उनकी अधिक संख्या उन्हें दृश्य बनाती है। प्रत्येक (चित्र १४) मूल के पृष्ठ स्तर की कोशिका के सूक्ष्म नलिकाकार उद्वर्ध युक्त होता है। मूल-रोम की पतली कोमल भित्ति के मध्य से, जिसका पृष्ठ मिट्टी कण से सम्पर्क रखता है, जल और खनिज लवण पौधों में प्रवेश करते हैं। मूल-रोम, अकसर किन्तु सर्वदा नहीं, क्षण-भंगुर संरचनाएँ हैं। किन्तु उनकी एक फसल एक या दो दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकती। यह सदा एक ही आपेक्षिक स्थिति में अर्थात् दीर्घीकरण क्षेत्र के कुछ पीछे,

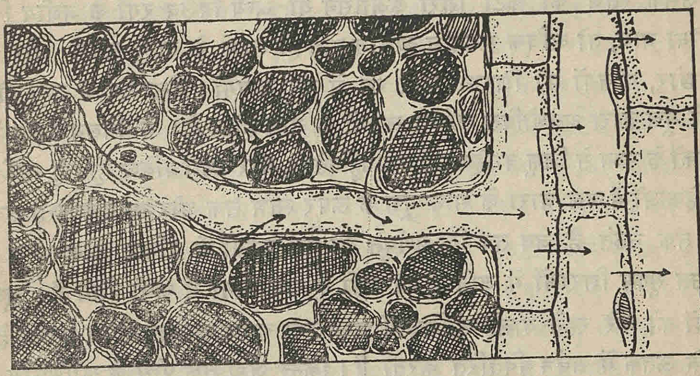

चित्र १४--मूल-रोम (विवर्धित तथा आरेखी)

धारण की हुई दूसरी द्वारा उत्तराधिकृत होती है। वे अवशोषक अंग हैं, यह बात अनेक विधियों से प्रमाणित की जा सकती है, और इस तथ्य से अनुमान किया जा सकता है कि जल और खनिज लवण के प्रदाय की प्राप्ति में पौधे को जितनी अधिक कठिनाई होती है, मूल-रोम उतने ही अधिक संवर्धित होने के लिए तत्पर होते हैं। इस प्रकार कुछ जलीय पुष्पी पौधों में मूल-रोम होते ही नहीं। ट्यूलिप के मूल मिट्टी या आर्द्र वायु में उगने पर सामान्य मूल-रोम संवर्धित करते हैं किन्तु जल में उगने पर वे दीर्घित रोम नहीं उत्पन्न करते, बल्कि अल्प कोशिकीय उद्वर्ध समान होते हैं। वे दिखाई नहीं देते। जब केवल मूल के काट सूक्ष्मदर्शी से देखे जाते हैं, तभी दिखाई

पड़ते हैं। शिशु पौधों के मूल शुष्क वायु में खुला रखने के घातक परिणाम अंशतः कोमल मूल–रोमों के मुरझाने के कारण होते हैं। उनकी सक्रियता से वंचित होकर पौधा मिट्टी में लगा होने पर और वायु तथा धूप में खुला होने पर पत्तियों द्वारा जितना जल लुप्त होता है, उसकी पूर्ति के लिए यथेष्ट जल अवशोषित करने में असमर्थ होता है। जब मूल–रोमों के नये उभाड़ युक्त नये मूल सम्बर्धित होने का अवसर पाते हैं, उसके पूर्व ही वह पौधा मृत हो जाता है।

यह तथ्य कि पत्तियाँ (देखें सारणी २, पृष्ठ ४२) खनिज लवणों में इतनी सम्पन्न होती है, यह निर्देशित करता है कि ये पदार्थ जो मूल द्वारा अवशोषित होते हैं, पत्तियों को स्थानान्तरित होते हैं। मूल से पत्ती तक मार्ग यथार्थ रूप में अनेक विधियों से प्रदर्शित किया जा सकता है। अच्छा हो यदि धूप का दिन हो, एक शाकीय पौधा जो यथेष्ट पारदर्शी स्तंभयुक्त हो, जैसे गुलमेहंदी, भूमि तल पर काटा जाय और उसके स्तंभ का कटा सिरा इओसिन या अन्य विलेय रंगों के जलीय विलयन में डुबोया जाय, तो अधिक समय न व्यतीत होते ही स्तंभ के दारु बंडल और उनके सूक्ष्म छोर, पत्तियों की शिरायें गहरे रंग में रंग जायगी। जैसा रंग के साथ होता है, वैसे ही मूल द्वारा अवशोषित खनिज लवणों के साथ होता है। वे विलयन रूप में मूल के ऊतकों के मध्य से शिशु वाहिकाओं तक पहुँचते हैं, और उनमें प्रविष्ट होते हैं, वाहिकाओं की गुहिकाओं में जल धारा के साथ मूल के ऊपर स्तंभ तक और स्तंभ से पत्ती तक उस समय तक उठते हैं जब तक कि पर्णवृंत की वाहिकाओं में प्रविष्ट होकर अंत में वह फिर उन सूक्ष्म शिराओं में जाते हैं जो पत्ती के सब भागों में फैली होती हैं। सूक्ष्मतम शिराओं को घेरे रहने वाली कोशिकायें जल तथा लवण का अवशोषण करती हैं और पत्ती के ऊतक में सर्वत्र वितरित करती हैं। किन्तु जहाँ तक पौधे के कोशिकीय ऊतक एक सतत संहित निर्मित करते हैं, पौधे के सब भागों की सब कोशिकायें मूल द्वारा अवशोषित खनिज लवण का कुछ भाग समय पर प्राप्त करती हैं और इस प्रकार इन परमावश्यक खाद्य पदार्थों का प्रदाय अपने अधिकार में रखती हैं।

इस बात का विचार करना रह जाता है कि कार्बन का प्रदाय किस प्रकार प्राप्त किया जाता है। हरा पौधा, यद्यपि उसके शुष्क भार (dry weight) के आधे भाग में कार्बन होता है, जब ऐसे संवर्ध में उगाया जाता है (देखें पृ० ४५) जिसमें कार्बनिक यौगिक नहीं रहते तो पनपता है, और यथेष्ट बीज उत्पन्न करता है। अतएव यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि कार्बन यौगिक के प्रदाय मिट्टी से प्राप्त नहीं किये जाते बल्कि वायुमंडल से प्राप्त होते हैं जो उसको एकमात्र अन्य स्रोत सुलभ होता है। यह निष्कर्ष, जब उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में सर्व प्रथम घोषित हुआ,

तो उसपर शंकायें प्रकट की गईं। यह विश्वास प्रवणता के प्रति अत्यधिक धक्का समझा गया; क्योंकि कार्बन का वायुमंडलीय स्रोत केवल कार्बन डाइऑक्साइड ही हो सकता है, और जिस अनुपात में यह गैस पायी जाती है, वह १०,००० में तीन या चार भाग से अधिक नहीं हैं। जिन लोगों ने ये आपत्तियाँ खड़ी की वे वायुमंडल की विशालता भूल गये, और न उनके समय में यह हृदयंगम हो सका कि हरे पौधों की पत्तियाँ वायुमंडल से गैसें प्राप्त करने में कितनी विलक्षणतया दक्ष होती हैं। वायुमंडल के विस्तार का आकलन प्रकट करता है कि वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड का भंडार वनस्पति वर्ग की दैनिक आवश्यकता पूर्ति के लिए प्रचुरतः पर्याप्त है। प्रत्येक आग जो सुलगती है, इसकी वृद्धि करती है, किसी जंतु द्वारा जो श्वास लिया जाता है, वह भंडार की वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड क्षय (decay) का अंत उत्पाद है और पौधे भी—हरित और अहरित कवक तथा जीवाणु दोनों ही–आजीवन और अपनी मृत्यु के बाद भी वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड के भंडार में योगदान करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रयोग परिणामतः प्रकट करता है कि हरी वनस्पति में निहित कार्बन वायुमंडल के कार्बन डाइऑक्साइड से प्राप्त होता है, इसलिए अठारहवीं शताब्दी में प्रथम और महानतम ब्रिटिश पादप कार्यिकी-वेत्ता, स्टीफेन हेल्स (१६७७–१७६१) द्वारा की हुई और व्यापकतया निन्दित कल्पना कि "किस प्रकार वायु पौधों की रचना में गठित होती है" एक मान्य तथ्य बन गया है।

उदाहरणार्थ यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि अच्छी मिट्टी में उगा हुआ एक स्वस्थ पौधा यदि कार्बन डाइऑक्साइड प्रदाय से वंचित कर दिया जाता है तो यह अपने निर्माण कार्य स्थगित कर देता है तथा भार (शुष्क भार) बढ़ाना तुरन्त बन्द कर देता है। प्रयोग द्वारा यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि पत्तियाँ वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करती है। इस प्रयोजन के लिए इस तथ्य से लाभ उठाया जाता है कि ताजा बैराइटा जल कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करता है तथा एक अविलेय, श्वेत यौगिक (बेरियम कार्बोनेट) निर्मित करने के लिए उससे संयुक्त होता है, जिससे वायु में कार्बन डाइऑक्साइड की विद्यमानता इसके मध्य बुलबुला उठाकर बैराइटा जल द्वारा दूधिया रूप धारण करने से अभिव्यक्त होती है। एक चौड़ी काँच नलिका (चित्र १५) ताजा बैराइटा जल अंतर्विष्ट रखने वाले पोटाश बल्ब से एक सिरे पर संबंधित की जाती है और पोटाश बल्ब का दूर वाला सिरा चूषित्र (aspirator) से संबद्ध होता है। चूषित्र एक उपकरण है जो वायुरुद्ध सम्बन्ध रखने वाले पात्रों के मध्य वायु की धारा प्रवाहित करने का काम करता है। उपकरण एक धूप आने वाले कमरे में रक्खा रहता है और जब सब कुछ तैयार हो

जाता है तो काँच नलिका ताजी हरी पत्तियों से भर दी जाती है, पोटाश बल्ब में बैराइटा जल मिला दिया जाता है और उपकरण के मध्य वायु की हल्की धारा बहाई जाती है। जो वायु धूप लगने वाली पत्ती के ऊपर से बहती है, वह बैराइटा जल में दूधियापन नहीं उत्पन्न करती। इसमें मूलतः जो कार्बन डाइऑक्साइड निहित था, पत्तियों द्वारा स्थानान्तरित कर लिया गया है।

केवल जीवित पत्तियाँ ही वायु से कार्बन डाइऑक्साइड खींचने की शक्ति रखती है, यह ऐसी पत्तियों के प्रतिस्थापित करने से प्रकट किया जा सकता है जो गर्म जल से मृत की जा चुकी हों। बैराइटा जल का क्रमिक धुँधलापन प्रकट करता है कि पत्तियाँ जब मृत कर दी जाती हैं तो अपने ऊपर बहाई वायु धारा से कार्बन डाइऑक्साइड खींचने में वे समर्थ नहीं होतीं। और न मृत पत्तियों की

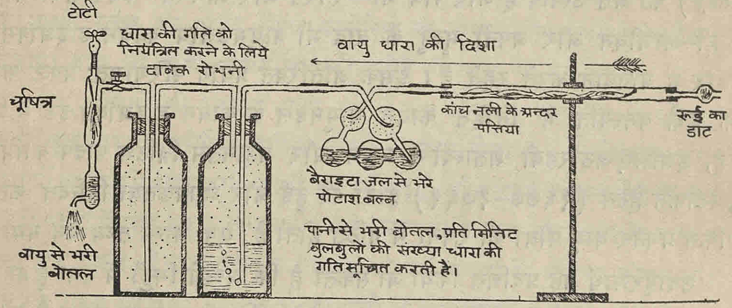

चित्र १५—प्रदीप्त हरी पत्तियों द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड के सतत अवशोषण को प्रदर्शित करने का उपकरण।

अपेक्षा चितकबरी पत्तियों के श्वेत भाग ही अधिक कार्यकर होते हैं। यदि चितकबरी पत्तियाँ टुकड़े-टुकड़े कर ली जायँ और श्वेत भाग हरे भाग से पृथक् कर लिये जायँ तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि हरे भाग जहाँ वायु धारा से कार्बन डाइऑक्साइड खींचते हैं वहाँ श्वेत भाग नहीं करते। जीवित हरे पौधों के साथ प्रयोग बैराइटा जल में दूधियापन प्रकट होने के चिह्न बिना दिन के प्रकाश में बराबर जारी रखा जा सकता है। इस अवधि में कार्बन डाइऑक्साइड की दीर्घ मात्रा अवशोषित हो जाती है, फिर भी पत्तियों में कार्बन डाइऑक्साइड का समानुपाती संचय नहीं हुआ रहता। निस्संदेह ही पर्णहरित द्वारा अवशोषित का कुछ भाग उसके द्वारा धारित रहता है, किन्तु वायु से ग्रहण की हुई कार्बन डाइऑक्साइड की अधिकांश मात्रा पत्ती से लुप्त हो जाती है। उसमें रासायनिक परिवर्तन हो जाता है।

यहाँ पर इस तथ्य की व्याख्या मिलती है कि प्रकाश के सम्मुख रहने वाली जीवित हरी पत्ती द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण निरन्तर संचालित रहता है। कार्बन डाइऑक्साइड मृत पत्ती में उतनी ही तत्परता से प्रवेश कर सकता है जैसे जीवित हरी पत्ती में; किन्तु मृत पत्ती में उसके अपघटन की शक्ति नहीं होती। अतएव कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में शीघ्र ही संतुलन (साम्यावस्था) उपस्थित हो जाता है और अब अधिक गैस अवशोषित नहीं हो पाती। किन्तु प्रकाश के सम्मुख रहनेवाली जीवित पत्ती में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा का संतुलन उसके और वायु मंडल के मध्य उस समय तक कभी नहीं हो पाता, जब तक कि अवशोषित कार्बन डाइऑक्साइड हरे ऊतकों द्वारा रासायनिकतः परिवर्तित होती रहती है और इस कारण अवशोषण का प्रक्रम दिन के अनेक घंटों तक निरंतर संचालित रहता है। किन्तु यदि हरी पत्ती कार्बन डाइऑक्साइड प्रयोग करने से वंचित रखी जाय तो अवशोषण शीघ्र बन्द हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि हरी पत्तियों को समाविष्ट रखने वाली काँच नलिका के ऊपर काला कपड़ा डाल दिया जाय तो बैराइटा जल का तीव्र तथा घना धुँधलापन प्रकट करता है कि कार्बन-डाइऑक्साइड का केवल अवशोषण होना ही बन्द नहीं हुआ है; बल्कि यह पत्तियों द्वारा यथार्थतः मुक्त भी हो रहा है। कपड़े को हटा दें जिससे पत्तियाँ पुनः प्रकाश के सम्मुख हो जायँ और जो बैराइट जल का विलयन दूधिया हो गया है, उसकी जगह ताजा विलयन भीतर डालें तो वह निर्मल बना रहता है।

प्रयोग हमें—जैसे सब प्रयोगों को करना चाहिए—उससे दूर पहुँचाते हैं जहाँ तक हमने पहुँचने का विचार किया था। वे प्रकट करते हैं कि वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड केवल स्रोत ही नहीं है जहाँ से पौधा कार्बन प्राप्त करता है, और यह कि हरी पत्तियाँ कारक हैं जो कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण कार्यान्वित करती हैं, बल्कि यदि प्रकाश रूपान्तरण में सहायता के लिये विद्यमान हो तो वे रूपान्तर भी उपस्थित करता हैं।

हरी पत्ती और सूर्य के प्रकाश द्वारा उपस्थित परिवर्तन की प्रकृति पर अब विचार किया जायगा; किन्तु इस प्रश्न पर तत्काल ध्यान देना चाहिए कि यह कैसे है कि हरी पत्ती कार्बन डाइऑक्साइड का इतना दक्ष अवशोषक है? यह सत्य है कि पत्तियाँ वायु के सामने एक विस्तृत पृष्ठ रखती हैं और एक प्रत्यास्थ (लचकीले) वृन्त पर उनका कोमल आसन उनके चारों ओर वायु का सतत प्रवाह जारी रखने के लिए एक पंखे का कार्य करता है जिससे उनके पड़ोस में नये प्रदाय निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं। यह भी सत्य है कि वायु कभी स्थिर नहीं रहती, पवन और सूर्य की

ऊष्मा उसे क्षोभित करती हैं। तथापि, इसके विपरीत, हरी पत्ती का पृष्ठ सतत प्रकट होता है। कोशिकायें जो पृष्ठ स्तर (बाह्यत्वचा) रचित करती है, यद्यपि कोमल होती है, साधारणतया एक दूसरे से निरन्तर सम्पर्क में रहती है और यथेष्ट विचित्रतः बाह्यत्वचीय कोशिकाओं की बाह्य भित्तियाँ प्रायः केवल सेलुलोस की ही नहीं बनी होती, किन्तु वार्निशवत् पदार्थों (क्यूटिन) की भी बनी होती हैं जो उन्हें वायु के साथ-साथ जल से भी अपारगम्य बनाते हैं। हरी पत्ती का निम्न पृष्ठ ऊर्ध्व पृष्ठ से अधिक कोमल होता है; इसकी बाह्यत्वचीय कोशिकाओं की बाह्यवर्ती भित्तियाँ न्यून उपचर्मीकृत (cuticularized) होती है जिससे यह कार्बन डाइऑक्साइड के प्रवेश का विरोध ऊर्ध्व पृष्ठ की अपेक्षा कम करती हैं। किन्तु यह एक विचित्र विरोधाभास प्रतीत होगा कि एक पत्ती जिसका परमावश्यक कार्य कार्बन डाइऑक्साइड की दीर्घमात्रा का अवशोषण है, विशेषतया जब वह चिमड़ी (चर्मवत्) हो, जैसे अनेक पत्तियाँ होती हैं, अपना आधा पृष्ठ (अर्थात् ऊर्ध्व पृष्ठ) न्यूनाधिकतः एक उपचर्मी स्तर से, जो पत्ती में गैसों के वितरण को अवरुद्ध करता है, जलसह कर सक्रियता विहीन कर ले। किन्तु सारा जीवन एक समझौता ही है, और प्रतिभासित विरोधाभास की व्याख्या यह है कि, प्रथमतः, जब भीषण उपचर्मीकरण ऊर्ध्व पृष्ठ को कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषण करने में अपना योगदान करने से वंचित करता है तो भी निम्न पृष्ठ द्वारा यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पादित होता है; इसके अतिरिक्त पत्तियों को एक से अधिक कार्य करने होते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड और विकीर्ण ऊर्जा अवशोषण अरने के अतिरिक्त उन्हें इसकी भी व्यवस्था करनी पड़ती है कि सूर्य की किरणें पत्ती के कोमल ऊतक को क्षति न पहुँचावें और मूल से जितना जल प्राप्त करने में वे समर्थ हैं, उससे अधिक उनके द्वारा नष्ट न हो।

पर्ण संरचना तथा पर्ण अनुकूलन की समस्या का यह पहलू इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसे अवश्य ही बाद में विचार करने के लिये छोड़ना चाहिये (देखें अध्याय ७)। इस समय इस बात के ही शोध में ध्यान सीमित रखना चाहिये कि यह कैसे होता है कि आभासिततः पत्ती का सतत पृष्ठ कार्बन डाइऑक्साइड को तत्परता से और दीर्घ मात्रा में प्रवेश होने देता है। सत्य यह है कि पर्ण पृष्ठ सतत नहीं होता। यह ऐसा है, सूक्ष्मदर्शीय परीक्षा और प्रत्यक्ष प्रयोग, दोनों ही द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। यदि किसी कोमल पत्ती के वृन्त से एक रबड़ नलिका सम्बद्ध कर दी जाय, जिसका पत्रदल जल में डूबा हो तो नलिका के खुले सिरे पर केवल फूंक मारना पत्ती से वायु के बुलबुले उठाने के लिये पर्याप्त होगा। या यदि रबड़ नलिका पर्ण वृंत से अच्छी तरह बँधी हो कर एक चूषित्र से सम्बद्ध की जाय तो पत्ती में जल चूषित

हो सकता है और यह हरे ऊतकों के अवकाशों में उपस्थित वायु को प्रतिस्थापित कर जलमग्न पत्रदल को एक अधिक काला और अधिक पारभासक रंग धारण करने के लिये प्रवृत्त कर सकती है। वायु और जल अधिक मात्रा में एक पत्ती के अक्षत पृष्ठ के पार पहुँचाये जा सकते हैं, अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि पृष्ठ में रन्ध्र हैं और रन्ध्र बाह्य तथा आंतरिक वायुमंडल अर्थात् पत्ती की कोशिकाओं के मध्य अवकाशों (spaces) में स्थित गैसों के मध्य स्वतंत्र परिवहन की सुविधा प्रदान करते हैं।

हरी पत्ती के पृष्ठ से फाड़ी हुई पट्टी की सूक्ष्मदर्शी जाँच प्रकट करती है कि विदरनुमा छिद्र (रन्ध्रीय छिद्र; चित्र १६) उस में विद्यमान रहते हैं। कुछ पौधों में वे निम्न पृष्ठ में सीमित रहते हैं, दूसरों में वे दोनों पृष्ठों पर विद्यमान रहते हैं। रन्ध्र (stomata) बहुसंख्यक होते हैं। एक एकल बांज की पत्ती में कई लाख होते हैं। वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि लम्बाई की विशेष इकाई में ही सुविधा-पूर्वक मापे जा सकते हैं। कोशिकायें और इसी प्रकार की वस्तुयें जैसे रन्ध्र मापने के लिये प्रयुक्त इकाई माइक्रॉन (μ) है (यूनानी वर्णमाला का एक अक्षर इस संकेत के लिये प्रयुक्त है)। यह $\frac{१}{१०००}$ मि॰ मी॰ अर्थात् $\frac{१}{२५०००}$ इंच के बराबर है। एक अच्छे आकार के रन्ध्र के छिद्र का व्यास ६μ हो सकता है। पृष्ठ काट में देखने पर बाह्यत्वचीय स्तर की दो कोशिकाओं के मध्य एक अंडाकार रेखाछिद्र प्रतीत होता है। जिन कोशिकाओं के मध्य रंध्रोय छिद्र स्थित होता है, वे द्वार कोशिकायें (guard cells) कहलाती हैं। वे अपने विचित्र वक्र आकृति के कारण, जो साधारण बाह्यत्वचीय कोशिकाओं से उल्लेखनीय रूप में भिन्न होता है, पृष्ठ दृश्य में पहिचानी जा सकती हैं। साधारण बाह्यत्वचीय (epidermal) कोशिकायें जो सूक्ष्म चपटी पट्टिका रूप में होती हैं, विस्तार और चौड़ाई में मोटाई की अपेक्षा बड़ी होती हैं, कुछ पौधों में लहरदार और कुछ पौधों में सीधी रूपरेखा रखती हैं। पृष्ठ दृश्य में प्रत्येक द्वार कोशिका एक वक्र रूपरेखा रखतो हैं, वक्र का उत्तल पार्श्व रंध्रीय छिद्र से दूर रहता है (चित्र १६)। जहाँ एक साधारण बाह्यत्वचीय कोशिका की भिति अपनी पड़ोसी कोशिका के साथ ठीक तरह सटी रहती है और मध्य में कोई अवकाश नहीं छूटा होता, वहाँ द्वार कोशिका के युग्म की उभयवर्ती या पारस्परिक सबंधी भित्तियाँ केवल अपनी लम्बाई के कुछ भाग में ही परस्पर संलीन होती हैं: एक कोशिका की भित्ति का मध्यवर्ती क्षेत्र अपने सहयोगी से अलग रहता है, जिससे कोशिकाओं के मध्य एक विदरवत् अवकाश रहता है। यह अवकाश (रंध्रीय छिद्र) पत्ती के अन्दर निर्मित अवकाशों से निर्विघ्न सम्बन्ध रखता है जो, रन्ध्रों के समान, समीपस्थ और मूलतः पूर्णतया संयुक्त कोशिकाओं की भित्तियों के पृथक्करण द्वारा बनते हैं। इस

प्रकार, जैसे पहले प्रदर्शित किया जा चुका है और जैसा निस्संदेह जलाक्रांत होने पर उनके रंग के परिवर्तन से निर्धारित किया जा सकता है, पत्ती के हरे ऊतक संहत नहीं होते बल्कि, अंतराकोशिकी अवकाशों (intercellular spaces) से एक दूसरे के साथ और रन्ध्रों के मार्ग बाह्य वायु के साथ संवहन रखने वाले, बहुछिद्री होते हैं।

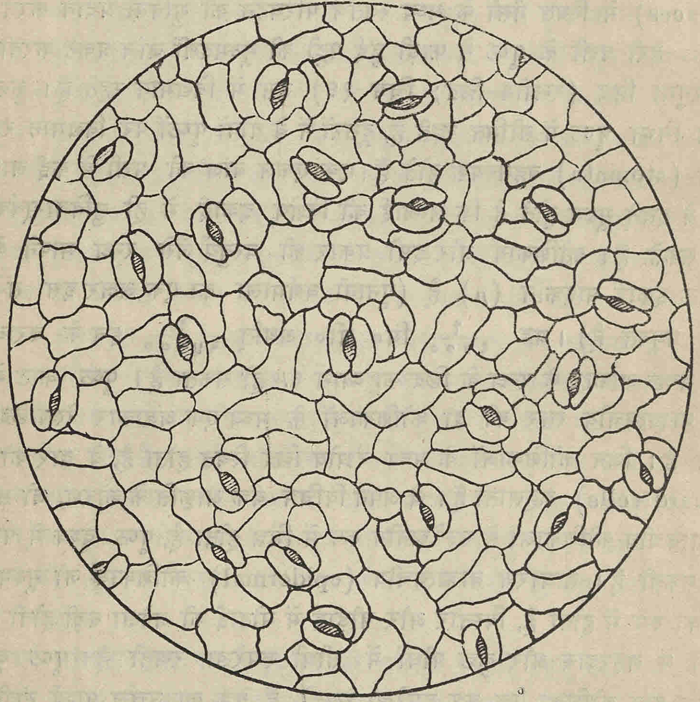

चित्र १६—रंध्र प्रदर्शित करता हुआ चेरी लारेल (प्रूनस लॉरोसेरासस) के पर्ण की बाह्यत्वचा का पृष्ठ दृश्य : रंध्रीय छिद्र रैखाच्छादित हैं।

एक हरी पत्ती की संरचना का यह रेखाचित्र ध्यान में रख कर यह अनुभव करना कठिन नहीं है कि अंतराकोशिकी अवकाशों की वायु और बाह्य वायुमंडल के मध्य गैसों का विसरण तत्परता से हो सकता है। यदि आन्तर और बाह्य वायुमंडल समान ताप और दाब पर हों और कार्बन डाइऑक्साइड तथा अन्य गैसों का समान सान्द्रण (concentration) रखते हों तो एक साम्यावस्था की स्थिति उत्पन्न होती है तथा सान्द्रण में कोई परिवर्तन नहीं उपस्थित होता; किन्तु यदि उनमें से एक का

सान्द्रण—जैसे आन्तर वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड का सान्द्रण—नीचा होता है तो बाह्य वायुमंडल से अन्तराकोशिकी अवकाशों में उस गैस के विसरण की गति विरुद्ध दिशा की गति की अपेक्षा दीर्घतर होगी और इस कारण जब तक साम्यावस्था पुनः स्थापित नहीं हो जाती, पत्ती में कार्बन डाइऑक्साइड संचित होता है।

इसी प्रकार की साम्यावस्था अंतराकोशिकी अवकाशों की तटवर्ती हरी कोशिकाओं और आन्तर वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के दाब के मध्य स्थापित होगी। यह सत्य है कि ये कोशिकाएँ कार्बन डाइऑक्साइड गैस के रूप में नहीं; बल्कि विलयन रूप में अंतर्विष्ट रखती हैं। किन्तु यह कोई अन्तर नहीं उपस्थित करता, क्योंकि जल में कार्बन डाइऑक्साइड विलीन करने की शक्ति होती है, यदि किसी कोशिका में अन्तर्विष्ट जल कार्बन डाइऑक्साइड लुप्त करता है तो अधिक गैसें भीतर विसरित होकर विलीन हो जायँगी। इस प्रकार घटनाओं की शृंखला जो एक प्रदीप्त हरी पत्ती में कार्बन डाइऑक्साइड के सतत प्रवेश का संचालन करती है, यद्यपि लंबी होती है तथापि सरल है। अंधकार के समय यदि पत्ती के रन्ध्र खुले रहते हैं तो इस गैस के सम्बन्ध में साम्यावस्था बाह्य और भीतरी वायुमंडल के मध्य स्थापित होने के लिये प्रवृत्त होगी। किन्तु पत्ती पर ज्यों ही प्रकाश पड़ता है, हरी कोशिकाएँ कार्बन डाइऑक्साइड प्रयोग करना प्रारम्भ करती हैं: कोशिकाओं में विलयन में कार्बन डाइऑक्साइड का सान्द्रण गिरता है: साम्यावस्था क्षुब्ध होती है और कोशिका-भित्ति के अन्दर तथा ऊपर विलीन कार्बन डाइऑक्साइड कोशिका में विसरित होता है। तब, बदले में, और समान कारण से, कार्बन डाइऑक्साइड आन्तर वायुमंडल से कोशिका-भित्ति के जल के विलयन में विसरण द्वारा स्थानान्तरित होता है, किन्तु जहाँ तक स्थानान्तरण भीतरी और बाह्य वायुमंडल के मध्य साम्यावस्था का व्याघात उपस्थित करता है, यह बाह्य वायु से अंतराकोशिकी अवकाशों में कार्बन डाइऑक्साइड के विसरण द्वारा अनुसरित होता है और जब तक हरी कोशिकायें कार्बन डाइऑक्साइड का प्रयोग करना जारी रखती हैं, विसरण प्रवणता (gradient) स्थापित रहेगी और कार्बन डाइऑक्साइड हरी पत्ती में अनवरत प्रवेश करता रहेगा।

किन्तु रन्ध्रीय छिद्र इतने सूक्ष्म होते हैं कि इस बात की आपत्ति की जा सकती है कि दिन भर में हरी पत्ती द्वारा प्रयुक्त कार्बन डाइऑक्साइड इतने सँकरे मार्गों द्वारा कठिनाई से ही विसरित हो सकती होगी। किन्तु प्रयोग द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि ये रन्ध्र नालियाँ सुलभ करते हैं जिनके द्वारा गैस प्रवेश करती है। रन्ध्र को अवरुद्ध करने के लिए पत्ती के तल पर वैसलिन का पतला स्तर लेपना पर्याप्त होता है। यदि निम्न पृष्ठ में ही सीमित रन्ध्र युक्त पत्तियों के उस पृष्ठ पर वैसनिल

पोता जाय तो यह देखा जाता है कि जब पूर्व वर्णित उपकरण में वे रखी जायँ तो, यद्यपि वे यथेष्ट प्रदीप्त रहती हैं, फिर भी चूषित्र के द्वारा उनके ऊपर प्रवाहित वायु की मन्द धारा से कार्बन डाइऑक्साइड खीचने में वे असफल हो जाती हैं। बैराइटा जल दूधिया हो जाता है। किन्तु यदि ऊर्ध्व पृष्ठ ही वैसलिन से पोता जाय, तो वायु से कार्बन डाइऑक्साइड खींचने की पत्तियों की शक्ति अक्षुण बनी रहती है।

यह देखना मनोरंजक है कि कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषण करने में हरी पत्ती की दक्षता ने ऐसे प्रयोगों के लिये मार्ग प्रदर्शित किया है जिन्होंने पूर्वकाल के अकल्पित तथ्यों को आविष्कृत किया है। इस प्रकार यदि बारीक टिन की परत की एक पट्टिका एक पत्ती के समान क्षेत्र के रंध्रीय छिद्रों की संख्या और आकार युक्त छिद्रित की जाकर पोटाश विलयन रखी हुई तश्तरी के ऊपर रखी जाय तो यह देखा जायगा कि जिस गति से पोटाश वायु से कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण करता है, उससे न्यून नहीं है जब विलयन का पृष्ठ पूर्ण खुला रखा जाय। इस प्रकार पौधे अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रों की व्यवस्था का अनुसरण करने से, जो इन छिद्रों के व्यास से पाँच या छः गुने से अधिक एक दूसरे से दूर नहीं होते, दोनों प्रकार का लाभ उठाते हैं; वे कोमल आन्तरिक ऊतकों को अपनी बाह्यत्वचीय कोशिका द्वारा रक्षा प्रदान करने और जितना भी कार्बन डाइऑक्साइड वे प्रयुक्त कर सकते हैं, वह सब अपने रन्ध्रों द्वारा प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

इस प्रकार ये कच्चे पदार्थ हैं जिसे हरी पत्ती अपने में प्रयुक्त करती है: मिट्टी से जल और खनिज लवण और वायु से कार्बन डाइऑक्साइड।

अध्याय ४

हरी पत्ती द्वारा विकीर्ण ऊर्जा का अवशोषण। हरित लवक और अवर्णी लवक (ल्यूकोप्लास्ट)। पर्णहरित युक्त ऊतक: खंभ ऊतक और स्पंजी मृदूतक। पर्णहरित के रासायानिक तथा भौतिक गुणधर्म। कार्बोहाइड्रेड का प्रकाश-संश्लेषण: और कार्बनिक नाइट्रोजन यौगिकों का संश्लेषण। नाइट्रीकारी जीवाणु

विस्तीर्णतः शाखित और दृढ़तया स्थित तथापि सतत प्रसारित मूल तंत्र स्थानीकृत अवशोषक मूल-रोमों सहित पौधों को जल और खनिज लवण प्रदान करता है। सूक्ष्म और बहुसंख्यक रन्ध्रों से व्यवस्थित अपने चौड़े पृष्ठ युक्त हरी पत्तियाँ वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड का यथेष्ट प्रदाय प्राप्त करती हैं, और इस प्रकार पत्ती के हरे ऊतकों में कच्चे पदार्थ संगृहीत होते हैं। उन ऊतकों में सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं और उनके द्वारा कुछ किरणें अवशोषित होती हैं। इस प्रकार पत्ती खाद्य उत्पादन कार्य के लिए पदार्थ और ऊर्जा से सज्जित रहती है।

जिस सफलता के साथ हरा पौधा सार्वभौम खाद्य-प्रदाता का कार्य करता है उस दृष्टि से यह माना जा सकता है कि यह विकीर्ण ऊर्जा का बड़ा दक्ष अवशोषक है, तथा यह खाद्य उत्पादन के लिए उस सभी ऊर्जा का उपयोग करता है जो सूर्य से उस तक पहुँचती है। तथापि, सत्य बात कही जाय, तो हरी पत्ती, सब जीवित पदार्थों की भाँति, पूर्णता से परे है। सूर्य इस पर उदारतापूर्वक जितनी न्योछावर करता है उस सब ऊर्जा को यह किसी प्रकार अवशोषित नहीं करती और जितना भी कुछ यह अवशोषित करती है, हरी पत्ती खाद्य उत्पादन के प्रयोजन के लिए केवल उसका कुछ अंश ही प्रयुक्त करने में समर्थ होती है।

एक पत्ती पर जितनी सूर्य की किरणें पड़ती हैं उनमें से अधिकांश तो पृष्ठ से परावर्तित (reflected) हो जाती हैं, और पत्तियों के चमकदारपन का अंश परावर्तित मात्रा का निर्देशांक होता है। छाया-सहिष्णु पौधों के धूमिल हरे पृष्ठ केवल अत्यल्प प्रकाश परावर्तित करते हैं। खजूर (फीनिक्स डैक्टाइलिफेरा) और अन्य धूप सहिष्णु पौधों की पत्तियों के उत्कृष्टतया बाह्यचर्मीकृत, चिकनाया हुआ, दर्पणवत् पृष्ठ अत्यधिक परावर्तित करते हैं, और ऐसा करने में प्रकाश की भीषणता को शान्त करते हैं, जिसके सम्मुख वे खुले होते हैं। जो किरणें पत्ती में प्रवेश करती हैं, उनमें से कुछ

उसके मध्य से बिलकुल बाहर जाती हैं, जैसे सूर्य से प्रकाशित वृक्ष द्वारा उत्पन्न चितकबरी छाया से प्रकट होता है। परावर्तित और पारगत (transmitted) किरणें समान ही पौधे द्वारा सम्पादित कार्यों में कोई मूल्य नहीं रखतीं, क्योंकि यदि वह अवशोषित हो तभी विकीर्ण ऊर्जा पौधे में कार्य करने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। हरित लवक ही ऐसे हैं जो पत्तियों द्वारा प्रभावित विकीर्ण ऊर्जा के अवशोषण के लिए उत्तरदायी होती हैं, और यह हिसाब लगाया जा सकता है कि यथेष्ट कोमल पत्ती सूर्य की जितनी किरणें उस पर पड़ती है उसके चतुर्थांश से अधिक अवशोषित नहीं करती। जो ऊर्जा प्राप्त होती है, वह अनेक उपयोगों में लायी जाती है। अधिकांश भाग पत्ती से जल वाष्पित करने का कार्य करता है: जहाँ तक पौधे का सम्बन्ध है, यह निस्सन्देह अनुपयोगी कार्य है। विकीर्ण ऊर्जा भी पर्णहरित के निर्माण में अपना योगदान करती हैं, और प्रायः वह परमावश्यक होता है; यह वृद्धि को ठीक संचालित करने का भी कार्य करतो है।

यह संभव है कि पत्ती द्वारा अवशोषित विकीर्ण ऊर्जा द्वारा उत्प्रेरित अनेक प्रकार के कार्य विभिन्न किरणों द्वारा अत्यधिक दक्षता से पूर्ण होते हैं। पर्णहरित जहाँ हरे प्रकाश के लिए बहुत पारदर्शक होता है, वहाँ नीले बैंगनी और नारंगी लाल दोनों ही के कुछ किरणों के लिए अपारदर्शी होता है। जब हरी पत्तियाँ या पर्णहरित का विलयन वर्णक्रमदर्शी (spectroscope) द्वारा परीक्षित किया जाय; वर्णक्रम (spectrum) रंगों के नियमित अनुक्रम बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल, जिनमें श्वेत प्रकाश को उपकरण विभेदित करता है, अवरोधित पाया जाता है। नीला बैंगनी क्षेत्र पत्तियों या विलयन के हटा दिये जाने पर जिस रंग का होता, है उससे अधिक काला होता है। और अनेक स्थानों में वहाँ पर और वर्णक्रम के लाल सिरे की ओर भी काली पट्टियाँ दिखाई पड़ती हैं, जो प्रकाश का अवशोषण प्रकट करती हैं। वर्णक्रम के विभिन्न भागों पर किरणों द्वारा उत्पन्न प्रभावों की जाँच यह प्रकट करती है, कि जहाँ नीला–बैंगनी या लाल–नारंगी किरणें पर्णहरित की रचना प्रस्तुत कर सकती हैं, वहाँ जल का वाष्पन और वृद्धि का संचालन, यदि पूर्णतः नहीं तो, मुख्यतः नीला–बैंगनी किरणों की ऊर्जा द्वारा सम्पादित होता है। काँच या अन्य परदे या आवरण के पीछे, जो नीला बैंगनी प्रकाश को अवरुद्ध कर देते हैं, पौधे उगाने से उस प्रकार के ही परिणाम उत्पन्न–होते हैं, जैसे अन्धकार द्वारा होते हैं। पौधे केवल पर्णहरित उत्पन्न करने के अतिरिक्त संवर्धन की ऐसी ही अव्यवस्था से ग्रस्त होते हैं। गेहूँ और इसी प्रकार के एकबीजपत्री पौधे लम्बी, पतली और पिलपिली पत्तियाँ उत्पन्न करते हैं तथा सेम तथा समान स्वभाव

के द्विबीजपत्री पौधे बहुदीर्घीकृत और अत्यंत लम्बे पर्वों द्वारा पृथक्कृत बहुत क्षुद्र पत्तियों को धारण करने वाले दुर्बल स्तंभ उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत, खाद्य उत्पादन के कार्य का अधिकांश लाल–नारंगी किरणों में निर्मित ऊर्जा के व्यय से पूर्ण होता है, और इन रंगों को अवरुद्ध करने वाले परदे के पीछे बोये गये पौधे न्यूनाधिकतः पूर्णतया भूखों मरते हैं।

जब एक पत्ती पर गिरने वाली पूर्ण सूर्य किरणों से परावर्तित और पारगत किरणों, और जल वाष्पित करने तथा अन्य प्रकार के कार्य करने में प्रयुक्त विकीर्ण ऊर्जा को घटाया जाय तो यह देखा जाता है कि सब कुछ होने पर हरा पौधा ऊर्जा का केवल $\frac{१}{२}$ प्रतिशत, अर्थात् उस पर गिरनेवाली प्रत्येक २०० किरणों के केवल एक के औसत में, संसार के खाद्य आधार स्थापित करने के लिए प्रयुक्त करता है। तथापि हरे पौधे की जितनी भी सीमित दक्षता है, मनुष्य ने अब तक उससे उत्कृष्टतर कार्य करना नहीं सीखा है।

हरे वर्णक (pigment) जो विकीर्ण ऊर्जा अवशोषित करते हैं हरित-लवक के पृष्ठ स्तर में एक पायस (emulsion) के रूप में अन्तर्विष्ट रहते हैं। हरितलवक जीवित काय है जो पत्तियों और स्तंभ के हरे भागों की कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य में बहुसंख्यक रूप में रहते हैं।

शैवाल पूर्वजों से विकास के लम्बे मार्ग में यदि, जैसा संभव है, वही उनका उद्भव है––बीजधारी पौधे अपने अत्यंत पूर्वकालीन अग्रजों से बहुत विभिन्न हरित कणक धारण करने वाले बने हैं। क्लैमिडोमॉनैस (देखें चित्र ३) अपनी एकल कोशिका में एक दीर्घ हरितलवक या वर्णकी लवक (chromatophore) रखता है, किन्तु हरा पौधा अपने बहुकोशिक हरे ऊतकों की प्रत्येक कोशिका बहुसंख्यक सूक्ष्म, न्यूनाधिकतः चक्रिक हरितलवक रखता है। हरितलवक धारण करने वाली पत्ती की कोशिकाएँ अनेक स्तरों से निर्मित एक हरा ऊतक निर्मित करती हैं। ऊर्ध्व बाह्यत्वचा के ठीक नीचे और उसकी कोशिकाओं से संयुक्त खंभ-ऊतक (palisade) होता है (चित्र १७) जो बहुसंख्यक हरितलवक अंतर्विष्ट रखने वाली कोशिकाओं के एक या दो स्तरों से निर्मित होता है, तथा पर्ण-पृष्ठ से समकोण बनाते दीर्घीकृत होता है। खंभ-ऊतक के नीचे हरी कोशिकाएँ एक शिथिल स्पंजी (spongy) ऊतक निर्मित करती हैं जो निम्न बाह्यत्वचा तक विस्तीर्ण और उससे सम्बद्ध होता है। स्पंजी ऊतक की कोशि-काएँ अनियमित, प्रायः ताराकार होती हैं, और प्रत्येक किरणवत् उद्वर्ध किसी समीपस्थ कोशिका के अनुरूप उद्वर्धों से संयुक्त होती है जिससे स्पंजी ऊतक वायु से पूर्ण अवकाशों से भरा होता है जो रन्ध्र के मार्ग द्वारा बाह्य वायुमंडल से संचार

स्थापित रखता है। इसी प्रकार के किन्तु अल्प लक्षित अंतराकोशिकी अवकाश खंभ-ऊतक की कोशिकाओं के मध्य होते हैं।

एक पुष्पी पौधे का हरितलवक ५μ से १०μ छोटा होता है किन्तु आकार की क्षुद्रता की क्षतिपूर्ति वे संख्या के आधिक्य से कर लेते हैं। एक पत्ती के पृष्ठ के

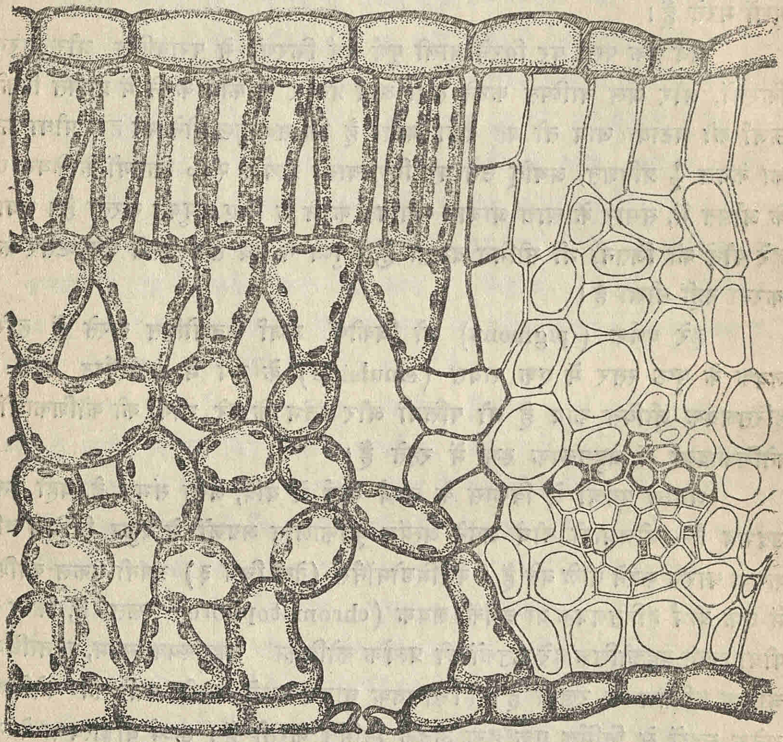

चित्र १७—बीच (फगस सिल्वेटिका के पर्ण का अनुप्रस्थ काट, आवर्धित।

एक वर्ग मिलीमीटर के नीचे चार लाख हरितलवक खंभ-ऊतक और स्पंजी-ऊतक की अनुक्रमिक कोशिकाओं में हो सकते हैं। एरंड पौधे की एक बड़ी पत्ती दस वर्ग इंच पृष्ठ युक्त होने पर लगभग दस अरब हरितलवक अंतर्विष्ट रखती है। वे सब एक या दो रंगहीन हरितलवक पूर्वजों (अवर्णी लवक) के अनुक्रमिक विभाजन और वृद्धि से निर्मित होते हैं जो स्त्री कोशिका द्वारा भ्रूण में लाये गये थे, और कुछ पौधों में नर कोशिका द्वारा भी—जब नर और स्त्री कोशिका एक नये व्यक्ति का जन्म देने के लिए संयुक्त होती हैं।

काई काय जितना ही क्षुद्रतर हो उसके विस्तार के अनुपात में उसका पृष्ठ उतना ही दीर्घतर होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि हरितलवक में अन्तर्विष्ट जीवित पदार्थ और पर्णहरित की मात्रा अधिक नहीं होती, पत्ती के बहुसंख्यक हरितलवकों द्वारा प्रस्तुत पृष्ठ का पूर्ण योग अत्यधिक होता है। हरितलवक तथा पत्तियों की संख्या और आकार पर आधारित स्थूल अनुमान लगाने पर एक यथेष्ट संवर्धित एरंड के पौधे में अन्तर्विष्ट हरितलवकों का संपूर्ण तल लगभग एक एकड़ के होता है और एक एकल पत्ती के हरितलवक का लगभग २६० वर्ग गज, अर्थात् टैनिस खेलने के मैदान के आकार का ⅘ होता है। यदि, इस कारण, जैसा आधुनिक रसायन सिखाता है, वस्तुओं के पृष्ठों पर और विशेषतया अत्यधिक सूक्ष्म आकार की वस्तुओं के अपेक्षाकृत दीर्घ पृष्ठ पर रासायनिक क्रिया का तीव्रतया संचालित रहना स्वाभाविक है, तो अवशोषित विकीर्ण ऊर्जा के आधिक्य युक्त हरितलवक का पृष्ठ भी रासायनिक क्रिया का क्षेत्र होना संभव है। यह यथेष्ट सुविधा प्रदान करता है।

क्रीड़ा के अन्दर क्रीड़ा के कार्य के समान अवर्णी लवक का संवर्धन भ्रूण पौधे के साथ समय का अनुसरण करता है। एक-कोशिक भ्रूण के द्वि-कोशिक भ्रूण बनाने के लिए विभाजित होने के पूर्व अवर्णी लवक विभाजन द्वारा संख्या वृद्धि करता है, और जब कोशिका-विभाजन हो जाता है तो कुछ तो एक में और कुछ दूसरी में प्रविष्ट हो जाती हैं, और इसी प्रकार वे सब विभाजनों के मध्य करती रहती हैं जो लक्षित पादपवत् भ्रूण की रचना अग्रसर करते हैं। ऐसा होता है कि असंख्य कोशिकाओं में से जो शिशु पौधे के काय की रचना करती हैं, प्रत्येक कोशिका प्रारंभिक दो या तीन अवर्णी लवकों, जिनके वंशज इतने बहुसंख्यक होते हैं जितनी समुद्र की सिकता राशि, से प्राप्त शक्य हरितलवक अंतर्विष्ट रखती हैं। कुछ चीड़ों और अन्य पौधों में अविकसित पत्तियाँ और भ्रूण के स्तंभ में अंतर्विष्ट अवर्णी लवक पर्णहरित निर्माण के लिए प्रकाश द्वारा उद्दीप्त किये जाने की प्रतीक्षा किये बिना ही हरे रंग में परिवर्तित हो जाती हैं। किन्तु अधिकांश पौधों में अवर्णी लवक उस समय तक रंगहीन रहते हैं जब तक कि नवोद्भिद के पर्ण बीज और मिट्टी से उभड़ कर अपने को प्रकाश में नहीं कर लेते।

रंगहीन से हरी अवस्था में परिवर्तन निश्चित स्थलों—पत्तियों तथा शिशु स्तम्भों—तक ही सीमित रहता है। प्रकाश के सम्मुख खुले स्तम्भों के गम्भीरतर ऊतकों और भूमिगत स्तम्भों तथा जड़ों में अवर्णी लवक अपनी रंगहीन दशा स्थापित रखती है। कुछ उदाहरणों में प्रकाश के सम्मुख रखने से उन्हें हरा परिवर्तित कर देना सुगम है: उदाहरणार्थ एक आलू कन्द रोपने के पहले अंकुर निकालने के लिये

रक्खा जाता है तो जब भूरा छिलका रगड़ कर फेंक दिया जाता है तो अपने आन्तर ऊतकों के हरेपन द्वारा प्रदर्शित करता है कि प्रकाश ने परिवर्तन उपस्थित किया है। अन्य अवस्थाओं में कोई भी बात उन्हें हरा नहीं बना सकती। इस प्रकार हरी पत्तियों की साधारण बाह्यत्वचीय कोशिकाओं में अवर्णी लवक प्रकाश द्वारा अप्रभावित पड़ी रहती है, यद्यपि द्वार-कोशिकाओं में जो उनके सन्निकट स्थित होती है, प्रारम्भ-काल में ही पर्णहरित निर्मित होता है, और पत्ती के वृद्ध हो जाने तथा कार्य समाप्त करने तक स्थित रहता है। तथापि अपने विकासगत परिवर्तनों के मार्ग में पौधा उस निषेधाज्ञा का उल्लंघन कर सकता है जिसे अपने जीवन व्यापार की प्रारम्भिक अवस्था में इसने इस या उस भाग के संवर्धन पर निर्धारित किया था: उदाहरण के लिये, पुष्पी पौधे, जो स्थल से जल में पुनर्गमन कर गये हैं, और जलमग्न जलीय पौधे बन गये हैं, जिनको प्रकाश की अपर्याप्तता से ग्रस्त होना सम्भव है, वे बाह्यत्वचीय कोशिकाओं की अवर्णी लवकों को हरितलवकों में रूपान्तर द्वारा अपने हरे ऊतकों को प्रकाश के निकटतर ला सकते हैं।

लवक (plastid) पर प्रकाश का प्रभाव उनमें पर्णहरित के निर्माण तक ही सीमित नहीं है। प्रकाश हरितलवक की आकृति और पत्ती में उनके द्वारा धारण की हुई स्थिति को प्रभावित करता है। चमकीले प्रकाश में पौधे की कोशिकाओं में हरितलवक की रेखा-स्थिति विसरित (diffuse) प्रकाश द्वारा प्राप्त रेखा-स्थिति से भिन्न होती है, और अंधकार में प्राप्त रेखा-स्थिति से भी भिन्न होती है। जब सूर्य तेजी से चमकता है तो हरितलवक जिस दिशा से प्रकाश उन पर आता है उस दिशा के समानान्तर एक सीधी पंक्ति में सज्जित होते हैं जिससे सूर्य किरणों को वे न्यूनतम अनावरण प्रदान करते हैं; किन्तु विसरित प्रकाश में वे पार्श्व बदल देते हैं और एकल पंक्ति प्रकाश से समकोण बनाती है जिससे हरितलवक प्रत्येक किरण को ग्रहण कर सके जो उसके लिए सम्भव हो। ये गतियाँ कोशिकाद्रव्य द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं, या हरितलवक स्वयं ही अमीबा की विधि से गतिमान होते हैं, यह बात ज्ञात नहीं हो सकी है। उपर्युक्त तथा अन्य विधियों में भी पौधे अपनी हरी कोशिकाओं के अन्दर हरितलवक के समूह का पूर्ण उपयोग करते हैं तथा उसकी रक्षा करते हैं।

हरी कोशिका के कोशिकाद्रव्य में जटिल लवक, यद्यपि निस्संदेह ही जीवद्रव्यी नियंत्रण के कुछ प्रभावान्तर्गत होते हैं, तथापि वे वृद्धि तथा विभाजन की शक्ति का उपभोग करते हैं: यह अर्ध स्वतंत्रता है जो कभी-कभी घटनाओं की एक विचित्र परिस्थिति उपस्थित करती है। पौधा स्वस्थ हो सकता है, तथापि इसके लवक दुर्बलता ग्रस्त हो सकते हैं। वे पौधे की वृद्धिशील और विभाजनकारी कोशिकाओं

के समान तीव्र वेग न रख कर यथेष्ट तीव्रता से वृद्धि या विभाजन नहीं करते, फलतः कुछ कोशिका-क्षेत्र जो हरे होने चाहियें, रंगहीन ही रह जाते हैं, और दुर्बलता का लक्षण चितकबरापन होता है। चितकबरी किस्में, जंगली और कृष्य अनेक प्रकार के पौधों में पायी जाती है, और उनकी पत्ती और तने के रंग में विचित्र चितकबरापन–पट्टी या धब्बे रूप में हरा, श्वेत या पीला रंग, ऐण्टिराइनम, मक्का, पेलारगोनियम, तथा अन्य अनेक पौधों में देखा जा सकता है।

कुछ चितकबरो किस्मों के व्यवहार से प्रकट होता है कि पौधों के पोषण में हरितलवकों का मौलिक भाग होता है। जब तब चितकबरा पौधा एक समान हरी पत्तियों की एक शाखा और जब तब शुद्ध श्वेत पत्तियों की शाखा उत्पन्न कर सकता है। हरी शाखा इतनो प्रबलता से वृद्धि करती है कि यदि उसे पृथक् न कर दिया जाय. तो चितकबरी शाखाओं का इसके द्वारा अभिभावन और अधिलंघन हो सकने की आशंका रहती है। श्वेत शाखा दुर्बल होकर वृद्धि करती है। यदि हरी शाखा एक कलम की भाँति दाबी या काटी जाय, वो जो स्वतत्र, हरी पत्ती का पौधा यह उत्पन्न करेगी वह पनपेगा, किन्तु श्वेत शाखा की कलम वृद्धि नहीं करती और समाप्त हो जाती है; तथापि शुद्ध श्वेत शाखा, यद्यपि मंद वृद्धि-शील होती है, पौधे से सम्बद्ध रहने पर मरणोन्मुख नहीं होती। पिछली अवस्था में वह समय आने पर पुष्प उत्पन्न कर सकती है और बीज धारण कर सकती है। श्वेत शाखा जब खाद्य की आवश्यकता हो, ग्रहण कर सकती है, किन्तु अपने लिए खाद्य स्वय निर्मित नहीं कर सकती।

सामान्य हरितलवकों का हरा रंग चार वर्णकों, पर्णहरित एल्फा और पर्णहरित बीटा, पर्णपीतक (कैरोटिन) और पर्णपीत (जैन्थोफिल) के मिश्रण का परिणाम होता है। पर्णहरित एल्फा हरा होता है, पर्णहरित बीटा नीला-हरा होता है, पर्णपीतक पीला होता है, और पर्णपीत नारंगी होता है। पर्णहरित बहुत जटिल रचनाओं के होते हैं, पर्णपीतक और पर्णपीत सरलतर रचनाओं के होते हैं। यद्यपि चारों की रासायनिक रचना ज्ञात है, इस तथ्य के अतिरिक्त कि पर्णहरित प्रत्येक समय विकीर्ण ऊर्जा के संग्रहकर्त्ता की भाँति कार्य करते हैं, इन वर्णकों द्वारा सम्पादित अनेक कार्यों के सम्बन्ध में अत्यल्प ज्ञान है।

अंतिम प्रावस्था में भी, जब पत्ती जीर्ण होती है और उसका पतन सन्निकट होता है, तब भी लवक पौधे और मानव वर्ग को सेवा प्रदान कर सकते हैं। पत्ती के वर्णकों में परिवर्तन उपस्थित हो सकता है, और वह चमकीले रूप के लाल और नारंगी रंगों को उत्पन्न करता है और इस प्रकार मृतोन्मुख वर्ष प्रचुर शारद रंगों से समुज्ज्वल रहता है। इसी प्रकार पौधे के अन्य भागों के लवक इसी प्रकार के रंग संवर्धित

कर सकते हैं। कुछ अवस्थाओं में, जैसे उदाहरणार्थ, गाजर के मूल में नारंगी वर्णक आभासी महत्त्व नहीं रख सकता, किन्तु अन्यों में, जैसे उदाहरणार्थ पुष्पों और फल में दिव्य रंग एक को परागित करने के लिये कीटों को प्रलुब्ध करने का कार्य और दूसरे को पक्षियों द्वारा बिखेरने का कार्य कर सकता है। किन्तु पुष्पों और फलों के सब चमकीले रंग हरितलवक से नहीं उत्पन्न होते। नीला और धूमिल गुलाबी, लाल तथा गहरा लाल जो उनमें प्रायः होते हैं, यद्यपि वे इसी समान के प्रयोजन सिद्ध करते हैं, तथापि वर्णक के दूसरे वर्ग—नील द्रव्य (ऐन्थोसाइएनिन) से सम्बन्ध रखते हैं और जीवद्रव्य द्वारा निर्मित होते हैं और लवक द्वारा निर्मित नहीं होते।

पत्ती की सक्रियता लुप्त होना प्रारंभ होने के पूर्व अपने यौवन काल में पर्णहरित द्वारा सम्पादित कार्य का आविष्कार करने के लिये विज्ञान को अनेक शताब्दियाँ लगी हैं, और अब भी जाँच अन्तिम परिणाम पर नहीं पहुँची। तथापि हरितलवक खाद्य-पदार्थ के निर्माण में जो मौलिक कार्य करते हैं, वह स्थापित हो चुका है, और जिस विधि से यह कार्य प्रारम्भ करता है उसका कुछ अंश ज्ञात हो सका है।

यदि कोष्ण ग्रीष्म निशा समाप्त होने के ठीक पूर्व, किसी वृक्ष या क्षुप की यथेष्ट वृद्धि प्राप्त, कोमल, हरी पत्तियों की परीक्षा अनुकूल उपचार के बाद की जाय, तो उनमें और प्रातः की बाद की घड़ियों में उसी पौधे से तोड़ी हुई ठीक उसी प्रकार की पत्तियों में उल्लेखनीय विभिन्नता प्रदर्शित होगी। कुछ घंटों तक सूर्य की किरणें पड़ चुकने के बाद तोड़ी पत्तियाँ सूर्योदय से पूर्व तोड़ी हुई पत्तियों में अंतर्विष्ट पदार्थ की अपेक्षा अधिक ठोस पदार्थ रखती हैं। उनका शुष्क भार (dry weight) अधिक होता है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि शुष्क भार में वृद्धि का कारण पत्ती में एक दाह्य (combustible) वस्तु का संचय होना है, जो जलाने पर कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल उत्पन्न करता है और ऊर्जा मुक्त करता है। एक समान पत्तियों की यथेष्ट संख्या का एक भाग पहले और अन्य भाग मान लें कि सूर्योदय के बाद एक-एक घंटे पर एकत्र कर लेने से यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि प्रातःकाल जैसे-जैसे व्यतीत होता जाता है, वैसे-वैसे पत्तियों, में अधिक मात्रा में दाह्य पदार्थ पाया जाता है और जब वे जलाई जाती हैं तो उनसे अधिक ऊर्जा मुक्त होती है। अतएव हरे पौधों के लिये सूर्य प्रकाश (धूप) का अर्थ पदार्थ तथा स्थितिज (potential) ऊर्जा की वृद्धि है। जिसके कारण वृद्धि होती है, उस पदार्थ की प्रकृति का निर्धारण एक रात को तोड़ी हुई और दिन को तोड़ी हुई उसी तरह की पत्ती खौलते जल से मृत कर पत्तियों को ऐल्कोहाल में रख कर और हरे वर्णक को विरंजित करने के लिये धूप के सम्मुख खुला रख कर किया जा सकता

है; तब, जब वे रंगहीन हो गई हों तो ऐल्कोहाल हटाने के लिये पत्तियों को पानी से धोकर तनु आयोडीन टिंचर (अल्प मात्रा में पोटैशियम आयोडाइड युक्त पानी में विलीन आयोडीन) रखी हुई श्वेत तश्तरी में उन्हें रखा जाय। धूप चढ़े हुए प्रातःकाल में तोड़ी पत्ती समान रूप से काली हो जाती है—यह प्रमाण है कि वह मंड की प्रचुरता युक्त है—सूर्योदय के पूर्व तोड़ी पत्ती रंगहीन ही रहती है, या अधिक से अधिक आसमानी रंग धारण करती है। काट की सूक्ष्मदर्शी परीक्षा प्रकट करती है कि पर्णहरित युक्त ऊतकों में मंड रहता है, और मंड-कण हरितलवक के सन्निकट स्थित रहते हैं।

धूप से प्रकाशित पत्तियों में जो मंड प्रकट होता है, केवल दो में से एक उत्पत्ति का होता है। या तो यह, या कभी-कभी वह जिससे इसका जन्म हुआ है, पौधे के दूसरे भागों से आता है, या यह पत्ती में निर्मित होता है। सूर्योदय के पूर्व पत्तियाँ तोड़ कर, उनका वृन्त जल में रख कर और उन्हें कुछ घंटों तक धूप में रख कर पिछली बात की सत्यता प्रकट की जा सकती है। वे तत्क्षण उस मात्रा से न्यून नहीं, बल्कि उसकी अपेक्षा कुछ अधिक मंड ही अन्तर्विष्ट रखती पायी जाती है, जितना उन पत्तियों में निर्मित होता है जो पौधे में संयुक्त रहती है।

आयोडीन से परीक्षा उस गति के निर्धारण के लिये प्रयुक्त हो सकती है जिससे मंड पत्तियों में प्रकट होता है। इस प्रकार यह देखा गया है कि आधे घंटे से न्यूनकाल तक भी प्रकाश में खुले रहने पर पत्तियों द्वारा पहचानने योग्य मात्रा में मंड उत्पादित होता है और यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि अंधकार काल में इसका लोप क्रमिक होता है। किन्तु पौधे में लगी हुई पत्तियों में ही लोप होता है। पृथक् की हुई पत्तियाँ जो अधिक मंड उपलब्ध करने तक प्रकाश में खुली रहती है, यदि अंधकार में रखी जाय, तो उसका अधिकांश अधिक लम्बे समय तक धारण रखती हैं। यदि वे अपने वृन्त के साथ पानी में रखी जाय तो भी मंड मन्द गति से ही लुप्त होता है। उनके पास कोई भी व्यक्ति नहीं होता जिसे वे हस्तान्तरित करें, और पत्तियाँ स्वयं उनका पूरा उपयोग नहीं कर सकतीं। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि हरी पत्ती अपने लिये केवल कार्बोहाइड्रेट ही निर्मित नहीं करती, बल्कि अपने अतिरिक्त निर्माण को पौधे को प्रदान भी करती है।

आयोडीन के साथ परीक्षा उन अवस्थाओं के अनुसंधान का साधन प्रस्तुत करती है, जिनमें मंड उत्पन्न होता है। लाल प्रकाश में, उदाहरणार्थ वह जो अनुकूल लाल काँच आवरण द्वारा प्रेषित हो, मंड निर्माण अच्छी तरह संचालित रहता है, किन्तु आवरण न होने पर जिस तरह संचालित होता है उससे अल्प वेग से संचालित रहता

है; किन्तु नीले काँच आवरण द्वारा प्रेषित नीले प्रकाश में मंड निर्माण असफल हो जाता है।

यदि हरी पत्तियों में मंड परीक्षा प्रयुक्त करने के लिये किये उपर्युक्त प्रयोग में चितकबरी पत्तियाँ प्रयुक्त की जायँ तो यह देखा जाता है कि आयोडीन द्वारा उपचार नीले और श्वेत में प्रारंभिक चितकबरा, हरा और श्वेत नमूना पुनरुत्पादित होता है: जहाँ पर्णहरि. था, वहाँ निर्माण संचालित था, और जहाँ वह अविद्यमान था, वहाँ मंड का निर्माण नहीं हुआ रहता। प्रयोग द्वारा यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि कार्बोहाइड्रेट उत्पादन के लिये प्रकाश और कार्बन डाइऑक्साइड दोनों ही परमावश्यक हैं। जब तक पत्तियाँ मंड विहीन नहीं हो जातीं तब तक पौधा अंधकार में रखा रहता है। जब वह अंधकार में ही हो, उसकी एक जोड़ी पत्तियों में से एक के रन्ध्र धारक पृष्ठ को मध्य शिरा के साथ-साथ और उसके दोनों पार्श्व में वैसलिन पोत दिया जाता है। दोनों पत्तियाँ टिन की पत्री से आवृत्त कर दी जाती हैं जिसमें कुछ सहज ही पहचाने जा सकने वाले नमूने छाप दिये जाते हैं—जैसे उदाहरण के लिये एक शब्द के अक्षर। अपने नमूने छपी पत्तियों के साथ पौधा प्रकाश में खुला रखा जाता है। एक या दो घंटे में ही आयोडीन परीक्षा प्रकट करती है कि जहाँ एक पत्ती में प्रकाश और कार्बन डाइऑक्साइड दोनों ही हरे ऊतक तक पहुँचे, मंड निर्मित हुआ, किन्तु जहाँ दूसरी पत्ती में वैसलिन ने अक्षरों की पट्टी के लगभग मध्य में कार्बन डाइऑक्साइड की पहुँच अवरुद्ध की, वहाँ मंड उत्पादित नहीं हुआ यद्यपि पत्ती का वह भाग प्रदीप्त था (देखें चित्र १८ ब)।

आयोडीन परीक्षा यह भी प्रदर्शित करने के लिये प्रयुक्त की जा सकती है कि, कुछ सीमा के अन्तर्गत, प्रकाश की तीव्रता जितनी ही उच्च हो, मंड का संचयन उतना ही अधिक होता है। फोटोग्राफी के निगेटिव से आवृत पत्ती जो अन्यों की अपेक्षा अपने कुछ भाग के मध्य से अधिक प्रकाश पारगत करती है, जब मृत, रंगहीन कर दी जाती है और आयोडीन से उपचारित होती है, एक नीले श्वेत रंग की छाप उत्पन्न करती है, जिसमें फोटो उतारे हुये पदार्थ विलक्षणतः स्पष्टता के साथ दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि, यह कहना अनावश्यक है, कि प्रकाश के सम्मुख खुला रखना बहुत अधिक या बहुत थोड़े समय तक किया जाय तो अव्यवसायी फोटो चित्रण के साधारण दोष भी पुनरुत्पादित हो जाते हैं।

यह प्रदर्शित करना कम सुगम है कि हरी पत्ती द्वारा संचालित निर्माण प्रक्रम में जल भाग लेता है। यह सत्य है कि जब जलाभाव उपस्थित होता है तो मंड निर्माण बिलकुल बन्द हो जाता है, किन्तु इन परिस्थितियों में कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित

होना भी बन्द हो जाता है, इसलिये निर्माण की समाप्ति कार्बन डाइऑक्साइड के प्रदाय की कमी के कारण हो सकती है और प्रत्यक्षतः जल की अपर्याप्तता से न होती होगी। तथापि जल, कार्बन डाइऑक्साइड और मंड की रासायनिक रचना यह निश्चित बताती है कि जल प्रयुक्त होता है और इस प्रक्रम की प्रकृति का एक स्थूल संकेत भी देती है।

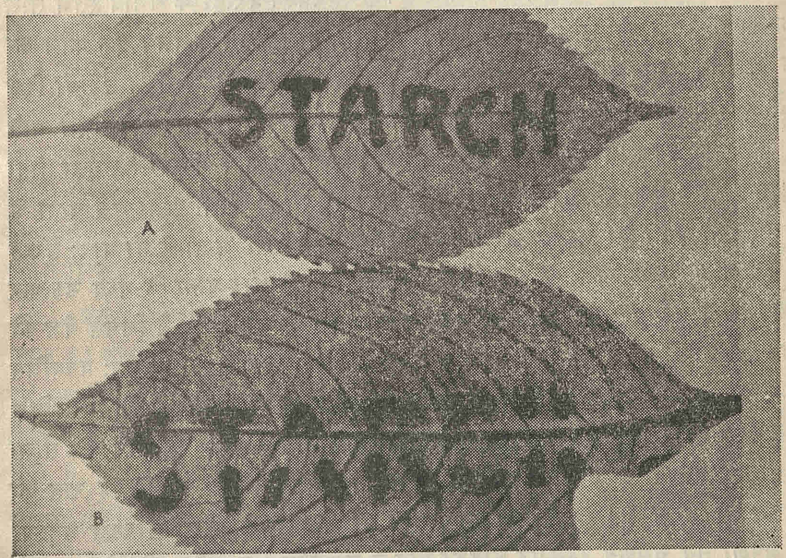

चित्र १८—प्रदीप्ति और कार्बन डाइऑक्साइड के प्रदाय पर मंड निर्माण की निर्भरता देखें।

जल (H_2O) और कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) पूर्णतः ऑक्सीकृत काय हैं। इनमें से कोई भी अधिक ऑक्सीकृत, स्थायी यौगिक बनाने के लिये ऑक्सीजन से संयोग नहीं करता। इसके विपरीत, यदि मंड आग में डाल दिया जाय तो जल उठता है, और जैसे यह ऑक्सीजन के साथ संयुक्त होता है, जल और कार्बन डाइऑक्साइड उत्पन्न करता है। दहन क्रिया निम्न समीकरण द्वारा प्रतिरूपित की जा सकती है:

$$C_6H_{10}O_5 + 6O_2 = 6CO_2 + 5H_2O$$

चूँकि मंड जब ऑक्सीकृत होता है, तो जल और कार्बन डाइऑक्साइड उत्पन्न करता है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनसे मंड निर्मित होने के लिये कार्बन-

डाइऑक्साइड और जल का अवश्य ही अपचयन (reduction)—अर्थात् एक रासायनिक परिवर्तन होना चाहिये जिसमें उनसे ऑक्सीजन लुप्त हो जाता है।

इस निष्कर्ष को प्रयोग की परीक्षा में डालना चाहिये, और इस प्रयोजन के लिये हरा जलमग्न पौधा प्रयोग करना सुविधाजनक है। उनमें से अमेरिकन जल घास—इलोडिया कैनाडेंसिस से उत्तम कोई नहीं है। अनेक स्वस्थ प्ररोहों के पर्णीय स्तंभ ताजे पृष्ठ खुला रखने के लिये आरपार काट जाते हैं, नीचे रखने के लिये एक काँच की छड़ से बाँध दिये जाते हैं, पानी से भरे हुए काँच के बड़े बर्तन में उल्टे डुबो दिये जाते हैं और ऊपर एक बड़ा कीप उलट दिये जाने से अपने स्थान पर स्थिर रखे जाते हैं। कीप का स्तंभ अच्छी तरह जलमग्न होने पर, जिस कीप में स्तम्भ उभड़ा होता है उसके खुले मुख के ऊपर एक जल से भरी परखनली अपना खुला मुख पानी में डूबे हुए रखी जाती है। जब उपकरण चमकीले प्रकाश में रखा जाता है तो प्रायः तुरन्त ही गैस के बुलबुले स्तंभ के कटे सिरे से उठने लगते हैं और पानी के मध्य उठ कर परखनली में संचित होते हैं। दिन भर में यथेष्ट संचित हो जाता है जिससे गैस की परीक्षा सम्भव है। एक सुलगी हुई मोमबत्ती उसमें शीघ्र प्रवेश करने पर पुनः प्रज्वलित हो जाती है और ऑक्सीजन की प्रचुरता का प्रमाण उस पदार्थ के लिये अधिक सूक्ष्म परीक्षा द्वारा समर्थित किया जा सकता है। यदि पौधा स्वस्थ रहे और जल ताजा हो तो ऑक्सीजन का विकास सतत कई दिनों तक संचालित रहता है। यह रात को समाप्त हो जाता है। दूसरे दिन प्रातः पुनः प्रारंभ होता है और मेघाच्छन्न अवस्था की अपेक्षा सूर्य चमकते रहने पर तीव्रतर गति से संचालित रहता है। यदि पौधा धूप में खुला हो तो भी, ताजे पानी को ऐसे पानी से स्थानान्तरित करने पर जो अधिक समय तक खौलाया गया हो, और वायु के सम्पर्क से वंचित रह कर ठंडा किया गया हो, जिससे उसमें बहुत कम कार्बन-डाइऑक्साइड हो, ऑक्सीजन का निष्कासन अवरुद्ध किया जा सकता है; और यह अवरोध उस दशा में अधिक पूर्ण होता है यदि जल द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण जल को हल्के तेल के एक स्तर से आवृत करने से अवरुद्ध कर दिया गया हो। इन स्थितियों में ऑक्सीजन का निष्कासन पूर्णतः अवरुद्ध हो जाता है। इसके विपरीत कार्बन डाइऑक्साइड से संतृप्त जल में पौधे को रखने से यह पुनः संचालित तथा बहुत तीव्र बनाया जा सकता है। गैस के ताजे और प्रचुर प्रदाय से हरा पौधा प्रायः तुरन्त ही निर्माण सक्रियता संचालित कर लेता है और एक बार पुनः ऑक्सीजन मुक्त होता है।

गैस—विश्लेषण की व्यवस्था वाली अधिक यथार्थ विधियों से यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि प्रकाश में खुले हरे पौधे द्वारा प्रयुक्त कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा

उस ऑक्सीजन के बराबर होती है जो बाहर निकलता है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चूंकि सब गैसीय अणु समान स्थान ही ग्रहण करते हैं, विच्छेदित कार्बन डाइऑक्साइड के प्रत्येक अणु के लिये ऑक्सीजन का एक अणु मुक्त होता है।

धूप में हरे पौधे के साथ इन सब प्रयोगों के परिणाम के विचार से यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्बन डाइऑक्साइड का अपघटन, ऑक्सीजन का विकास, और मंड का निर्माण ये सब एक ही प्रक्रम के भाग हैं। यह प्रक्रम अनेक रूप से वर्णित किया जा सकता है। यह कार्बन स्वांगीकरण (carbon assimilation) है, इसके परिणामस्वरूप पौधे को कार्बन प्राप्त होता है: यह कार्बोहाइड्रेट का स्वांगीकरण है, क्योंकि पौधा मंड उपलब्ध करता है। यह एक संश्लेषणात्मक प्रक्रम है—अर्थात् ऐसा है जिसमें सरल कच्चे पदार्थों से वस्तु का निर्माण होता है, और चूंकि यह प्रक्रम केवल प्रकाश की विद्यमानता में ही संचालित होता है, यह प्रकाश-संश्लेषण (photosynthesis) है।

प्रकाश-संश्लेषण के परिणामस्वरूप पौधे को जो सम्पत्ति प्राप्त होती है, दो प्रकार की होती है: एक तो पदार्थ का लाभ और दूसरी ऊर्जा का लाभ। जो ऑक्सीजन मुक्त होता है, वह केवल उप-उत्पाद होता है, क्योंकि, यद्यपि ऑक्सीजन का यथेष्ट प्रदाय पौधे के जीवन के लिये परमावश्यक है, प्रकाश—संश्लेषण के समय इतनी उत्पादित होती है कि न तो पौधा उसका उपयोग ही कर सकता है और न अत्यल्प भाग से अधिक उसे धारण ही कर सकता है और अतिरिक्त भाग वायु में चला जाता है। किन्तु बाह्य जगत् के दृष्टिकोण से उत्पाद महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वायमंडल से ऑक्सीजन के ह्रास की पूर्ति में जो दहन के प्रत्येक प्रक्रम में संचालित रहता है, यह कुछ कम मात्रा में सहायक नहीं होता।

अकेले गेहूँ का पौधा ही, जो विश्व भर की फसल रूप में उत्पादित सात करोड़ टन कार्बहाइड्रेट युक्त होता है। प्रत्येक वर्ष ११ करोड़ ४० लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड लेता है, और वायुमंडल में ८ करोड़ टन से अधिक ऑक्सीजन मुक्त करता है। प्रकाश संश्लेषण की अवधि में उत्पादित कार्बोहाइड्रेट का पौधा के लिये ऊर्जा मूल्य मंड की निश्चित मात्रा दहन क्रिया में संलग्न करने के प्रयोग द्वारा उत्पन्न ऊष्मा की मात्रा के आधार पर अनुमानित किया जा सकता है। एक औंस मंड के दहन द्वारा ११६ कैलोरी मुक्त होती है और यह ज्ञात करना केवल गणना की बात है कि विश्व की गेहूँ की फसल के कार्बोहाइड्रेट का कैलोरी रूप में कितना ऊर्जा-मूल्य है। ७ करोड़ टन कार्बोहाइड्रेट के दहन द्वारा उत्पादित होने वाली ऊष्मा एक चार मील लम्बी और चार ही मील चौड़ी और ४० फैदम (एक फैदम = ६ फुट) गहरी

झील के सब हिमशीत जल को क्वथनांक (boiling point) तक उष्ण करने के लिये यथेष्ट होती है।

तथापि कार्बोहाइड्रेट के प्रकाश-संश्लेषण द्वारा पौधा अपने लिये ऊर्जा की जितनी मात्रा अर्जित करता है, उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह तथ्य है कि संश्लेषित कार्बोहाइड्रेट के अणुओं में ऊर्जा मानो छोटे-छोटे पुलिन्दों में निहित है—और इस कारण जीवित पौधे के प्रत्येक भाग को छोटे या बड़े खुराक रूप में वितरित की जा सकती है।

कार्बन डाइऑक्साइड और जल का कार्बोहाइड्रेट रूप में रूपान्तर किस प्रकार प्रस्तुत होता है, यह पूर्ण तरह ज्ञात नहीं है। पहले यह माना जाता था कि जीवित हरित-लवक कार्बन डाइऑक्साइड और जल अणुओं को युग्म रूप में व्यवहृत करता है, वे या कोशिका के अन्य जीवित भाग प्रत्येक अणु को खंडों में ग्रहण करते हैं, प्रत्येक से ऑक्सीजन का एक परमाणु निष्कर्षित करते हैं, और अणुओं का अवशेष वर्ग HCOH की रचना का यौगिक निर्मित करने के लिये, जो फार्मऐल्डिहाइड नाम से ज्ञात है, इस प्रकार संयुक्त होते हैं :—

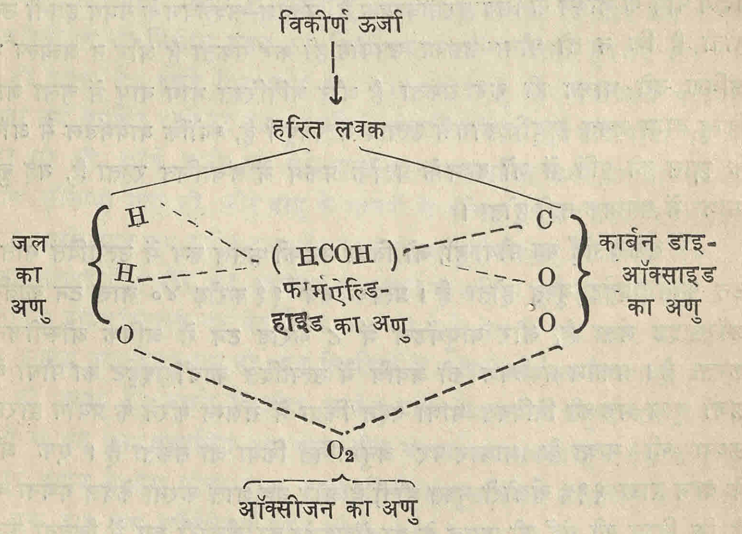

इसके आगे यह भी माना जा सकता है कि जब अणुओं के छः जोड़े व्यवहार में आये हैं, और फार्मऐल्डिहाइड के छः अणु निर्मित हुये हैं, तो फार्मऐल्डिहाइड संघनित

होता है, अर्थात् एक बड़ा अणु निर्मित करने के लिये संयुक्त होता है जो शर्करा (डेक्सट्रोस) का होता है।

$$6\ HCOH = C_6H_{12}O_6$$

इसके विपरीत अब यह माना जाता है कि अन्य मध्यवर्ती अवस्थाओं द्वारा कार्बोहाइड्रेट उत्पादित होता है। यह भी निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं है कि प्रकाश-संश्लेषण की अवधि में उत्पादित कार्बोहाइड्रेट किस रूप में सर्व प्रथम हरी पत्ती में विद्यमान होता है। मंड अति शीघ्र प्रकट होता है, केवल इस कारण यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि जब हरी पत्ती धूप में खुली रहती है तो यह उत्पादित होने वाला सर्वप्रथम कार्बोहाइड्रेट है। निस्संदेह ही इस बात के विश्वास के दृढ़ कारण है कि यह नहीं होता।

मंड कण अत्यन्त संगठित संरचना है (चित्र १०)। वे एक से अधिक प्रकार के मंडों से निर्मित होते हैं। मंड अत्यधिक रासायनिक जटिलता के होते हैं। साधारण सूत्र $C_6H_{10}O_5$ एक अणु में कार्बन, हाइड्रोजन, और ऑक्सीजन परमाणुओं का अनुपात ही प्रतिरूपित करता है और उसमें विद्यमान परमाणुओं की यथार्थ संख्या नहीं बताता। परमाणुओं की संख्या अत्यधिक होती है, और इस तथ्य को प्रकट करने के लिये मंड का सूत्र इस प्रकार लिखा जाता है $(C_6H_{10}O_5)x$ जहाँ x कोई पूर्ण संख्या है, जो कदाचित २०० से न्यून नहीं होती।

हरे पौधे के संश्लेषणात्मक कार्यों का प्रथम कार्बोहाइड्रेट उत्पाद मंड है, इस दावे के विरुद्ध कार्यिकीय प्रमाण कम प्रबल नहीं है। ऐसे पौधे कम नहीं हैं (प्याज और अन्य एकबीजपत्री) जिनकी पत्तियों में प्रकाश के अनावरण के बाद मंड प्रकट नहीं होता। उनमें इसके स्थान पर शर्करा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार पत्तियों के सूर्य प्रकाशित हरे ऊतकों में जो मंड उत्पादित करते हैं शर्करा भी अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त होती है। अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब एक हरी कोशिका कार्बन डाइऑक्साइड और जल का अपघटन प्रस्तुत करती है; तो शर्करा ही प्रथम उत्पन्न होती है। रसायनज्ञ निस्संदेह ही इस निष्कर्ष से सहमति प्रकट करेंगे क्योंकि शर्करा के अणु मंड के अणु की तुलना में सरल रचना के होते हैं। किन्तु हरी पत्ती किसी भी निश्चित क्षण अनेक प्रकार की शर्करा निहित रख सकती है, और यह कहना कठिन है कि इनमें कौन प्रकाश-संश्लेषण का प्रथम उत्पाद है। यह इक्षु-शर्करा (स्यूक्रोस,) $C_{12}H_{22}O_{11}$ हो सकती है। यह डेक्सट्रोज $C_6H_{12}O_6$, हो सकती है।

प्रकाश-संश्लेषण प्रक्रम का विस्तृत विवरण जो भी होना प्रमाणित हो, अंतिम परिणाम के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं हो सकता। कार्बन हरे पौधे के शुष्क भार के लगभग अर्द्धभाग की रचना करता है (सारणी II, पृ० ४२)। यह जन्तुओं और पौधों दोनों में अनेक रूपों में पाया जाता है। कार्बन की यह सब विशाल मात्रा जो जीवित जगत् के मध्य चक्रण करती रहती है, हरे पौधे की प्रकाश संश्लेषणात्मक सक्रियता का परिणाम और परिमाण होता है। किन्तु किसी भी प्रकार यह पूर्ण परिमाण नहीं होता। कार्बनिक यौगिकों में से, जो पौधों और जन्तुओं में पाये जाते हैं, कुछ—उदाहरणार्थ, कार्बोहाइड्रेट और वसा—केवल वे ही तत्त्व—कार्बन, हाइड्रोजन, और ऑक्सीजन अन्तर्विष्ट रखते हैं जो कार्बोहाइड्रेट के प्रकाश-संश्लेषण में प्रयुक्त कच्चे पदार्थ में विद्यमान रहते हैं। किन्तु उनमें से अन्य जिनमें केवल वही थोड़े सम्मिलित नहीं हैं, जो जीवद्रव्य की रचना में प्रवेश करते हैं, अन्य तत्त्वों के भी यौगिक होते हैं। उदाहरण के लिये, प्रोटीन में, जिसकी अनेक किस्में जीवद्रव्य में निश्चिततः विद्यमान रहती हैं। सरलतम रूप में भी नाइट्रोजन और गंधक तथा कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन सन्निविष्ट रहते हैं और अधिक जटिल प्रोटीन तथा प्रोटीन व्युत्पन्न (derivatives) अपने अणुओं में फास्फोरस और पोटैशियम भी निहित रखते हैं। ये तत्त्व जीवन के रासायनिक ढांचे के सूत्र निर्मित करते हैं, और कार्बन सदृश ही हरे पौधे द्वारा बाह्य जगत से लिये जाते हैं। जैसा—जल-संवर्ध द्वारा प्रदर्शित है, इनमें से प्रत्येक मिट्टी में विद्यमान अकार्बनिक यौगिकों—नाइट्रेटों, फॉस्फेटों, सल्फेटों और पोटाश के लवणों से प्राप्त होते हैं। कार्बोहाइड्रेट का प्रकाश-संश्लेषण जिसके विषय में इतना अधिक कहा गया है, इस कारण पौधे द्वारा संचालित अनेक संश्लेषणात्मक प्रक्रमों में से एक है। वनस्पति जगत् पर लादा हुआ भार केवल कार्बन प्रस्तुत करने में ही नहीं है, बल्कि नाइट्रोजन, गंधक, फास्फोरस और पोटाश तथा अन्य तत्त्व भी जीवकर चक्रण में लाने में है: इन तत्त्वों का सरल, अकार्बनिक संयोगों से जिसमें वे बाह्य जगत में विद्यमान रहते हैं, जटिल कार्बनिक, पदार्थों के रूप में रूपान्तरित करना, जो जैव जीव का भाग है।

किन्तु हरे पौधों द्वारा व्यक्त संश्लेषणात्मक सक्रियता की विविधताओं की व्याख्या करने की अपेक्षा उनकी प्रशंसा करना सुगम है। हरे पौधे में संश्लेषण रूप में परिणत होने वाले रासायनिक क्रियाओं, यहाँ तक कि सरलतर नाइट्रोजनी यौगिकों, के सम्बन्ध में इतना अल्प ज्ञान हो सका है कि अनेक संश्लेषण जिनके द्वारा संचालित समझे जाते हैं, उन अनिश्चित अवस्थाओं के वर्णन की अपेक्षा स्थूल तथ्यों का वर्णन ही अधिक लाभदायक होगा; और इसमें भी अपना ध्यान नाइट्रोजनी यौगिकों के संश्लेषण

पर ही सीमित रखना चाहिये, जिसके विषय में उस प्रक्रम की अपेक्षा जिसके द्वारा अन्य खनिज तत्व हरे पौधे द्वारा बाह्य जगत से कार्बनिक संयोग में लाये जाते हैं, अज्ञानता कुछ कम गहरी है।

हरे पौधे, या प्रत्येक अवस्था में उनके अधिकांश, नाइट्रोजन के अपने एकमात्र स्रोत रूप में नाइट्रेटों के साथ जी या पनप सकते हैं। यदि स्वतंत्र नाइट्रोजन और वायुमंडल में निहित अमोनिया का विरल उस तक पहुँचने से अवरुद्ध कर दिया जाय तो भी हरा पौधा उसी उत्तमता से वृद्धि करता है जैसे यह साधारण वायु में वृद्धि करता है, किन्तु शर्त यह है कि मिट्टी में नाइट्रेट विद्यमान हों। मूलों द्वारा अवशोषित नाइट्रेट पत्तियों तक पहुँचता है। वहाँ पर यह अंधकार में रखे पौधों में संचित होता है; किन्तु ज्यों ही पत्ती प्रकाश में खुली रख दी जाती है नाइट्रेट उससे लुप्त होना प्रारम्भ कर देते हैं। लोप हरी कोशिकाओं की प्रकाश संश्लेषक सक्रियता पर निर्भर करती है; क्योंकि चितकबरी पत्तियाँ यदि उस समय तक अंधकार में रखी जाती हैं जब तक कि उनकी रंगहीन और हरी कोशिकायें नाइट्रेट संचित नहीं कर लेतीं; प्रकाश का अनावरण केवल हरी कोशिकाओं से नाइट्रेट का लोप प्रस्तुत करता है, रंगहीन कोशिकाओं से नहीं करता। अतएव नाइट्रेट का विच्छेदन—नाइट्रोजनी यौगिकों के संश्लेषण में एक प्रारम्भिक अवस्था—हरी पत्ती की प्रकाश संश्लेषणात्मक सक्रियता पर या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः निर्भर करता है। जहाँ तक ज्ञात है, जन्तु नाइट्रोजन स्वांगीकरण की इस प्रारम्भिक प्रावस्था से वंचित होते हैं; और इसलिये यह निष्कर्ष निकलता है कि उनमें सन्निविष्ट कार्बनिक नाइट्रोजनी यौगिक अपनी उत्पत्ति अन्ततः हरे पौधे की संश्लेषणात्मक सक्रियता पर ही आधारित रखते हैं।

प्रदीप्त हरी पत्ती से नाइट्रेट के लोप का सहगमन उसमें कार्बनिक नाइट्रोजनी यौगिकों की विद्यमानता द्वारा होता है जिसमें नाइट्रोजन, कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से संयुक्त होता है। नाइट्रोजन स्वांगीकरण की इस प्रथम अवस्था के परिणामस्वरूप जो यौगिक उत्पन्न होते हैं, वे एक बहुसंख्यक वर्ग के होते हैं जो ऐमीनो अम्ल कहलाते हैं जिनका संलक्षण उनमें एक या दो ऐमीनो (NH_2) वर्ग की उपस्थिति है,: जैसे उदाहरणार्थ ऐमीनो ऐसीटिक अम्ल या ग्लाइसिन

ऐसीटिक ऐसिड = $CH_2\ COOH$

ग्लाइसिन = $CH_2\ NH_2\ COOH$

अनेक ऐमीनो अम्ल जिनकी रचना कार्बनिक रसायन की पुस्तकों में मिल सकती

है, पौधों से पृथक्कृत किये जा चुके हैं। एक अत्यधिक व्यापक, यद्यपि निश्चिततः सर्वप्रथम संश्लेषित में से एक नहीं, ऐस्पैराजीन है, जो शतावरी और अन्य पौधों में दीर्घमात्रा में विद्यमान रहता है। यह और अन्य ऐमीनो अम्ल व्युत्पन्न अंधकार में रखे पादप ऊतकों में मात्रा में वृद्धि करते हैं। किन्तु इस अवस्था में संचय का कारण संश्लेषणात्मक नहीं, बल्कि एक विश्लेषणात्मक प्रक्रम होता है: इस प्रक्रम में पश्चातवर्ती निर्मित और पूर्ववर्ती नाइट्रोजन संश्लेषण के अधिक विशद उत्पाद—उदाहरणार्थ, प्रोटीन—विघटित होते हैं और ऐमीनो अम्ल उत्पन्न करते हैं।

ऐमीनो अम्ल को प्रोटीन के संश्लेषण में दो अवस्थाओं के मध्य एक रासायनिक अर्द्धमार्गीय गृह की रचना करने वाला माना जा सकता है। प्रथम अवस्था की अवधि में ऐमीनो अम्ल उत्पन्न होते हैं और दूसरी अवस्था में वे प्रोटीन रूप में संश्लेषित होते हैं। एक बार जब नाइट्रोजन स्वांगीकरण की प्रथम प्रावस्था पूर्ण हो जाती है, और हरे ऊतकों द्वारा ऐमीनो अम्ल निर्मित हो जाता है, कोई भी जीवित कोशिका, हरी या रंगहीन, पौधा या जन्तु—उनको अनुकूल रूप में परिवर्तित कर—विभिन्न ऐमीनो अम्लों को दीर्घतर और दीर्घतर अणु शृंखला एक दूसरे के साथ आबद्ध करने के लिये उचित क्रम में शृंखलित करने में समर्थ जान पड़ते हैं। जब ऐमीनो अम्ल अवशेष के बहुसंख्यक शृंखलित वर्ग से निर्मित शृंखलावत् अणु बहुत लम्बा हो जाता है तो वह प्रोटीन निर्मित करता है।

यौगिकों के एक दल—ऐमीनो अम्ल—अपेक्षाकृत सरल आणविक रचना के होते हैं, और विलेय तथा विसरणशील होते हैं; यौगिकों के दूसरे दल–सत्य प्रोटीन–अत्यन्त जटिल रासायनिक और भौतिक रचना के होते हैं, वे अविसरणशील और साधारणतः अविलेय होते हैं। स्वयं प्रोटीन जटिलता के विभिन्न कोटियों की होती है। इनमें कुछ, सरलतर प्रोटीन, नाइट्रोजनी खाद्य-पदार्थ का गमनशील भंडार बनाते हैं जो जीवद्रव्यी यंत्रावली के सुधार और वृद्धि के लिये प्रयुक्त होते हैं; दूसरे जो अधिक जटिल होते हैं, स्वयं यंत्रावली का परमावश्यक भाग निर्मित करते हैं। उनके बिना और उनके सतत पुनर्निमाण के बिना जीवद्रव्य न तो कभी विद्यमान रह सकता है और न स्थायी हो सकता है।

प्रयोगात्मक प्रमाण इंगित करते हैं कि निचित प्रोटीन अपरिहार्य कच्चे पदार्थ हैं जिससे जीवद्रव्य अधिक जटिल जैव प्रोटीन का निर्माण करता है जो कोशिकाद्रव्य और केन्द्रक दोनों ही के परमावश्यक भाग निर्मित करता है। उदाहरणार्थ गेहूँ और अन्य पौधों के नवोद्भिद जब वे अंकुरित होना प्रारम्भ करते

हैं, दोनों प्रकार के प्रोटीन सन्निविष्ट रखते हैं; किन्तु जैसे-जैसे अंकुरण प्रगति करता जाता है, निचित प्रोटीन मात्रा में ह्रासित होने लगते हैं और उसके बदले अधिक जटिल जैव प्रोटीन वृद्धि करते हैं। बाद में, जब प्रकाश-संश्लेषण प्रारम्भ होता है, दोनों प्रकार के प्रोटीन वृद्धि प्रकट करते हैं। किन्तु यदि अंकुरित बीज और नवोद्भिद अंधकार में रक्खे जायँ जिससे प्रकाश-संश्लेषण अवरुद्ध हो तो ऐसा समय आता है जब निचित और जैव प्रोटीन दोनों ही क्षीण होते हैं।

दीर्घकालीन अंधकार की विषम अवस्थाओं में प्रोटीन सन्निविष्ट रखने वाली जीवद्रव्यी यंत्रावलि भंग हो जाती है, और उसके सुधार के लिये पदार्थों की अधिकाधिक न्यूनता होने से शिशु पौधा निराहार रहता है और मृत हो जाता है। यदि इसके विपरीत, नवोद्भिद प्रकाश में उत्पन्न हो, तो कार्बोहाइड्रेट संश्लेषण प्रारम्भ होता है, और उसके साथ ही ऐमीनो अम्ल का संश्लेषण तथा निचित प्रोटीन निर्माण के लिये उसकी शृंखलावद्धता भी प्रारम्भ होती है, जिससे सुधार के लिये पदार्थ सुलभ होने से जैव यान्त्रिकता संचालित रखी जाती है, और अपनी वृद्धि करने में समर्थ होती है: पौधा वृद्धि करता है तथा पुष्ट बनता है।

पौधे में विद्यमान नाइट्रोजन स्वांगीकरण की प्रथम प्रावस्था सूत्रपात करने की शक्ति उसे संसार भर में एक अपूर्व—बल्कि एकमात्र अपूर्व—पद प्रदान करती है। संसार के नाइट्रेट भंडार के प्रयोग का एकाधिकार पौधे को है, जिसका विरोध कदाचित ही अन्य जीव करते हैं। नाइट्रेट के नाइट्रोजन को ऐमीनो रूप में परिवर्तित करने की शक्ति से वंचित रहने वाले सब जीवों को प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः हरे पौधे पर नाइट्रोजन की अपेक्षा कार्बन-यौगिकों के लिये कुछ कम निर्भर नहीं रहना पड़ता, जिसकी उन्हें नितान्त आवश्यकता होती है, क्योंकि केवल हरे पौधे में ही प्रोटीन ईंटों को ऐमीनो अम्ल तृण के अतिरिक्त प्रदाय बिना ही बड़े पैमाने पर निर्माण करने की कला ज्ञात है। नाइट्रोजन विनिवेशक जीवाणु और सम्भवतः अन्य सूक्ष्म जीव इसी प्रकार के या अधिक प्रबल शक्ति रख सकते हैं; किन्तु उनके नाइट्रोजन संश्लेषण इतने बड़े पैमाने पर नहीं होते जिससे जन्तु जगत् के लिये आवश्यक कार्बनिक नाइट्रोजन-यौगिकों की पूर्ति कर सके।

नाइट्रोजन संश्लेषण की द्वितीय प्रावस्था—ऐमीनो अम्ल से प्रोटीन की रचना—प्रथम के विरुद्ध, किसी जीवित कोशिका—हरित या अहरित, पौधा या जन्तु को कोई कठिनाई उपस्थित करती नहीं जान पड़ती। अनुकूल ऐमीनो अम्ल या अन्य कार्बनिक नाइट्रोजनी पदार्थ का जिनसे कोशिका ऐमीनो अम्ल निर्मित कर सके, पर्याप्त प्रदान

सुलभ करने पर, और प्रचुर कार्बोहाइड्रेट प्रदान करने पर प्रत्येक जीवित कोशिका प्रोटीन संश्लेषण में समर्थ होते हैं।

एमीनो अम्ल से प्रोटीन संश्लेषण सम्पादित करने की अहरित पादप कोशिकाओं की क्षमता प्रदर्शित करने के लिये इन तथ्यों से लाभ उठाया जाता है कि कार्बोहाइड्रेट और नाइट्रोजनी पदार्थ की दीर्घ मात्रा शल्क कद और अन्य संचायक अंगों में सन्निविष्ट रहते हैं और जब पौधे के ऊतक क्षत होते हैं तो वे अनुभ्यस्त और महान सक्रियता के लिये उद्वलित होते हैं। इस प्रकार ऐसा है कि जब लीक (एलियम पोरम—प्याज की तरह एक पौधा) का शल्क कद काट कर उनमें से प्रत्येक अनेक टुकड़ों में कर दिये जाते हैं तो उनके ऊतकों की प्रोटीन, उनमें संचित सरलतर कार्बनिक नाइट्रोजनी यौगिकों को क्षयित कर तीव्रता से यथेष्ट वृद्धि करती है। प्रोटीन का इसी प्रकार का संश्लेषण हायासिन्थ द्वारा भी प्रदर्शित होता है, जो, जैसा कि हालैन्ड में व्यावसायिक रूप में व्यवहृत है, बड़े शल्क कंद चीरा देने द्वारा अनेक संतति (daughter) शल्क कंद उत्पन्न करने को विवश किये जाते हैं। इसी प्रकार कार्बनिक नाइट्रोजनी भंडारों से प्रोटीन संश्लेषण संचालित होता है, जब वर्ष के प्रारम्भ में अन्धकारपूर्ण गोदामों में कन्द लगाने से पुराने से नये आलू उत्पन्न होते हैं।

जन्तु कोशिका भी प्रोटीन संश्लेषण की इसी प्रकार की आंशिक शक्ति रखती है; पौधों की अहरित कोशिकाओं की तरह यह अनुकूल एमीनो कोशिकाओं से प्रोटीन संश्लेषित कर सकती है। तथापि जन्तु, यदि वे जीवित रहना चाहते हैं, तो उन्हें प्रोटीन युक्त खाद्य अवश्य प्रदान किये जाने चाहिये। इस प्रतिभासित विरोधाभास का समाधान किया जा सकता है। जन्तु अपने लिये प्रयोजनीय बहुसंख्यक और विविध प्रोटीन के संश्लेषण के लिये एमीनो अम्लों का जो उचित प्रकार या उचित मात्रा आवश्यक रखते हैं उन्हें प्रदान करने के लिये निश्चिततम और कदाचित एक मार्ग इन यौगिकों को उन्हें प्रोटीन रूप में प्रदान करना है। ऐसा करने से जन्तु को प्रोटीनों का खंडन करना ही होता है, और एमीनो अम्ल खंडों से अपनी निजी प्रोटीन पुनर्निर्मित करना पड़ता है। जन्तुओं के खाद्य में सन्निविष्ट प्रोटीन अधिकांशतः अविलेय और अविसरणशील होते हैं, अतएव बिना परिवर्तन के अवशोषित नहीं किये जा सकते। जन्तु पाचन द्वारा परिवर्तित प्रोटीनों से विलेय और विसरणशील एमीनो अम्ल उत्पन्न करते हैं। ये एमीनो अम्ल जन्तु शरीर की जीवित कोशिकाओं में अवशोषित और पुनर्संचित होते हैं जहाँ वे प्रोटीन निर्माण के लिये उचित क्रम में एकत्र संयोजित होते हैं।

यद्यपि यह अवश्य अनुपम है, तथापि हरा पौधा पूर्ण प्रोटीन संश्लेषण की क्षमता की दृष्टि से पूर्णतः प्रतिद्वन्दी रहित नहीं है। कुछ सूक्ष्मजीव अकार्बनिक स्रोतों से नाइट्रोजन निष्कर्षित करने और उसे जीवित संसार में भ्रमण करते हुये भेजने की शक्ति के साथ भागीदार होते हैं। उर्वर भूमि में सर्वत्र व्यापक वितरित अनेक प्रकार के जीवाणुओं में विशेषतया एक दल नाइट्रीकारी जीवाणु होता है, जो सहजीवन में कार्यसंचालक दो स्पीशीज का होता है, जो स्थान की अगम्यता होने पर भी पौधों और जन्तुओं के जीवन में उल्लेखनीय भाग लेते हैं।

नाइट्रीकारी जीवाणु (nitrifying bacteria) हरे पौधे को नाइट्रेट प्रदान करते हैं, और यद्यपि वे पर्णहरित विहीन होते हैं, तथापि सरल अकार्बनिक कच्चे पदार्थों से कार्बनिक कार्बन और नाइट्रोजन यौगिक संश्लेषित करते हैं। इस प्रक्रम के लिये ऊर्जा के स्रोत रूप में धूप का स्थान कौन प्रदान करता है, इसका इस समय अवश्य विचार करना है; यहाँ पर प्रश्न केवल यह है कि नाइट्रीकारी जीव किस प्रकार अपना जीवनयापन करते हैं। अन्यों का मांस उनके लिये विष है।

यदि कार्बनिक पदार्थ के विरल मात्र से अधिक मात्रा के सम्पर्क में हों तो नाइट्रीकारी जीवाणु सक्रियता स्थगित कर देते हैं। कार्बोनेट के रूप में कार्बन डाइऑक्साइड, जल और परमावश्यक खनिज पदार्थों और अमोनिया का प्रदाय सुलभ होने पर ही वे सक्रियता प्रारम्भ करते हैं।

यह प्रदर्शित करना कठिन नहीं है कि मिट्टी का अणुजीव जगत् अवश्य नाइट्रीकरण करता है। कृषि योग्य मिट्टी से भरी एक लम्बी काँच नलिका में बहुसंख्यक नाइट्रीकारी तथा अन्य प्रकार के जीवाणु होते हैं। यदि तनु खाद का जल, जो अमोनिया युक्त हो, किन्तु कार्बनिक नाइट्रोजन यौगिकों में दुर्बल हो, नलिका में मन्द गति से रिसने दिया जाय, तो निर्गन्धीकृत किया द्रव जो बाहर निकलता है, अमोनिया विहीन होता है और नाइट्रेट सन्निविष्ट रखता है। इस तरह प्राकृतिक रूप में उत्पादित नाइट्रेट ने, जब अंग्रेजी नाकेबन्दी के कारण फ्रांस में शोरे का आयात अवरुद्ध हो गया तो, नेपोलियन को बारूद बनाने के काम में सहायता की। मिट्टी के जीवाणु के द्वारा नाइट्रेट का उत्पादन अधिक समय तक संचालित रखा जा सकता है। परन्तु कोई भी वस्तु जो जीवाणु की जैव सक्रियता को व्याघात पहुँचाती है, नाइट्रीकरण को समाप्त कर देती है; उदाहरणार्थ यदि मिट्टी में क्लोरोफॉर्म संयुक्त किया जाय तो जीवाणु निश्चेतीकृत हो जाते हैं और नाइट्रीकरण की शक्ति लुप्त कर देते हैं। इसके विपक्ष, अंशतः निर्जर्मी मिट्टी, जैसे उदाहरणार्थ उसे लगभग १५०° फा० तक गर्म करने से, कदाचित प्रतिद्वन्दी जीवाणुओं के संहार से, जो गर्म न की हुई मिट्टी में

नाइट्रेट को अमोनिया में परिवर्तित कर नाइट्रीकरण के कार्य को विनष्ट करते हैं, नाइट्रीकरण को परिवर्धित शक्ति प्राप्त करती है। यह व्याख्या ठीक हो या न हो, इतना निश्चित है कि मिट्टी में अनाइट्रीकारी तथा नाइट्रीकारी दोनों ही जीव निहित होते हैं। खाद की ढेरी से अमोनिया की गंध उनकी विद्यमानता और उनकी सक्रियता के रूप को प्रमाणित करती है।

नाइट्रीकारी जीवों की सक्रियता के परिणामस्वरूप सहभागी में से एक के द्वारा अमोनिया नाइट्राइट में ऑक्सीकृत होता है और नाइट्राइट दूसरे सहभागी द्वारा नाइट्रेट में ऑक्सीकृत होता है। नाइट्रेट के उत्पादन के साथ-साथ ही नाइट्रीकारी जीव वृद्धि करते और बहुसंख्यक बनते हैं और वृद्धि तथा संख्या वृद्धि के साथ-साथ उनके शरीर में कार्बनिक कार्बन और नाइट्रोजन सन्निविष्ट यौगिकों का वर्धन होता है। कार्बन और नाइट्रोजन दोनों निश्चय ही बाह्य जगत् से प्राप्त किये गये होंगे; कार्बन कदाचित कार्बन डाइऑक्साइड से और नाइट्रोजन नाइट्राइट-निर्मायक की स्थिति में अमोनिया से तथा नाइट्रेट-निर्मायक जीवाणु की स्थिति में नाइट्राइट से प्राप्त हुआ होगा।

यहाँ हरे पौधे द्वारा कच्चे पदार्थों की उपलब्धि, संचय तथा रासायनिक रूपान्तर की लम्बी कथा समाप्त होती है। यह कथा के स्थान पर रेखाचित्र ही है; क्योंकि कथा ठीक तरह तथा सत्य रूप में कही जाने के लिये अधिक ज्ञान अवश्य शोध करना होगा। तथापि जैसी एक कथा होनी चाहिये, यह महान अभियानों का वर्णन करती है, और भावी रचित किये जाने वाले परिणाम में उद्‌घाटित होने वाले गंभीर रहस्य को इंगित करती है। हरा पौधा, संसार का एकमात्र धनी, ने अब कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन खाद्य-पदार्थों का भंडार संचित कर लिया है। अब यह शोध करना रह जाता है कि पौधा उसके साथ क्या करने जा रहा है।

अध्याय ५

खाद्य पदार्थों का स्थानांतरण। कार्बोहाइड्रेटों और प्रोटीनों के भौतिक तथा रासायनिक गुण। विसरण। परासरण : परासरण दाब। कोलॉइड और अकोलॉइड: कोलॉइडी अवस्था। एन्जाइम और स्थानांतरण में उनका भाग। मूल और स्तम्भ की संवाहन प्रणाली

जब ग्रीष्मकालीन दिवस के सूर्योदय के समय सूर्य की एक किरण हरी पत्ती पर पड़ती है, तो पौधा तत्क्षण सक्रियता के लिये त्वरित होता है। सूर्य के प्रकाश के सारे घंटों में शर्करा और कार्बनिक नाइट्रोजनी खाद्य-पदार्थ की रचना उस समय तक संचालित रहती है जब तक कि संध्या के निकट संश्लेषणात्मक प्रक्रम शिथिल नहीं हो जाते या निर्माण के उत्पादों के संचय या सूर्यास्त होने से शक्ति के अवरुद्ध हो जाने से स्वतः स्थगित नहीं हो जाते। तथापि प्रकाश-संश्लेषण का दैनिक पुनर्नवीकरण होते रहने पर भी, न तो कार्बोहाइड्रेट और न नाइट्रोजनी खाद्य पदार्थ ही पत्ती में असीमित रूप से संचित होते जाते हैं। पत्ती की हरी कोशिका में आज निर्मित मंड कल तक लुप्त हो चुका रहेगा, और जिन कोशिकाओं में वह निर्मित हुआ था, उसे ताजे माल की पहुँच स्वीकृत करने के लिये स्वतंत्र छोड़ चुका रहेगा। शर्करा और संश्लेषणात्मक नाइट्रोजन उत्पाद भी उन पत्तियों से लुप्त हो जाते हैं जिनमें वे निर्मित हुये थे। जैसे रंगरूटों के दल डिपो में मोर्चे पर रवाना होने के लिये सैन्य स्थानांतरण की प्रतीक्षा करते हुए, पड़े रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक दिवस की संश्लेषणात्मक खाद्य-पदार्थ की नई भर्ती क्रियात्मक जीवन के लिये स्थानांतरित होने के पूर्व कुछ समय उस कोशिका में ही पड़ी रहती है जिसमें वह निर्मित हुई थी। हरी पत्ती की स्वांगीकारक सक्रियता द्वारा किसी ग्रीष्म दिवस को अस्तित्व में आया हुआ शर्करा अणु वर्षान्त समाप्ति के पूर्व स्तम्भ या मूल की कोशिका में किसी न किसी रूप में बन्द पाया जा सकता है—यह एक स्थानान्तरण है, जो, यदि पौधा बड़ा वृक्ष हो, तो सौ गज या उससे भी अधिक की मात्रा हो सकती है। दूसरा वसंत ग्रीष्म में मिलित होने के पूर्व वही शर्करा अणु पुनः पत्ती में अपने जन्म स्थल के निकट नवकलिका में उदित हो सकता है।

खाद्य पदार्थ का पौधे के अन्दर अस्थाई निवास, जिसने उसे निर्मित किया था,

संक्षिप्त या लम्बा हो सकता है, और जिन परिवर्तनों में वे पड़ते हैं, वे अनेक या थोड़े, बड़े या छोटे हो सकते हैं। किन्तु एकान्तरित परिणति जो आने की प्रतीक्षा करती रहती है, उनके ऊपर आने के पूर्व, खाद्य-पदार्थों को उनकी पूर्ति के लिये अग्रसर होना चाहिये। पत्ती में बंधे रह कर खाद्य-पदार्थ पौधे के अन्य अंगों के लिये इस प्रकार अनावश्यक होते हैं जैसे गुप्त संचित सोने का भंडार केवल सूम (कंजूस) को छोड़ कर समाज के किसी भी सदस्य के उपयोग का नहीं होता। पौधे की आवश्यकता पूर्ति के लिये खाद्य-पदार्थ, मूल और स्तम्भ, पत्ती और पुष्प की प्रत्येक जीवित कोशिका को अवश्य सुलभ होने चाहिये।

खाद्य पदार्थों के स्थानांतरण की प्रकृति और विधि समझने के लिये स्वयं उन पदार्थों के भौतिक तथा रासायनिक गुणों की छानबीन और जिस मार्ग से वे जाते हैं, उसके निरीक्षण की आवश्यकता है।

कार्बोहाइड्रेट, जिसकी अनेक किस्में पौधों में होती हैं, आरोही जटिलता के सम्बन्धित कार्बनिक यौगिकों की एक श्रेणी निर्मित करते हैं। उनमें सरलतम शर्करा है; अधिक जटिल मंड हैं, और अधिकतम जटिल सेलुलोस हैं जिनमें से कुछ, पौधों की कोशिका-भित्ति के निर्माण में प्रवेश करते हैं। शर्करा, मंड और सेलुलोस एकत्र वर्गीकृत होकर कार्बोहाइड्रेट कहलाते हैं क्योंकि उनके अनेक अणुओं में सब के सब एक ही मौलिक योजना पर निर्मित होते हैं। वे सब कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन युक्त होते हैं और इनमें से किसी अणु में, हाइड्रोजन का ऑक्सीजन से वही अनुपात होता है जो पानी (H_2O) में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का—दो और एक का होता है। अतएव सभी कार्बोहाइड्रेट इस साधारण सूत्र द्वारा प्रतिरूपित हो सकते हैं: $C_m H_{2n} O_n$। श्रेणी भर में, सरलतम शर्करा से अधिकतम जटिल सेलुलोस तक, m और n का संख्यात्मक मूल्य अर्थात् अणु में परमाणुओं की संख्या अपेक्षाकृत निम्न अंक से बहुत ऊँची संख्या तक बढ़ती है। सरलतर शर्कराओं में एक—ग्लूकोस में m तो ६ है उतना ही n भी है। अतएव साधारण सूत्र $C_m H_{2n} O_n$ संख्या रूप में $C_6 H_{12} O_6$ हो जाता है। इक्षु-शर्करा में m १२ है और n ११ है इसलिये इसका सूत्र $C_{12} H_{22} O_{11}$ है। मंड और सेलुलोस में m ६ का बहुत बड़ा गुणज होता है, और n ५ का बहुत बड़ा गुणज होता है, इसलिये साधारण सूत्र $(C_6 H_{10} O_5)$ x हो जाता है जिसमें x कदाचित २०० या अधिक है। अतएव मंड का एक अणु कुछ ऐसे सूत्र से, जैसे $C_{1200} H_{2000} O_{1000}$ से प्रतिरूपित हो सकता है और ऐसा होने पर भी यह सेलुलोस के अणु से न्यून जटिल ही होता है।

शर्करा मंड, और सेलुलोस की रासायनिक रचना की आवश्यक सादृश्यता

उस तत्परता से व्यक्त होती है, जिसके साथ उच्च कार्बोहाइड्रेट, सरल रासायनिक साधनों से शर्करा उत्पन्न करने में संलग्न किये जा सकते हैं। डेक्स्ट्रोस—या जैसा व्यवसाय में ग्लूकोस के नाम से विख्यात है, पौधों के मंडीय अवशेष को अम्ल से उपचारित कर औद्योगिकतः उत्पन्न किया जा सकता है। जो भी व्यक्ति खजूर का बीज बोवे, क्रमिकतः सूक्ष्मदर्शी द्वारा भ्रूणपोष की भित्ति पर स्थूल सेलुलोसी निक्षेप का लोप लक्षित कर सकता है और इसका निश्चय कर सकता है कि लोप के अनन्तर ही सरलतर कार्बोहाइड्रेट, जैसे उदाहरणार्थ, शर्करा—भ्रूण में विद्यमान होते हैं। हरा पौधा निस्संदेह ही, कार्बोहाइड्रेट को एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरित करने की विलक्षण शक्ति रखता है। यदि हरी पत्ती जो उस समय तक अंधकार में रखी रहे जब तक कि उसकी कोशिकाओं से सारा मंड लुप्त न हो जाय, शर्करा के तनु विलयन पर प्लावित की जाय, तो वह इतना अधिक अवशोषित करती है तथा शर्करा को मंड रूप में इतनी तीव्रता से रूपान्तरित करती है कि वह पत्ती, यद्यपि प्रकाश उस तक कदापि नहीं पहुँचा है, आयोडीन से उपचारित करने पर नीला-कृष्ण रंग उत्पन्न करती है। आलू के कन्द में दीर्घ मात्रा में मंड होता है, और इतनी अल्प शर्करा होती है कि उसमें मीठापन नहीं होता, तथापि यदि आलू अव्यवस्थित रूप से संगृहीत रक्खे जायँ तो मंड शर्करा रूप में परिवर्तित हो जाता है, और कन्द एक तुषारीय मौसम के उभाड़ में मीठा हो सकता है। यदि तुषारपात भीषण हो, तो आलू मृत हो जाते हैं, भूरे रंग के हो जाते हैं, और सड़ान पैदा हो जाती है; किन्तु यदि कन्द का ताप ४° सेंटीग्रेड से नीचे न गिरे तो वे मीठे हो जाते हैं और मृत नहीं होते। जब ताप पुनः उच्च होता है तो शर्करा लुप्त हो जाती है, और उसके स्थान पर मंड प्रकट होता है। इस प्रकार एक पौधा कार्बोहाइड्रेट के एक रूप से दूसरे रूप में आगे और पीछे भ्रमित होता रह सकता है।

कार्बोहाइड्रेट अणु रचना की योजना की ऐकरूपता उस तत्परता से भी प्रदर्शित की जाती है जिसके साथ अधिक जटिल शर्करायें सरलतर शर्कराओं के रूप में रूपान्तरित किये जा सकते हैं। इक्षु-शर्करा (स्यूक्रोज, $C_{12}H_{22}O_{11}$) जल में खौलाने पर ग्लूकोस और फ्रक्टोस दो शर्कराओं को उत्पन्न करती है। जिनमें से प्रत्येक एक ही सूत्र $C_6H_{12}O_6$ से प्रतिरूपित है। इक्षु-शर्करा जल के साथ खौलाने द्वारा उत्पन्न परिवर्तन ध्रुवणमापी (polarimeter)—एक उपकरण है जो इस बात के निर्धारण के लिये उपयुक्त हो सकता है कि कोई निर्दिष्ट पदार्थ अपने मध्य से प्रवेश कराने पर ध्रुवित (polarised) प्रकाश की एक किरणपुंज (beam) के पृष्ठ का घूर्णन (rotation) उत्पन्न करती है या नहीं—

से ज्ञात किया जा सकता है। यदि प्रकाश घूर्णित हो तो वह पदार्थ ध्रुवण-घूर्णक (optically active) कहा जाता है यदि नहीं हो तो वह प्रकाशतः ऋण कहलाता है।

ध्रुवणमापी का उपयोग एकसमान ध्रुवण-घूर्णक पदार्थ के विलयन की शक्ति तुलना करने के लिये भी किया जा सकता है; क्योंकि ध्रुवण-घूर्णक पदार्थों के अणु द्वारा घूर्णन उत्पन्न होता है और सीमित रूप में एक निर्दिष्ट मात्रा के जल में अणुओं की संख्या जितनी ही अधिक होगी, घूर्णन उतना ही अधिक होगा। इस प्रकार की माप का लाभ वहाँ उठाया जाता है, जहाँ चुकन्दर-शर्करा सहकारिता विधि से उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार शर्करा-परिष्कारक, कृषक को उसी समय मूल्य चुकाने की स्थिति में होता है जब फसल उठाई जाती है और उसका भार निर्धारित हो जाता है। चुकन्दर के जड़ की श्रेणियों में छेद कर निकाले हुए कुछ टुकड़े जल से निष्कर्षित करने और ध्रुवणमापी से परीक्षित करने पर शर्करा-परिष्कारक को फसल में सन्निविष्ट इक्षु-शर्करा की मात्रा का निकट अनुमान करने में समर्थ बनाते हैं और शर्करा के प्रतिशत तथा फसल की उपज से वह उसका मूल्य अंकित करता है, और किसान एक बार सुख का अनुभव कर चुकन्दरों के लद कर जाने से पहले ही अपना मूल्य पा सकता है। इससे भी आगे, जब, जैसा कि जल में इक्षु-शर्करा खौलाने पर घटित होता है, ध्रुवर्ण-घूर्णक पदार्थ नष्ट हो जाता है और अन्य ध्रुवर्ण-घूर्णक पदार्थ (ग्लूकोस और फ्रक्टोस) उत्पादित होते हैं, ध्रुवणमापी द्वारा उसके वेग का निर्धारण संभव है जिससे परिवर्तन संचालित होता रहता है, क्योंकि विलयन रूप में इक्षु-शर्करा का अणु अपनी निजी निर्दिष्ट घूर्णक शक्ति रखता है, और इसी प्रकार किसी भी अन्य ध्रुवण-घूर्णक पदार्थ के अणु, रखते हैं। इक्षु-शर्करा ध्रुवित प्रकाश की किरणपुंज का दक्षिण ओर (घड़ी की सुई की तरह––दक्षिणावर्त) घूर्णित करती है; इसी प्रकार ग्लूकास भी करता है––इस प्रकार इसके नाम का 'दक्षिणावर्त' अर्थ है। किन्तु फ्रक्टोस वामपार्श्वीय अर्थात् वामावर्त शर्करा है यह वामावर्त (घड़ी की सुई के विरुद्ध) घूर्णन उत्पन्न करता है और ग्लूकोस अणु की 'वामावर्तता' स्यूक्रोस या ग्लूकास अणु की 'दक्षिणावर्त्तता' से अधिक होती है। स्यूक्रोस का विलयन खौलाने से ज्यों ही ग्लूकोस निर्मित होता है, वह तुरन्त वामावर्तीय प्रभाव उत्पन्न करने लगता है। विलयन पहले की अपेक्षा की न्यून दक्षिणध्रुवण घूर्णक हो जाता है और फ्रक्टोस की मात्रा जैसे वृद्धि करती है, दक्षिण ओर घूर्णन क्रमिक रूप से उस समय तक न्यून होता जाता है जब तक कि अन्त में विलयन में स्यूक्रोस, ग्लूकोस तथा फ्रक्टोस मिश्रण ध्रुवणमापी में अपने को वामावर्त्तीय प्रकट नहीं करता: ध्रुवित प्रकाश का तल अब

वामावर्तीय घूर्णित करता है। स्यूक्रोस के ग्लूकोस और फ्रक्टोस रूपमें परिवर्तन के समय जो विपरीतता उत्पन्न होती है उसके कारण उसे स्यूक्रोस का अपवृतकरण (inversion) पुकारने की परिपाटी है।

इक्षु-शर्करा का अपवृतकरण जल और शर्करा अणुओं के युग्म रूप में, संयोग द्वारा उत्पन्न माना जा सकता है। अतएव यह एक जल-अपघटनीय परिवर्तन––जल-अपघटन (hydrolysis) है। जब जल और स्यूक्रोस अणु एक दूसरे के साथ सह-वर्तिता में संयुक्त होते हैं तो जो संकर वे निर्मित करते हैं, वह टिकाऊ नहीं होता, बल्कि एक ग्लूकोस अणु और एक फ्रक्टोस अणु रूप में इस प्रकार विभेदित हो जाता है:

$$\underset{\text{स्यूक्रोस}}{C_{12}H_{22}O_{11}} + \underset{\text{जल}}{H_2O} = \underset{\text{स्यूक्रोस-जल संकर}}{\left\{ \begin{matrix} C_{12}H_{22}O_{11} \\ H_2O \end{matrix} \right\}} = \underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} + \underset{\text{फ्रक्टोस}}{C_6H_{12}O_6}$$

स्यूक्रोस-जल आणव संकर दो अर्द्धभागों में चिर जाता है और इस कारण यह परिवर्तन खंडमय परिवर्तन कहलाता है इक्षु-शर्करा के अपवृतकरण में जल-अपघटनीय और खंडमय दोनों ही कार्य होते हैं। अन्य स्थितियों में यदि प्रतिक्रिया अन्य मार्गीय होती और एक ग्लूकोस तथा एक फ्रक्टोस से स्यूक्रोस का एक अणु निर्मित होता तो समीकरण इस प्रकार लिखा जाता:

$$\begin{matrix} \text{ग्लूकोस} \\ C_6H_{12}O_6 \\ C_6H_{12}O_6 \\ \text{फ्रक्टोस} \end{matrix} = \underset{\text{स्यूक्रोस}}{C_{12}H_{22}O_{11}} + \underset{\text{जल}}{H_2O}$$

और यह स्पष्ट है कि, परिवर्तन उपस्थित करने के लिये, हाइड्रोजन के दो परमाणु और ऑक्सीजन का एक परमाणु जो शर्करा से बहिर्गत जल के अणु में सन्निविष्ट रहते हैं, निश्चिततः इतनी कोमलता से निष्कर्षित होने चाहिये कि ग्लूकोस और फ्रक्टोस के अवशेष के वर्ग निर्माण में अत्यल्प व्याघात पहुँचे, और इस प्रकार ऐसा होता है कि दोनों अवशेष स्यूक्रोस का एक अणु निर्मित करने के लिये संयुक्त या संघनित होते हैं इसमें तथा इसी प्रकार की प्रतिक्रियाओं में व्यक्त रासायनिक संबंधों के कारण ग्लूकोस और फ्रक्टोस समान शर्करायें मोनोसैकेराइड कहलाती हैं और स्यूक्रोस समान शर्करायें डाइसैकेराइड कहलाती हैं।

इन समान कारणों से मंड तथा सेलुलोस बहुसैकेराइड रूप में वर्गीकृत हैं। शर्करा की भाँति वे, या कम से कम उनमें से अनेकों, जल-अपघटनीय तथा खंडमय परिवर्तन के प्रभाव में डाले जा सकते हैं. जो सार रूप में समरूप और उससे भी बहुत अधिक परिमाण में होता है जो जल में खौलाये स्यूक्रोस द्वारा धारित हो सकता है। जल अपघटित और खंडमय परिवर्तनों में, जो मंडों तथा सेलुलोस में प्रस्तुत किये जा सकते हैं, एक अणु दो को नहीं, बल्कि एक या अधिक शर्कराओं के दो से अधिक अणु उत्पन्न करते हैं: इस कारण बहुसैकेराइड शब्द प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ, जब मंड जल तथा खनिज अम्ल से उपचारित होता है तो $C_6H_{10}O_5$ के बहुसंख्यक वर्ग जिनके अणु निर्मित होते हैं, मानों एक-एक कर लिये जाते हैं और ग्लूकोस का अणु निर्मित करने के लिये जल के अणु के साथ संयुक्त होते हैं। किन्तु, जब, मंड न्यून भीषण अभिकर्मक द्वारा प्रभावित होता है, तो परिवर्तन का उत्पाद ग्लूकोस नहीं होगा, बल्कि डाइसैकराइड माल्टोस होगा जो उसी सूत्र का है जैसा स्यूक्रोस ($C_{12}H_{22}O_{11}$)। इस अवस्था में जल अणु द्वारा सम्पादित आणविक गठन बंधन निम्न प्रकार प्रतिरूपित किया जा सकता है:

$$\begin{matrix} C_6H_{10}O_5 \\ C_6H_{10}O_5 \\ C_6H_{10}O_5 \\ C_6H_{10}O_5 \end{matrix} \quad \begin{matrix} \searrow \\ \nearrow \end{matrix} + H_2O = C_{12}H_{22}O_{11}$$

और इसी प्रकार अन्य भी।

अवशेष वर्ग ($C_6H_{10}O_5$) एकत्र संघनित होते हैं और मध्यवर्ती उत्पादों जैसे डेक्स्ट्रीन को जन्म देते हैं जो समान जल-अपघटनीय परिवर्तन में पड़ कर अन्त में उस समय शर्करा अणु उत्पन्न करता रहता है जब तक कि अंततः केवल माल्टोस (माल्टशर्करा) और मंड कण के अजल-अपघटनीय अवशेष बचे नहीं रह जाते।

शर्कराओं, मंडों, और सेलुलोस की अनुक्रमिक रासायनिक जटिलता उनके भौतिक व्यवहार में भी प्रदर्शित होती है। शर्करा विलेय होते हैं। वे जल के साथ सत्य विलयन निर्मित करते हैं। मंड, यद्यपि एक चिपकनी लेई निर्मित करने के लिये जल के साथ फूलते हैं, तथापि वे सत्य विलयन नहीं निर्मित करते। जल के साथ अधिक समय तक उबालने पर मंड तरल माध्यम के मध्य वितरित हो जाता है और जल तथा मंड का दूधिया (opalascent) एकरूप मिश्रण निर्मित करते हैं; किन्तु यह सत्य विलयन नहीं होता। सेलुलोस जल में बिल्कुल अविलेय होते हैं, और यद्यपि, मंड

की भाँति वे जल अंतःशोषित करते हैं तथा फूलते हैं, तथापि वे जो कुछ ग्रहण कर सकते हैं उसे ग्रहण कर चुकते हैं तो भी अपना ठोस रूप धारण किये रहते हैं।

शर्करा विसरणशील होती है, मंड और सेलुलोस नहीं होते। जिस प्रकार एक सुगंधि शान्त वायु के मध्य अपने को विसरित कर लेती है, उसी प्रकार शर्करा जिस पानी में विलीन की जाती है, उसके सर्वांग में विलयन रूप में विसरित हो जाती है। शर्करा या अन्य विसरणशील पदार्थों का विसरण इस तथ्य के कारण सम्भव होता है कि ठोस को निर्मित करने वाले अणुओं का पुंज विलयन में विघटित हो जाता है और स्वतंत्र अणु मुक्त करता है, जो जल के स्वतंत्र अणुओं के मध्य अपने को वितरित कर लेते हैं। अणु कभी स्थिर नहीं रहते। वे सतत इधर-उधर गतिशील रहते हैं और इन गतियों की बहुलता के परिणामस्वरूप जल और शर्करा के अणु जिस माध्यम में गति करते हैं, उसमें सर्वत्र एकरूप से वितरित हो जाते हैं। विसरण, क्योंकि यह अणुओं की गति पर आश्रित होता है, एक मन्द प्रक्रम है। जिस तीव्रता के साथ एक शर्करा की डली एक बिना मंथित प्याले की चाय को भी मीठी बनाती है, उसका कारण जल और शर्करा के विसरण और संहति गति को जल और प्याले की अल्प गति से प्रदत्त सहायता है।

माध्यम के क्षोभ (disturbance) से सहायता प्राप्त न होने पर विसरण कितना मन्द होता है, यह प्रकट करने के लिये प्रक्रम ऐसी अवस्थाओं में होना चाहिये जो संहति गति को बहिष्कृत रखती हों। एक पतला बेलनाकार काँच का मर्तबान (चित्र १९) जिलेटिन (श्लेष) के विलयन से भर दिया जाता है जो उतना सान्द्र हो कि कम ताप पर जम सके। जिलेटिन जब कि कोष्ण (warm) ही हो, मर्तबान में उसके उड़ेले जाने के पूर्व उसमें फिनोल्फथेलिन—एक पदार्थ जो क्षार के साथ एक गुलाबी रंग उत्पन्न करता है—की अल्प मात्रा मिश्रित की जाती है। जब जिलेटिन जम जाती है, तो सन्निविष्ट रखने वाला काँच मर्तबान एक रिटार्टस्टैंड (retort stand) में स्थिर कर दिया जाता है और एक स्थिर मेज पर खड़े बर्तन में रक्खे पोटाश के सान्द्र विलयन के ऊपर उलट दिया जाता है। फिनोलफ्थेलिन और पोटाश की परस्पर क्रिया द्वारा उत्पन्न गुलाबी रंग की, नलिका में प्रतिदिन की प्रगति से पोटाश के विसरण की गति मापी जा सकती है। यह स्पष्ट है कि विसरण के कारण उत्पन्न गति की अवहेलना नहीं की जा सकती, जब कि पौधों के खाद्य-पदार्थ की गति का विचार किया जा रहा हो; किन्तु यह भी कम स्पष्ट नहीं है कि एक बड़े वृक्ष की पत्ती से मूल तक शर्करा का संवाहन केवल विसरण द्वारा बहुत मंद होगा।

मंड और सेलुलोस में विलोम गुण-धर्म होते हैं। वे अविसरणशील होते हैं। यद्यपि मंड और अंतःशोषित (imbibed) जल से निर्मित सूक्ष्म कणिकायें, जो मंड विलयन को दूधियापन प्रदान करती हैं, अपनी सूक्ष्मता के कारण गति की कुछ क्षमता रख सकती हैं, तथापि वह गति अणुओं की भाँति स्वतंत्र नहीं होती। इस दृष्टि से शर्करा और मंड के मध्य भिन्नता जैम आवरण के लिये प्रयुक्त समान चर्म-पत्र झिल्ली (parchment membrane) एक सिरे पर बन्द एक नलिका रूप बना कर प्रयुक्त करने से प्रदर्शित की जा सकती है। यदि चर्म-पत्र नलिका शर्करा विलयन से लगभग पूर्ण भरी हो, और जल में डुबो दी जाय तो शर्करा इस प्रकार विसरित होने लगेगी मानो चर्म-पत्र वहाँ है ही नहीं, और शीघ्र ही बाहर के जल का मीठापन चर्म-पत्र नलिका के अन्तंवर्ती विलयन से शर्करा अणुओं के बाहर निकलने का ज्ञापन करती है। इसके विपक्ष, चर्म-पत्र नलिका में दूधिया मंड विलयन रखने पर वहीं पड़ा रहता है। उनके व्यवहार में इतनी पूर्ण भिन्नता होती है कि एक विलयन में ही दोनों के विद्यमान रहने पर मंड और शर्करा को पृथक् करने में चर्मपत्र नलिका का प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु उन्हें पूर्णतया पृथक् करने के लिये चर्म-पत्र नलिका के बाहर के पानी को समय-समय पर बदलने की आवश्यकता होती है: क्योंकि यदि वह बदला न जाया करे तो विसरण के संचालित रहने पर चर्म-पत्र नलिका के भीतर पानी में जो शर्करा की सान्द्रता होगी वही बाहर के पानी में भी होगी। जब ऐसा घटित हो, एक दिशा में विसरण की आपेक्षिक गति वैसी ही होगी जैसी दूसरी दिशा में, और इसलिये कुछ शर्करा मंड में मिश्रित पड़ी रह जायगी। नलिका के बाहर पानी बदल देने से पुनः साम्यावस्था (equilibrium) स्थापित होने तक बाहर की ओर विसरण जारी रहता है, और इसलिये बार-बार पानी बदलने से शर्करा का अंतिम अणु मिश्रण से पृथक् किया जा सकता है।

चर्म-पत्र नलिका में एक काग जोड़ा जाय जिसमें दो काँच नलिकयें——एक छोटी भरने के लिये और दूसरी लंबी अभिलेख के लिये——खुले मुँह में लगी हों (चित्र २०) तो विलयन में शर्करा या इसी प्रकार विसरणशील वस्तु के व्यवहार का निकट अनुसंधान हो सकता है। चर्म-पत्र उपकरण पानी रक्खे हुये एक बर्तन के ऊपर अवस्थित किया जाता है और अत्यल्प विलेय, विसरणशील रंग संयुक्त सान्द्र शर्करा विलयन चौड़ी भरने वाली नलिका के मार्ग से उडेला जाता है जो केवल मात्र, काग की पेंदी में पहुँचता है जिसमें वह नली बैठाई गई होती है। चर्म-पत्र नलिका पानी में नीचे की जाती है। जब चर्म-पत्र नलिका पूर्णतः भर दी जाती है, भरने वाली नलिका बन्द कर दी जाती है और बाहरी

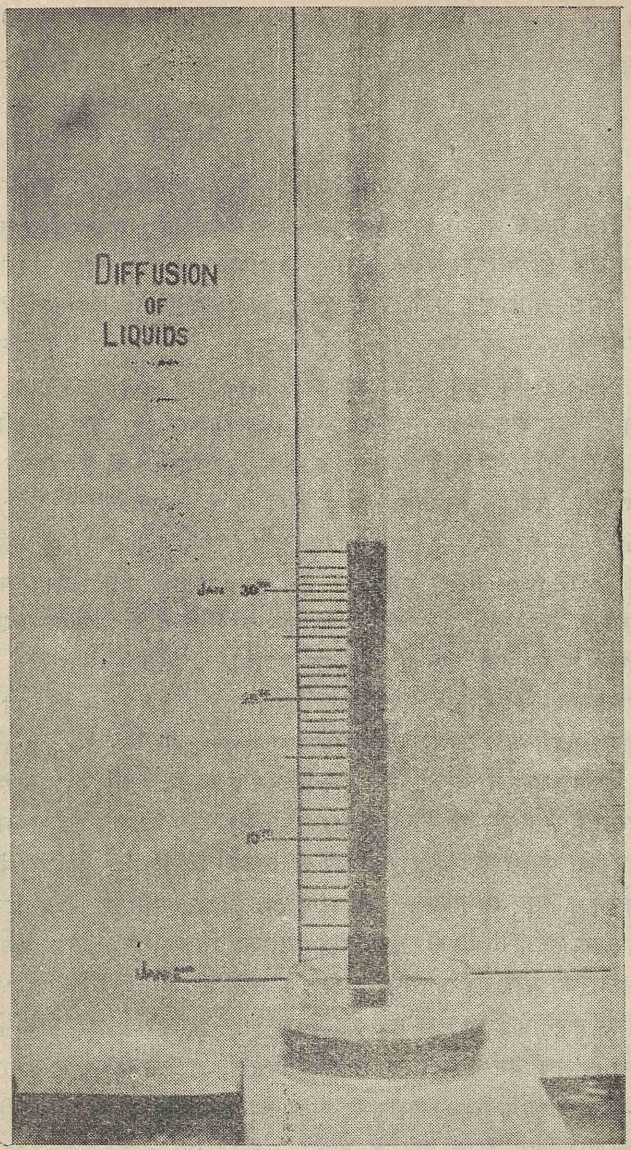

चित्र १९——पोटाश के विलयन में विसरण की गति का अभिलेख (प्रयोग में पोटाश द्वारा पहुँची ऊँचाई ३२ दिन में ७½ इंच)।

बर्तन में उस समय तक अधिक पानी डाला जाता है जब तक कि वह काग की सतह के बराबर तक नहीं पहुँच जाता। कुछ ही देर में चर्म-पत्र भित्ति कड़ी हो जाती है, और अभिलेखन नलिका में जल चढ़ने लगता है और उस समय तक चढ़ता जाता है जब तक कि एक दो दिन बाद कई गज की ऊँचाई तक नहीं पहुँच जाता। तब या तो उपकरण में कोई दुर्बल स्थल पाकर और उसे भग्न कर जल के बोझित स्तम्भ के अचानक नीचे गिरने से, या मन्दतया जल स्तम्भ अपनी प्रारंभिक सतह तक आ जाता है। उधर जल की मधुरता प्रकट करती है कि शर्करा बाहरी बर्तन में स्थानान्तरित हुआ है, और उसका रंग प्रदर्शित करता है कि रंग भी बाहर स्थानान्तरित हुआ है। उठता हुआ जल स्तम्भ प्रकट करता है कि पानी भीतरी बर्तन में प्रविष्ट हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि कुछ कार्य संपादित हुआ है: जल कुछ कम ऊँचाई तक नहीं चढ़ा हैं। इस जल स्तम्भ को खड़ा रखने के लिये शर्करा विलयन को अवश्य ही दाब का बल लगाना पड़ता हैं। शर्करा के समान जो पदार्थ इसी प्रकार की अवस्थाओं में दाब का बल प्रदर्शित करने में समर्थ होते हैं, वे परासरणी पदार्थ (osmotic substances) कहलाते हैं, और जिस दाब का बल वे लगाते हैं वह परासरण दाब (osmotic pressure) कहलाता है। उस दाब के परिणामस्वरूप जल, इस तथ्य के कारण कि उसके विसरण में झिल्ली कोई व्याघात उपस्थित नहीं करती-बाहरी बर्तन से एक-एक अणु कर चर्म-पत्र नलिका में प्रविष्ट करता है।

जल-स्तंभ के अन्तिम गिराव का कारण शर्करा का बाहर की ओर विसरण है। चर्म-पत्र झिल्ली शर्करा अणु तथा पानी के अणु के लिए भी पारगम्य (permeable) है। एक शर्करा अणु जो बाहरी बर्तन में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार परासरण दाब उत्पन्न करता है जैसे अणु नलिका के भीतर करते हैं। अतएव, जैसे शर्करा बाहर संचित होती है उसका परासरण दाब नलिका के अन्दर विलयन में शर्करा के दाब का संतुलन करने के लिए अधिकाधिक अग्रसर होता है। भीतर से बाहर की ओर शर्करा भी निरंतर अपोहन (dialysis) के साथ नलिका में परासरण दाब कम हो जाता है और बाहर की ओर बढ़ जाता है। जब वे संतुलित हो जाते हैं, तो जल स्तंभ को आलंबित करने के लिए कुछ नहीं रह जाता और इस कारण वह नीचे गिरता है। यदि शर्करा के अणु चर्म-पत्र नलिका से बाहर विसरित न होते--अर्थात् दूसरे शब्दों में, यदि चर्म-पत्र शर्करा के लिये अपारगम्य होता तो यह स्पष्ट है कि जल अधिक ऊँचाई तक चढ़ता और जिस ऊँचाई तक यह अंततः पहुँच जाता है वह एक ज्ञात सान्द्रण के शर्करा विलयन द्वारा, जो नलिका में उडेली गई थी, प्रयासित परासरण दाब की ठीक माप द्योतित करती। इस प्रकार की झिल्लियाँ जो जल के लिए पारगम्य किन्तु

अन्य विसरणशील पदार्थों के लिए पारगम्य नहीं होती, और इस कारण जिन्हें अर्धपारगम्य (semipermeable) झिल्ली कहा जाता है आविष्कृत और निर्मित हुई है, और उनके प्रयोग द्वारा विभिन्न वस्तुओं के परासरण दाब, जो पौधों में पाये जाते हैं, मापित हुए हैं। इन मापों ने भौतिक ज्ञान की वृद्धि की है, और उन नियमों का आविष्कार संभव किया है जो परासरण का नियंत्रण करते हैं, और जो बात पादप कार्यकीवेत्ता के लिए कम महत्त्व की नहीं है, उन्होंने प्रकट की है कि शर्करा, कार्बनिक और अकार्बनिक अम्ल तथा कोशिका रस में विलीन अन्य परासरणी पदार्थों द्वारा प्रयासित दाब विलक्षणतः भारी होते हैं। चुकंदर, जो अत्यधिक इक्षु-शर्करा सन्निविष्ट रखता है, का कोशिका रस २० वायुमंडल के बराबर अर्थात् ३०० पौंड प्रति वर्ग इंच परासरण दाब उत्पन्न करने में समर्थ होता है, सक्रियतः वृद्धिशीलकोशिकाओं में विद्यमान परासरणी पदार्थों द्वारा प्रयासित दाब इससे भी अधिक होता है, और चरम सीमाओं की अवस्था में--उदाहरणार्थ कुछ मरुस्थली पौधों में, जो शुष्क मिट्टी में पानी दुर्लभ देखते है, और तीव्र धूप में जल को शरीर में रोक सकना भी कठिन पाते हैं, यह १०० वायुमंडल तक, अर्थात् प्रति वर्ग इंच तीन चौथाई टन (१५०० पौंड) के बराबर हो सकता है।

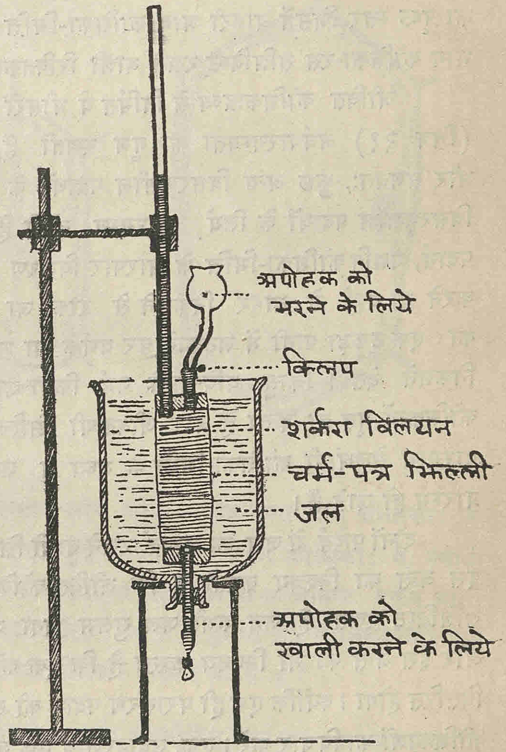

चित्र २०--पाठ सामग्री में वर्णित रसाकर्षक उपकरण।

इन तथ्यों की दृष्टि से वनस्पति कोशिका एक नवीन अभिरुचि प्राप्त करती है। यह चर्म-पत्र झिल्ली उपकरण से अधिक सूक्ष्मतः तथा विविधतः आयोजित विलक्षण शक्ति का परासरण उपकरण है, किन्तु समरूप विधि से ही कार्यान्वित होता है।

कोशिका की जीवित सीमा भित्ति परासरणी झिल्ली है और कोशिका रस परासरणी पदार्थों का संग्रहालय है।

लेकिन पादप कोशिका की परासरणी झिल्ली, जैसा कि उम्मीद की जाती है, किसी भी कृत्रिम अर्धपारगम्य झिल्ली से अधिक जटिल है। इसमें अनेक भाग होते हैं, जिनमें से प्रत्येक के विभिन्न परासरण गुण होते हैं : सेलुलोस की कोशिका-भित्ति जो कदाचित् चर्म-पत्र झिल्ली के समान मानी जा सकती है और उसकी तरह जल तथा अन्य विसरणशील पदार्थों द्वारा पारगम्य होता है; और कोशिकाद्रव्य का पृष्ठ स्तर जिसमें बाहरी भाग कोशिका-भित्ति को स्तरित करता है और भीतरी भाग कोशिका-रस सन्निविष्ट रखने वाली रिक्तिका या अवकाश को आबद्ध करता है।

जीवित कोशिकाद्रव्य से निर्मित ये भीतरी और बाहरी जीवद्रव्यी झिल्लियाँ (चित्र २१) अर्धपारगम्यता का गुण रखती हैं, जिससे जहाँ ये जल के अणुओं और संभवतः, कुछ अन्य विसरणशील पदार्थों के लिये पारगम्य होती हैं वहाँ अन्य विसरणशील पदार्थों के लिये अपारगम्य होती हैं। उनके गुण की बलिहारी है कि पदार्थ, यद्यपि कोशिका-भित्ति के आरपार विसरण में समर्थ होता है, कोशिका में प्रवेश करने या वहाँ से बाहर निकलने से रोका जा सकता है। लाल शर्करा चुकंदर का एक टुकड़ा पानी में लटकाने पर वर्णक या शर्करा में से किसी को बाहर नहीं निकलने देता। किन्तु यदि पानी गर्म किया जाय तो एक समय ऐसा आता है जब कोशिकायें मृत हो जाती हैं और जीवद्रव्यी झिल्लियाँ नष्ट हो जाती हैं। उस समय पारगम्य सेलुलोसी कोशिका-भित्ति के मध्य से शर्करा और वर्णक विसरण होना प्रारम्भ हो जाते हैं।

दोनों पार्श्व में जल का सम्पर्क रखने वाली झिल्ली द्वारा निर्मित परासरणी प्रणाली इस बात का निश्चय करती है कि जीवित-कोशिका, जिसका रस परासरणी पदार्थ सन्निविष्ट रखता है, जब कभी जल सुलभ होगा उसे अवशोषित करने में समर्थ होगा, और इस बात का भी निश्चय करता है कि एक कोशिका द्वारा अवशोषित जल सबको वितरित होगा। क्योंकि एक ही परासरण पदार्थ की समान मात्रा रखने वाली दो सन्निकट कोशिकाओं का विचार करें। एक, उदाहरणार्थ एक मूल-रोम कोशिका (चित्र १४) मिट्टी के जल के सम्पर्क में है। यदि मूल-रोम कोशिका का परासरण दाब मिट्टी के विलयन के खनिज पदार्थों से अधिक है, तो जल का अवशोषण होता है। मूल-रोम कोशिका आयतन में वृद्धि करती है। इसकी कोशिका-भित्तियाँ फैल जाती हैं, और परासरण दाब द्वारा फैली रहती हैं। एक दिशा में प्रयुक्त दाब एक ही समय दूसरी दिशा में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है, और इस कारण पूर्ण प्रसारित स्फीत-कोशिका में

सन्निविष्ट जल उससे परासरणी पदार्थ सन्निविष्ट रखने वाली निकटवर्ती दूसरी कोशिका में, जिसमें जल पूर्णतः प्रदान न किया जा सका हो, सरलतया प्रवेश कर सकता है। किन्तु अपने पड़ोसी के प्रति जल लुप्त करती हुई मूल-रोम कोशिका आयतन में क्षीण होती है, और अपनी भित्ति शिथिल कर देती है और मिट्टी से जल के अवशोषण में परासरण दाब प्रयुक्त करने के लिये परासरणी पदार्थ पुनः स्वतंत्र हो जाते हैं :

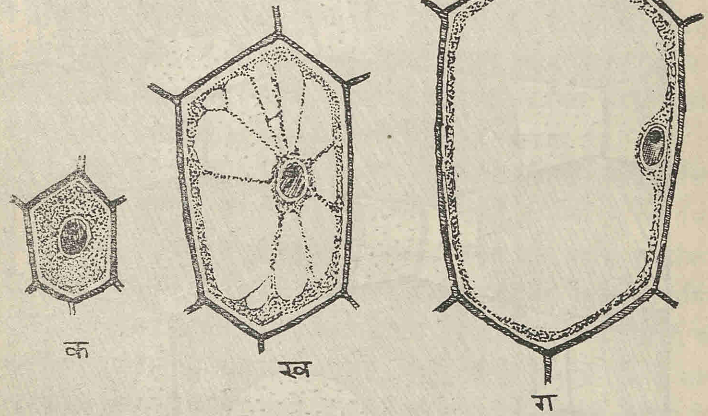

चित्र २१—क, केन्द्रीय केन्द्रक और कोशिकाद्रव्य युक्त शिशु कोशिका; ख, रिक्तिका युक्त कोशिकाद्रव्य प्रकट करती हुई अधिक आयु-प्राप्त कोशिका; ग, स्थायी केन्द्रक युक्त प्रौढ़ कोशिका, जिसमें कोशिकाद्रव्य कोशिकारस सन्निविष्ट रखने वाली दीर्घ रिक्तिका को घेरने वाले परिधीय स्तर रूप में प्र ह्लसित है : कोशिकाद्रव्यी स्तर के बाहरी तथा भीतरी पृष्ठ जीवद्रव्यी झिल्ली निर्मित करते हैं।

इस प्रकार पौधे की प्रत्येक कोशिका मूल द्वारा अवशोषित जल का भाग प्राप्त करती है। परासरणतः अवशोषित जल द्वारा तनी और कसी हुई, पूर्ण प्रसारित स्फीत कोशिका में जल अवशोषित करने या परासरण दाब प्रयासित करने में समर्थ किसी पड़ोसी कोशिका द्वारा जल का खिंचाव रोकने की क्षमता नहीं होती क्योंकि स्फीत अवस्था में कोशिका का परासरण दाब भित्तियों को तनाव में रखने में पूर्णतः व्यस्त रहता है।

स्फीत कोशिका तथा स्फीत कोशिकाओं से निर्मित ऊतक, जीवित स्वस्थ पौधों का संलक्षण, नम्य दृढ़ता प्रदर्शित करते हैं। जल से वंचित रह कर कोशिकाएँ

जीवद्रव्यकुंची (plasmolysed) हो जाती है (चित्र २२), अर्थात् वे आयतन में क्षीण हो जाती हैं, उनकी भित्तियाँ दृढ़ता खो देती हैं, और कोशिका या ऊतक मुरझा जाता है, और पिलपिला हो जाता है। ककड़ी के टुकड़े ताजे कटे होने पर स्फीत और चिमड़े होते हैं, और फलतः अपाच्य होते हैं; परासरणी पदार्थ, उदाहरणार्थ नमक को उनके तह पर छिड़कने पर पानी छूटने लगता है और वे नर्म हो जाते हैं; और यह भी

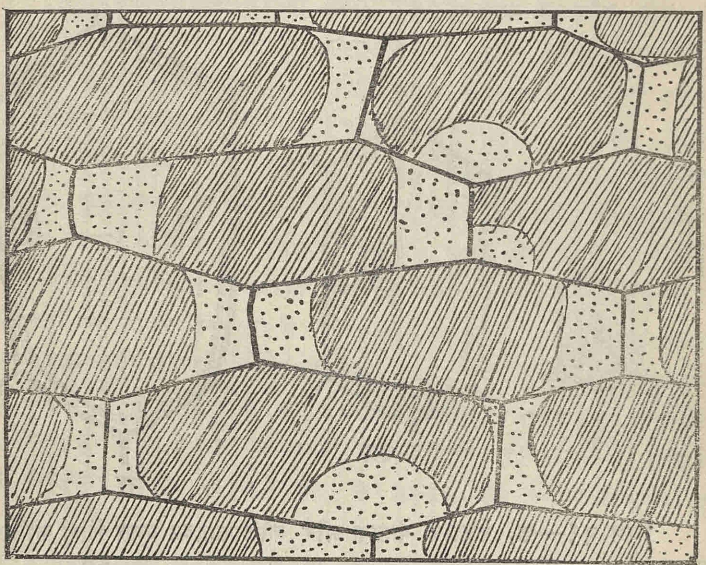

चित्र २२--पोटैशियम नाइट्रेट के १ विलयन में १५ मिनिट तक निमज्जित करने के बाद ट्रेडेस्कैन्शिया डिसकलर के पर्ण के निम्न बाह्यत्वचा की जीवद्रव्यकुंची कोशिका का आरेख। काली रेखाएं कोशिका-भित्तियों को प्रदर्शित करती है और रेखाच्छादित स्थान कोशिकाद्रव्य को जो रिक्तिका से जल के बहिःपरासरण के कारण कोशिका-भित्ति से संकुंचित हो रहा है।

कहा जा सकता है कि अल्प अपाच्य हो जाते हैं। यह कोशिकाओं की स्फीति का ही अधिकांशतः फल होता है कि तरुण पौधे अपनी आकृति स्थिर रखने और बाहर से किसी अवरोध का दबाव रोकने की शक्ति रखते हैं। नवोदभिद कठोर भूमि में अपना मार्ग निकाल लेते हैं, अपने को खड़ा रखते हैं, और केवल एक बहुत दुर्बल काष्ठीय कंकाल से अधिक कुछ बना सकने के पूर्व अपनी पत्तियाँ फैलाते हैं, और ऐसे पौधों के

मूल, जैसे ऊँट कटीरा, उष्ण देशों में प्रबल रूप से वृद्धि कर कुछ अवसरों पर रेल की पटरी को उठा और टेढ़ी कर देते हैं, जिसके नीचे वे वृद्धि करते हैं।

पौधे की परासरण पद्धति खाद्य-पदार्थ के परिवहन के ढंग से स्पष्ट सम्बन्ध रखती है। इसकी कार्य प्रणाली इंगित करती है कि पौधे की परिवहन पद्धति इस अर्थ में द्रवचालित (hydraulic) होती है कि सब परिवहन कार्य जल द्वारा संचालित होता है और सब खाद्य-पदार्थ जो स्थानान्तरित होते हैं, विलेय और विसरणशील रूप में यात्रा करते हैं। मंड--जो ठोस दानेदार और अविलेय होता है, संग्रह के लिये यथेष्ट उत्तम होता है, किन्तु विलेय, विसरणशील शर्करा समान पदार्थ के रूप में हरी पत्ती में संश्लेषित कार्बोहाइड्रेट पौधे के शेष भाग में पहुँचते हैं। इसी प्रकार नाइट्रोजनी खाद्य पदार्थों की बात भी है: यदि उन्हें पौधे के एक भाग से दूसरे भाग में परिवाहित होना है, तो वह अविसरणशील प्रोटीनों के रूपों में कदाचित् ही हो सकता है, बल्कि विलेय और विसरणशील एमीनो अम्ल रूप में हो सकता है।

वे पदार्थ जो जल के साथ रासायनिक रूप में प्रतिक्रिया नहीं करते, लेकिन उसकी विद्यमानता में अवस्था का परिवर्तन प्रदर्शित करते हैं, दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं एक, क्रिस्टलाभ (crystalloids), जिसमें ऐसे पदार्थ सन्निविष्ट होते हैं, जो शर्करा के समान पानी के साथ सत्य और विसरणशील विलयन निर्मित करते हैं। दूसरा, कोलॉइड (colloids), जिसमें ऐसे पदार्थ सन्निविष्ट होते हैं, जो मंडों, सेलूलोसों और प्रोटीनों के समान ऐसे संलक्षण युक्त होते हैं जिनमें जल के साथ सत्य विलयन निर्मित करने की शक्ति नहीं होती; यह सत्य है कि उनमें से कुछ ऐसे गुण रखते हैं जो क्रिस्टलाभ के निकटवर्ती होते हैं, उदाहरणार्थ, पानी के साथ स्पष्ट विलयन निर्मित करते हैं, किन्तु वे भी अपने व्यवहार के कारण सत्य क्रिस्टलाभ से पृथक् किये जा सकते हैं। क्योंकि, एक ही पदार्थ दोनों रूपों में रह सकता है, उसे क्रिस्टलाभ और कोलॉइड नाम से नहीं पुकारा जाता, बल्कि क्रिस्टलाभ और कोलॉइड अवस्था का कहा जाता है।

कोलॉइड कई प्रकार के होते हैं। कुछ पायसाभ (emulsoid) होते हैं जिसका एक उदाहरण दूध उपस्थित करता है। वे द्रव माध्यम में बिलंबित सूक्ष्म विस्तार के द्रव कणों से सन्निविष्ट होते हैं। दूसरे निलम्बाभ (suspensoid) होते हैं जो द्रव माध्यम में एकसमान सर्वत्र परिक्षेपित सूक्ष्म ठोस कणों रूप में होते हैं, और विभाजन की ऐसी सूक्ष्म अवस्था में होते हैं कि वे निलंबन (suspension) में पड़े रहते हैं, और नीचे बैठ नहीं जाते। पुनः दूसरे, उदाहरणार्थ, मंड और कदाचित् चिकनी मिट्टी, जल अंतःशोषित कर सकने की अपनी शक्ति के कारण उसके साथ

कोलॉइडी विलयन निर्मित करते हैं, जिसमें कोलॉइड अपने अंतःशोषित जल तथा ठोस से निर्मित सूक्ष्म अर्ध-ठोस कणों के रूप में द्रव माध्यम में परिक्षेपित रहता है। तथापि अन्य कोलॉइडी पदार्थ, स्याही सोख कागज (सेलुलोस), आदि, यद्यपि वे ठोस रूप स्थिर रख सकते हैं, जल को अंतःशोषित करने और उसके साथ फूल जाने से अपने कोलॉइडी गुण को प्रदर्शित करते हैं।

कोलॉइडी विलयन के द्रव में सर्वत्र कणों के परिक्षेपण का एकमात्र कारण कणों की सूक्ष्मता नहीं कही जा सकती। प्रत्येक सूक्ष्म निलंबित संहति एकसमान चिह्न का वैद्युत चार्ज—धन या ऋण—धारण करता है। एकसमान चार्जयुक्त (charged) कण एक दूसरे को प्रतिकर्षित (repel) करते हैं, और इसलिये जिस प्रकार एक एकत्रित भीड़ एक खुले द्वार के मध्य निकलने में असीम समय लगाती है, इसी प्रकार सतत और परस्पर एक दूसरे से प्रतिकर्षित कण उछलकूद जारी रखते हैं, और जलीय माध्यम में निलंबित तथा परिक्षेपित रहते हैं। किन्तु कण जो वैद्युत चार्ज धारण किये रहते हैं उसके उदासीनीकरण (neutralisation) प्रस्तुत करने द्वारा उन्हें स्थिर किया जा सकता है। विपरीत चार्जयुक्त कण दूसरे कोलॉइड के मिलाने से कोलॉइड का स्थिरीकरण या अवक्षेपण (precipitation) किया जा सकता है: या एक क्रिस्टलाभ के मिलाने से, जो जल में विलीन करने पर कोलॉइड के विपरीत चिह्न का चार्ज वहन करने वाले आयन की मुक्ति के साथ अणु वियोजन (dissociation) कार्यान्वित करता है। सल्फेट आफ अमोनिया की विद्यमानता में निश्चित प्रोटीनों का व्यवहार पश्चात वर्णित विधि का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार ऐल्बूमिन जो अंडे की सफेदी में निहित एक प्रोटीन है, एक स्पष्ट अविसरणशील विलयन निर्मित करने के लिये जल में विलीन होता है, किन्तु यदि विलयन अमोनियम सल्फेट से संतृप्त हो तो, न तो लवण और न प्रोटीन ही स्थायी रासायनिक परिवर्तन करता है, ऐल्बूमिन अवक्षेपित हो जाता है।

जो भी व्यक्ति अंडा उबालता है, इस बात से अपने को संतुष्ट कर सकता है कि प्रोटीन की कोलॉइडी अवस्था ऊष्मा द्वारा स्थायी रूप से परिवर्तित की जा सकती है। अंडे की सफेदी, जिसमें साधारण प्रोटीन, मुख्यतः ऐल्बूमिन और ग्लोबूलिन युक्त जल निहित होता है, ऊष्मा द्वारा स्कंदित (coagulated) हो जाता है। निलंबित कणों द्वारा वहन किये वैद्युत चार्ज के उदासीनीकरण द्वारा कोलॉइडी अवस्था के अल्प प्रबल रूपान्तर का दूसरा उदाहरण जल में चिकनी मिट्टी के निलंबन के व्यवहार द्वारा उपलब्ध होती है। चिकनी मिट्टी जल के साथ मिलाने पर, जब भारी कण जम गये होते हैं, तो एक दूधिया कोलॉइडी विलयन छोड़ देता है जिसके मध्य जल से अंतःशोषित

अत्यंत सूक्ष्म चिकनी मिट्टी के कण परिक्षेपित रहते हैं। इस अवस्था में यह सप्ताहों तक स्थिर रह सकता है। किन्तु चूने का पानी डालने से दूधियापन शीघ्र मिट जाता है। चिकनी मिट्टी के कणों और चूने के पानी के कैल्सियम आयनों द्वारा संवाहित विपरीत चिह्नों के वैद्युत चार्ज एक दूसरे का उदासीनीकरण कर देते हैं। चिकनी मिट्टी के कण अब एक दूसरे को प्रतिकर्षित नहीं करते, बल्कि संलग्न रहते हैं। जलीय चिकनी मिट्टी के कण के उर्णी (flocculent) पुंज निर्मित होते हैं और जल्दी नीचे बैठ जाते हैं। भारी चिकनी मिट्टी में चूना मिश्रित करने से, जो इस विधि से अनुक्रिया करते हैं, चिपचिपापन दूर हो जाता है, और जो भूमि खेती की तैयारी के लिये कठिन होती है, औजारों और बूटों में चिकने ढेले चिपक जाते हैं, जोतने के लिये चार घोड़ों की आवश्यकता होती है, वह भूमि कृषिकर्म के लिये सुगम हो जाती है, उसका चिपचिपापन मिट जाता है, एक जोड़ घोड़े ही जोतने के लिये पर्याप्त होते हैं। समुद्र के जल के लवण भी चूने के समान प्रभाव उत्पन्न करते हैं। नदी का जल निलंबन रूप में चिकनी मिट्टी के कण संवाहित कर जहाँ समुद्र से संगम करता है, अपने को गिरा देता है और डेल्टा निर्मित करता है।

ऊष्मा, यदि यथेष्ट भीषण हो, तो चिकनी मिट्टी की कोलॉइडी अवस्था को सदा के लिये विनष्ट कर देती है। वर्षा में गारा बनने और शुष्क मौसम में ईंट की तरह कठोर होने के स्थान पर चिकनी मिट्टी की भूमि, यदि पूर्णतः दग्ध हो जाय तो चूर्ण की अवस्था में छिन्न हो जाती हैं।

चिकनी मिट्टी और अन्य कोलॉइड जिनमें वे भी अनेक सम्मिलित हैं जो पौधे में पाये जाते हैं, एक दूसरा गुण —अधिशोषण (adsorption)—प्रदर्शित करते हैं जो कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। स्याही सोख कागज के टुकड़े रंगों के विलयन की श्रृंखला में एक-एक डुबोने से अधिशोषण प्रदर्शित किया जा सकता है। कुछ रंगों के धब्बे स्याहीसोख के टुकड़े ग्रहण नहीं करते, किन्तु अन्य रंग उन पर प्रगाढ़ चढ़ते हैं। पिछली अवस्थाओं में रंग के कोलॉइडी कण स्याही सोख के कोलॉइडी तलों द्वारा अधिशोषित हो जाते हैं। इसका कारण कदाचित यह है कि वे स्याही सोख कागज के सघन आबद्ध कणों द्वारा संवाहित वैद्युत चार्ज से विपरीत चार्ज संवाहित करते रहते हैं। इस प्रकार अपने कोलॉइडी गुण के कारण कागज इतना अधिक रंग चुन लेता है और संग्रह कर लेता है कि यह जिस विलयन में डुबोया गया होता है उस विलयन से अधिक प्रगाढ़ रंग का हो जाता है: कोलॉइडी कागज और कोलॉइड रंग संयुक्त रूप में एक अधिशोषण यौगिक निर्मित करते हैं। एक लम्बी काँच नलिका में मिट्टी भरे होने पर उसमें सल्फेट आफ अमोनिया का तनु विलयन उड़ेलने द्वारा भी अधिशोषण प्रदर्शित किया

जा सकता है। जो द्रव बाहर निकलता है उसमें उस पदार्थ का कोई अंश नहीं रहता। सल्फेट आफ अमोनिया मिट्टी के कोलॉइडी कणों द्वारा अधिशोषित कर लिया गया। इसके विपक्ष नाइट्रेट आफ सोडा का विलयन नलिका के मध्य से अपरिवर्तित ही बाहर निकल आता है: अतएव वर्षा जल के रिसने की क्रिया द्वारा मिट्टी के नाइट्रेट की क्षति होती है।

अधिशोषण की शक्ति निस्संदेह ही पौधे में निहित कोलॉइडी वस्तुओं द्वारा प्रयासित होती हैं। यह इस तथ्य से प्रकट होता है कि कोशिका के विभिन्न भाग विभिन्नतः रंग ग्रहण करते हैं, और फलतः एक से अधिक रंग प्रयुक्त कर पौधे की कोशिका को इस प्रकार अभिरंजित करना है कि उसके अनेक भाग एक दूसरे से पृथक् पहचाने जा सकें—केन्द्रक एक रंग का, कोशिक द्रव्य दूसरे रंग का, कोशिका-भित्ति किसी अन्य रंग की; क्योंकि मृत ऊतकों में भी इन जटिल कोलॉइडों में से प्रत्येक अधिशोषण की अपनी निजी पृथक् शक्ति रखते हैं।

इस प्रकार के तथ्य इस बात की कल्पना करना कठिन नहीं बनाते कि जीवित जीवद्रव्य द्वारा व्यवहृत अधिशोषण कोशिका को जो खाद्य-पदार्थ या अन्य पदार्थ उन तक पहुँच सकते हों उनका प्रयोग करने के लिये चुन सकने तथा ग्रहण कर सकने का साधन प्रदान करते हैं। और न यह विश्वास करना ही कठिन है कि ऐसी परिवर्तनशील और जटिल वस्तु जैसे जीवद्रव्य, के साथ अधिशोषण की शक्ति उसकी परिवर्तनीय अवस्था के साथ विभिन्न हो सकती है, जिससे एक और वही पदार्थ ही कभी अधिशोषण द्वारा दृढ़तापूर्वक धारण किया जा सकता है और कभी बिल्कुल ही धारण नहीं किया जा सकता, वह जल परिवहन द्वारा किसी अन्य कोशिका तक गति कर सकने के लिये युक्त हो सकता है जिसको उसकी आवश्यकता होती है और जो उसे अधिशोषित कर सकती है। अधिशोषण की ऐसी वरणात्मक (selective) शक्ति जिसमें उसे परित्यक्त करने की भी शक्ति हो, पौधे के लिये बहुत अनुकूल हो सकती है। भविष्य में, पौधे के जीवन पर पुस्तकें अपने अधिकांश पृष्ठों को उच्चतर कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन, पर्णहरित, और जीवद्रव्य के कोलॉइडी गुण की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में प्रयुक्त करेंगी, किन्तु वर्तमान समय में ज्ञान की यह शाखा, जिसकी महान वृद्धि हो चुकी है, अधिशोषण या उत्सर्जन की शक्ति, अर्थात् इस या उस पदार्थ को ग्रहण कर सकने या उत्सर्जित करने की शक्ति, के सम्बन्ध में जीवित कोशिका के व्यवहार की व्याख्या के सुझावात्मक संकेतों से कुछ अधिक व्यक्त करने के लिये जैविकी में यथेष्ट प्रयुक्त नहीं हुई है।

फिर भी, यह स्पष्ट है कि मंडों और प्रोटीनों के कोलॉइडी गुण खाद्य-पदार्थ के स्थानांतरण के अध्ययन में सर्वत्र ध्यान में रखने चाहियें। पृ० ९१ पर वर्णित प्रयोग के कोलाइड जिलेटिन पोटाश के विसरण को जितना व्याघात पहुँचाती है, कोलॉइडी जीवद्रव्य को कोशिका-रस के अंतर्गत या बहिर्गत जल या अन्य विसरणशील पदार्थ के परासरण के प्रति उससे अधिक व्याघात पहुँचाने की आवश्यकता नहीं है; और जिस प्रकार अर्धपारगम्य झिल्ली जल का परासरण होने दे सकती है, किन्तु कुछ परासरणी पदार्थों को मध्य से आरपार जाने को अवरुद्ध कर सकती है, उसी प्रकार कोशिका-द्रव्य कर सकता है। किन्तु जहाँ कृत्रिम झिल्ली की अर्धपारगम्यता स्थिर होती है, वहाँ प्राकृतिक झिल्ली की नहीं होती। यद्यपि किसी समय कोशिका की जीवद्रव्यी झिल्ली विलेय या विसरणशील पदार्थ का बहिर्गमन या अंतर्गमन अवरुद्ध कर सकती है दूसरे समय झिल्ली उसे मार्ग प्रदान कर सकती है। तरुण चुकन्दर की जड़की कोशिकाएं इक्षु-शर्करा की प्रचुरता युक्त होती हैं, और फ्रक्टोस की अत्यल्प या बिलकुल मात्रा नहीं रख सकतीं; तथापि संग्रह में अधिक समय रखे चुकंदर में अधिक फ्रक्टोस होता है। यह बात प्रतीत होगी कि संग्रह काल में जीवद्रव्य की पारगम्यता परिवर्तित होती है, और इक्षु-शर्करा को अपवृत करने में समर्थ कोशिका के कारक, किन्तु पूर्व समय में उसके सम्पर्क से दूर किये होने के कारण, अब वे सम्पर्क में आते हैं, और शर्करा को ग्लूकोस तथा फ्रक्टोस रूप में जल-अपघटित करते हैं। इसी प्रकार अपने कोलॉइडी गुण-धर्म के कारण कोशिका, यद्यपि वह सूक्ष्म हो सकती है, तथापि इस प्रकार व्यवहार कर सकती है, मानो यह कोई कारखाना या कारखानों का नगर हो जिसके भागों में विविध तथा विपरीत प्रकार के कार्य भी संचालित होते हैं; यहाँ पर एक भवन निर्मित हो रहा है, और वहीं दूसरा धराशायी किया जा रहा है; एक भाग में खाद्य-निर्मित हो रहा है, दूसरे में रवाना किया जा रहा है, और तीसरे में गृही द्वारा स्वीकृत किया जा रहा है। एक वनस्पति-कोशिका के कोलॉइडी कोशिकाद्रव्य की कल्पना करें जो सूक्ष्मदर्शीयतः मधु-मक्खी के छत्ते की भाँति निर्मित हो, प्रत्येक कोष्ठ दूसरे से मत-मोम द्वारा नहीं, बल्कि जीवित कोशिकाद्रव्य द्वारा पृथकीकृत हो। पारगम्यता की शक्ति और विभिन्न कोशिकाद्रव्यी विभाजनों के अधिशोषण की व्यवस्था से एक ही कोशिका एक ही समय निर्माण और संहार तथा खाद्य-पदार्थ के निर्माण, स्थानांतरण और अवशोषण के कार्य संचालित रख सकती है।

कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन के भौतिक गुण का अध्ययन प्रकट करता है कि पौधे में पदार्थ के इन वर्गों में से प्रत्येक जिन दोनों विकल्पीय रूपों में पाये जाते हैं, उनमें एक संग्रह के उपयुक्त और दूसरा स्थानांतरण के उपयुक्त होता है। यह भी प्रदर्शित

किया गया है कि पौधा एक रूप को दूसरे में परिवर्तित करता है, उदाहरणार्थ मंड को शर्करा में और पुनः उसे मंड रूप में परिवर्तित करता है। इस कारण इसे तथा इसी प्रकार के परिवर्तनों की प्रकृति तथा कारक के शोध करने की आवश्यकता है।

शर्करा का मंड रूप में निर्माण या स्यूक्रोस को अपवृत करने में व्यवहृत ऐसे परिवर्तन जीवित पौधे या जन्तु से बाहर प्रबल अभिकर्मक द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। स्यूक्रोस की कोई बड़ी मात्रा ग्लूकोस और फ्रक्टोस में परिवर्तित करने के लिये विलयन देर तक और प्रचंडतया उबाले जाने चाहिये, और मंड से ग्लूकोस उत्पादित करने के लिये ऊष्मा और प्रबल अभिकर्मक (reagents) दोनों की आवश्यकता होती है। तथापि पौधे इनको तथा ऐसे ही कार्यों को तीव्रतया तथा उच्च ताप की सहायता के बिना ही सम्पादित कर लेते हैं। अनेक रासायनिक परिवर्तनों को पौधा जिस विधि से कार्यान्वित करता है, उसका संकेत इस तथ्य से प्राप्त हो सकता है कि एक खनिज अम्ल जैसे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का विरल संयुक्त करने से उबलते पानी द्वारा इक्षु-शर्करा का अपवृतकरण (inversion) विलक्षण विधि से तीव्र हो जाता है। यह कल्पना की जा सकती है कि अम्ल जो प्रबल अभिकर्मक है, किसी रासायनिक क्रिया द्वारा तीव्रकारी प्रभाव उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ, खरिया मिट्टी में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के एक बूंद का संयोग प्रबल बुदबुदन (effervescence) करता है और कैल्सियम क्लोराइड की रचना इस प्रकार करता है :—

$$2HCl + CaCO_3 = CaCl_2 + H_2O + CO_2$$

इस तरह यह अनुमान किया जा सकता है कि अम्ल शर्करा के स्थाई-सम्मिलन में प्रविष्ट होता है। तथ्य रूप में ऐसा नहीं होता। केवल विरल मात्र स्यूक्रोस के अपवर्तन को तीव्रगामी बनाने में पर्याप्त होता है और अम्ल इस प्रक्रम में अपघटित नहीं होता। इसका कार्य परिवर्तन का सूत्रपात करना नहीं, बल्कि तीव्रगामी करना होता है। इस तथ्य को व्यक्त करने के लिये अम्ल उत्प्रेरणतः व्यवहार करना कहा जाता है—शिथिलतः भाग लेता है, किन्तु रासायनिक परिवर्तन में स्थाई रूप से प्रविष्ट नहीं होता।

इसी प्रकार के गुण के काय पौधों में होते हैं। इनमें प्रत्येक सक्रियकारक (activator) होता है, किन्तु साधारण रूप के रासायनिक परिवर्तन का नहीं, बल्कि एक विशिष्ट रासायनिक परिवर्तन का। पौधे के ये उत्प्रेरक (catalytic) कारक एन्जाइम कहलाते हैं, और जब कभी खाद्य-पदार्थों के परिवर्तन कार्यान्वित होते हैं, इनकी विद्यमानता आविष्कृत की जा सकती है। उदाहरणार्थ कुचला हुआ चुकंदर जब ऐल्कोहॉल से उपचारित होता है, तो एक अवक्षेप उत्पन्न करता है, जो स्यूक्रोस

के अपवर्तन को तीव्रगामी करने की विलक्षण शक्ति रखने वाला एक कोलॉइडी विलयन निर्मित करने के लिये जल में विलयित होता है। यह उत्प्रेरक इन्वर्टेस कहलाता है। इसका अत्यन्त अल्प भाग स्यूक्रोस की दीर्घ मात्रा के जल-अपघटन के लिये पर्याप्त होता है। किन्तु शर्करा का विलयन जिसमें यह सम्मिलित किया गया रहता है, कदापि गर्म न करना चाहिये; क्योंकि एन्जाइम प्रोटीन की भाँति ऊष्मा के प्रति इतने संवेदनशील होते हैं कि वे जल के क्वथनांक के बहुत नीचे ही मृत हो जाते हैं, और साधारणतया जिस ताप पर स्वयं पौधा नष्ट हो जाता है, उसके कुछ अंश कम अधिक ताप पर ही मृत हो जाते हैं।

एन्जाइम के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात होने के बहुत पहले उद्योग उसके उपयोग करने का अभ्यस्त था। जौ की शराब का निर्माता सौ वर्षों से भी पहले से जौ का उपयोग अपने लाभ के लिये मंड को शर्करा रूप में परिवर्तित करने, और वह कार्य कर चुकने पर अन्य पौधे यीस्ट का उपयोग शर्करा को ऐल्कोहॉल रूप में परिवर्तित करने के लिये करता आया है। ये दोनों कार्य एन्जाइम द्वारा कार्यान्वित होते हैं। जौ की मदिरा बनाने में, दाने में ज्यों ही अंकुर निकलने लगते हैं; मदिरा निर्माणशाला की फर्श का ताप इतना ऊँचा कर दिया जाता है जो दाने को मृत करने के केवल पर्याप्त होता है। एन्जाइम या एन्जाइमस (डायास्टेस), क्योंकि इसके एक से अधिक प्रकार होते हैं, मृत नहीं होते, बल्कि मंड को माल्टोज, रूप में जल अपघटित करने के लिये जीवित रहते हैं।

इन्वर्टेस के लिये प्रयुक्त विधि से ही डायास्टेस भी निष्कर्षित किया जा सकता है और परखनली में मंड के शर्करा रूप में रूपान्तर तीव्र करने के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। डायास्टेस का विलयन सत्य विलयन नहीं होता। चर्म-पत्र नलिका में रखे जाने पर डायास्टेस जल के बाहर विसरित नहीं करता। इसी प्रकार यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि एन्जाइम प्रायः कोलॉइडी प्रकृति के होते हैं। एन्जाइम क्रिया का मार्ग और गति इक्षु शर्करा के विलयन में इन्वर्टेस सम्मिलित करने और द्रव का नमूना, समय समय पर ध्रुवणमापी से परीक्षित करने से अनुसरित की जा सकती है। इन साधनों द्वारा यह ज्ञात होता है कि जब परखनली में प्रतिक्रिया कार्यान्वित होती है तो परिवर्तन की गति, यद्यपि पहले तीव्र होती है, क्रमशः उस समय तक मन्द होती रहती है जब तक कि अन्ततः यह इतनी मन्द नहीं हो जाती कि दीर्घकाल तक प्रतिक्रिया कार्यान्वित रहने पर भी कुछ स्यूक्रोस अवशेष रह जाता है। यह और भी विस्मयजनक है कि स्वयं एन्जाइम नष्ट नहीं हुआ रहता बल्कि विद्यमान ही रहता है।

इसी प्रकार का मन्दीकरण अन्य एन्जाइम क्रिया द्वारा प्रदर्शित होता है, जैसे उदाहरणार्थ डायास्टेस द्वारा मंड का जल-अपघटन। किन्तु यदि विलयन रूप में डायास्टेस की समान मात्रा समान मात्रा के मंड विलयन में सम्मिलित की जाती है, जिसमें एक गुट काँच नलिका में हो, और दूसरा गुट दीर्घ मात्रा के पानी में डूबी हुई चर्म-पत्र नलिका में हो, तो अजल-अपघटित रूप में अवशिष्ट मंड की मात्रा द्वारा मापित अन्त उत्पाद दोनों अवस्थाओं में बहुत विभिन्न होते हैं। काँच नलिका में जल-अपघटन अवरुद्ध हो सकता है, जबकि मंड बचा ही रहता है, किन्तु चर्म-पत्र नलिका में यह उस समय तक संचालित रहता है, जब तक कि सब मंड जल-अपघटित नहीं हो जाता। तथापि इन प्रयोगों में एकमात्र भेद इस तथ्य में ही है कि जहाँ शर्करा चर्मपत्र के मध्य से विसरित होती है, वहाँ काँच नलिका में पड़ी रहती है। किन्तु यह भिन्नता तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिये यथेष्ट है। मंड, जल और डायास्टेस के मध्य प्रतिक्रिया एक संतुलित प्रतिक्रिया है—अर्थात् ऐसी प्रतिक्रिया है जो परिस्थिति के अनुसार एक रूप में या दूसरे रूप में संचालित हो सकती है। जिस प्रकार ऊपर नीचे दोलायमान खेल के पटरे, एक पटरे के एक सिरे पर बढ़ा हुआ भार दूसरे सिरे को नीचे आने से रोकता है, उसी प्रकार एक पार्श्व में शर्करा की ढेरी लगाने से दूसरे पार्श्व पर एन्जाइम की सक्रियता अवरुद्ध होती है।

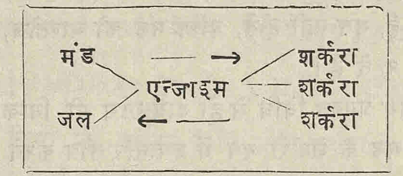

किन्तु जब शर्करा विसरण द्वारा स्थानान्तरित होती है, तो यह संतुलन को विकटतः प्रभावित करना बन्द कर देती है, और एन्जाइम मंड का जल-अपघटन करता रहता है।

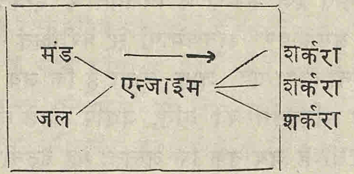

या दूसरे शब्दों में एन्जाइम के कोलॉइडी कण मंड-जल कणों को अवशोषित करते हैं, और जल-अपघटन कणों के तल पर उत्प्रेरणतः प्रभावित होता है; किन्तु एन्जाइम शर्करा भी अधिशोषित करता है, और ऐसा करने में मंड-जल कणों के लिये

अल्प स्थान ही छोड़ता है। जितनी ही अधिक शर्करा उत्पादित होती है, उतनी ही उस समय तक अधिशोषित रहती है जब तक कि, यद्यपि अब भी जल-अपघटन के लिये समर्थ होती है, एन्जाइम कणों द्वारा धारित अधिशोषित शर्करा का बोझ कार्य को संचालित रखने से बन्द नहीं करता। इसके विपक्ष चर्म-पत्र नलिका शर्करा का विसरण होते जाने का अवसर देती है। अतएव, एन्जाइम कणों के लिये अधिशोषण के लिये अल्प ही रहता है, और फलतः वे मंड के जल-अपघटन कार्य को संचालित रखने के लिये अधिक स्वतंत्र रहती हैं।

अन्त उत्पाद के संचय के अतिरिक्त अन्य अवस्थाएं प्रतिक्रिया के दंड को अन्य दिशा में निर्दिष्ट कर सकती हैं; उदाहरणार्थ ताप। सामान्य तापों पर एक प्रसुप्त आलू कंद की अवर्णी लवकों की एन्जाइम द्वारा प्रस्तुत प्रतिक्रिया का संतुलन मंड

मंड $\rightleftarrows$ शर्करा

निर्माण के पक्ष में होता है; किन्तु जब ताप लगभग शून्य अंश तक गिर जाता है, तो संतुलन परिवर्तित होता है और शर्करा निर्माण के पक्ष में हो जाता है—अतएव पाला मारे हुये आलू में मधुरता होती है।

रासायनिक परिवर्तन तीव्रगामी करने में एन्जाइम की क्षमता का कारण समझना सरल नहीं है, किन्तु ऐसा विश्वास करने के कारण हैं कि विलयन रूप में एन्जाइम के कोलॉइडी कणों की सूक्ष्मता उनकी उत्प्रेरक सक्रियता में परमावश्यक कारक हैं। क्योंकि सूक्ष्म संहतियों में विलक्षण शक्ति होती है तथा पदार्थों के पृष्ठों पर ऐसी शक्तियाँ मुक्त होती हैं जो उनकी संहति में व्यवहार्य नहीं होती हैं। जल में डुबोई हुई एक चौड़ी काँच नलिका उसे कुछ विशेष लक्षित अंश में चूषित नहीं करती, किन्तु यदि नलिका पतली हो तो पानी बाहर के बर्तन की अपनी सतह से ऊपर चढ़ता है और उसका पृष्ठ अवतलता (concavity) उत्पन्न करता है जिसके किनारे, जहाँ वे काँच को स्पर्श करते हैं, शेष पृष्ठ पटल से ऊँची हो जाती हैं। पृष्ठ एक पटल या त्वचा निर्मित करता है जो काँच से चिपक जाता है और नीचे के संसक्त जल को ऊपर उठाता है। इस प्रकार व्यक्त शक्ति पृष्ठ-तनाव (surface tension) कहलाती है। नलिका जितनी ही पतली होती है, उस में पानी उतना ही ऊपर उठता है, अर्थात् पृष्ठ तनाव द्वारा प्रयासित खिंचाव उतना ही अधिक होता है। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ पदार्थों के पृष्ठ सम्पर्क में हों, शक्तियाँ संवर्धित हो सकती हैं, और यह भी परिणाम निकाला जा सकता है कि पदार्थ जब अत्यन्त अनुविभाजित

अवस्था में विद्यमान रहता है,--जैसे उदाहरणार्थ एक कोलॉइड रूप में, जिसके कणों के पृष्ठ का योग बहुत विस्तृत होता है, अत्यधिक प्रबल शक्तियों का स्थल होगा। इस प्रकार कदाचित कोलॉइड द्वारा जल के अन्तःशोषण और एन्जाइम की विलक्षण उत्प्रेरक सक्रियता की व्याख्या की जा सकती है।

पौधों और जन्तुओं से निष्कर्षित किये एन्जाइमों की संख्या अत्यधिक है। उनका एक वर्ग मंड जल-अपघटित करता है। वे डायास्टेस या ऐमिलेस है। दूसरा वर्ग--साइटेस--सेलुलोस को जल-अपघपित करते हैं; अन्य वर्ग विभिन्न शर्कराओं को जल-अपघटित करता है, उदाहरणार्थ इन्वर्टेस (स्यूक्रेस) स्यूक्रोस को और माल्टेस माल्ट शर्करा को जल-अपघटित करता है। वसामय बीजों के अंकुरण के काल में निर्मित लाइपेस वसा को जल-अपघटित करते हैं, और अन्य इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण वर्ग प्रोटीन अपघटक एन्जाइम प्रोटीनों को जल-अपघटित करता है। प्रोटीन अपघटक एन्जाइमों में कुछ में अन्यों की अपेक्षा अधिक खंडमय गुण होता है, वे प्रोटीनों को पूर्णतः खंडित कर ऐमीनो अम्ल रूप में कर देते हैं।

प्रोटीन अपघटक एन्जाइम तथा अन्य वर्ग के एन्जाइम पौधों और जन्तुओं के साधारण गुणधर्म हैं। जहाँ कहीं भी खाद्य-पदार्थों का परिवर्तन संचालित रहता है, वहाँ ये विशेषज्ञ तीव्र-कारक पाये जाते हैं। इनमें से प्रत्येक एक विशेष प्रकार का परिवर्तन प्रस्तुत करता है।

इतनी बातें खाद्य-पदार्थों के भौतिक तथा रासायनिक गुणों तथा परिवर्तन की विधियों के सम्बन्ध में जिनके द्वारा निचित खाद्य संचालित तथा एन्जाइम द्वारा पुनः असंचालित होते हैं, अब उस भूमि की बात करना रह गया है जिस पर खाद्य पदार्थ की सामग्री संवाहित होती है।

जहाँ तक सरल पौधों का संबंध है, कुछ भी अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। सबसे सरलतम, एककोशिकी पौधे में, पर्णहरित की सन्निकटता में निर्मित खाद्य-पदार्थ को दूर तक नहीं जाना होता, और विसरण, कोशिकाद्रव्य की गति और अधिशोषण कोशिका काय में उनके वितरण के लिये यथेष्ट होते हैं। उन्हीं कारकों को एक सरल बहुकोशिक पौधे की कोशिकाओं के मध्य, जिनके केवल कुछ भाग ही प्रकाश-संश्लेषण के समर्थ होते हैं, खाद्य-पदार्थ के वितरण की व्याख्या करने के लिये सहायक बनाया जा सकता है। किन्तु जब पादप काय वृद्धि कर बड़ा होता है, और उसका स्वांगीकारक पृष्ठ अधिक स्थानीकृत हो जाता है, तो तीव्र स्थानांतरण की समस्या विकट हो जाती है।

विसरण, जैसा प्रदर्शित किया गया है, एक मन्द प्रक्रम है, और यह विश्वास करना कठिन है कि यह बड़े पौधों के दूर-दूर के भागों तक यथेष्ट शीघ्रता से पर्याप्त खाद्य-पदार्थ प्रदान करने के लिये यथेष्ट होता है। यह समस्या दीर्घकाय समुद्रतलजीवी (benthic) पौधों के समक्ष खड़ी हुई जो समुद्र में उत्पन्न हुये थे, यह वर्तमान दीर्घ समुद्री शैवालों के समक्ष भी है, जिनमें से कुछ किसी भी प्रकार के अन्य पौधे से अधिक लंबे होते हैं, और यह सभी विशाल स्थलीय वनस्पति के संबंध में भी अधिक भीषणतः सम्मुख होती है। समुद्री शैवाल में भी जो बहुत दीर्घ आकार के हो जाते हैं, ऊतकों की संरचना और वितरण प्रकट करते हैं कि खाद्य-पदार्थों के स्थानांतरण की व्यवस्था की गई है। पर्णवत् स्वांगीकारक क्षेत्र से लेकर वृन्त के मध्य होकर बंधक अंग तक, जो समुद्री शैवाल को चट्टान से आबद्ध करता है, दीर्घीकृत कोशिकाओं के विशिष्ट मार्ग प्रसारित होते हैं जिनमें होकर यह माना जा सकता है कि खाद्य-पदार्थ अधिक तीव्र गति से परिवहन कर सके, बजाय उन छोटी कोशिकाओं के जो काय के शेष भाग की रचना करते हैं। क्योंकि, प्रथम स्थान में, अल्पसंख्यक कोशिका झिल्लियाँ ही पार करनी होती हैं; द्वितीय स्थान में कोशिकाद्रव्य की प्रवाही गति, यदि कोई नियमित रूप की हुई, तो अपने मार्ग में खाद्य परिवहन का कार्य करेगी। इन कोशिकाओं में स्वभावतः सक्रिय प्रवाही गति संचालित रहती है या नहीं, यह ज्ञात नहीं है; किन्तु यह ज्ञात है कि पौधे के ऊतक की कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य कभी-कभी सक्रिय गति रूप में तीव्रगामी हो सकते हैं। सूक्ष्मदर्शी के नीचे जीवित कोशिका का दिग्दर्शन करने से जैसा देखा जा सकता है, कोशिकाद्रव्य का अधिक द्रव भाग अपने साथ अनेक दाने धारण कर, कोशिकाद्रव्यी संहति के अल्प द्रव भाग में चक्रण (घूर्णन) करता है। यद्यपि इसका निश्चयीकरण नहीं हो सकता कि खाद्य-पदार्थों का वितरण संचालित करने में कोशिकाद्रव्यी गतियाँ नियमित भाग लेती हैं, किन्तु यह असंभव नहीं है कि कोशिका से कोशिका तक खाद्य-पदार्थ के परिवहन होने के मार्ग में सहायता प्रदान करती हैं।

यह बात चाहे जैसी हो, स्थलीय पौधों के विकास का अनुगमन सुस्पष्ट संवहन वलयकों (vascular strands) के संवर्धन द्वारा हुआ है जिनमें होकर जल और खाद्य-पदार्थ पौधे के एक भाग से दूसरे भाग को परिवहित होते हैं। मौस में, जो स्थलीय पौधों में निम्न पद तथा तुच्छ आकार के होते हैं, कोई भी संवहन वलयक जो निर्मित होते हैं, संवर्धन के उच्च स्तर तक नहीं पहुँचते, लेकिन पर्णांगों, शंकुओं और सामान्य पुष्पी पादपों में जिनके सब वर्गों में ऐसे पौधे भरे हैं जिनमें वृक्षों के विशाल स्वभाव हैं, संवहन वलयक सुस्पष्ट, और विशद तथा विविध रूप की रचनाओं के हैं। उन

सबका वर्णन करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि पुष्पी पौधे की संवहन तंत्र उस विधि का यथेष्ट-प्रदर्शन करती है जिसमें संवहन वलयक लंबी दूरी तक जल और खाद्य-पदार्थों के परिवहन का कार्य करते हैं।

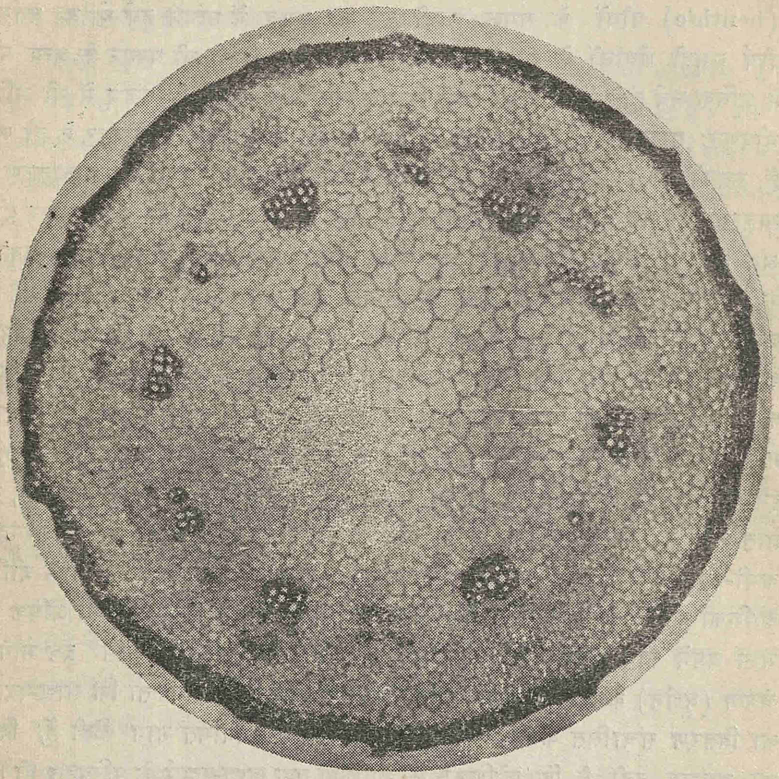

चित्र २३—एक द्विबीजपत्री, सूर्यमुखी के तरुण स्तम्भ का अनुप्रस्थ काट

अनेक प्रकार के पौधों में, जिनमें पुष्पी पौधे भी सम्मिलित हैं, मूल की संवहन प्रणाली स्तंभ से विभिन्न होती हैं, और पुष्पी पौधों में एक बीजपत्री—ताड़, घास, लिली आदि के संवहन वलयक द्विबीजपत्री के वाहिनी वलयकों से विभिन्नता की उल्लेखनीय बातें प्रस्तुत करते हैं। नवोद्भिद द्विबीजपत्री पौधे के स्तंभ की काट ऊतक के तीन क्षेत्र प्रदर्शित करते हैं, जिनमें से प्रत्येक वर्धन-अग्र कोशिका पर कोशिकाओं के स्तर रूप में अनुरेखित किये जा सकते हैं। पृष्ठ क्षेत्र कोशिकाओं के एकल स्तर—बाह्यत्वचा (epidermis) का बना होता है। उसके नीचे वल्कुट (cortex) उन

कोशिकाओं द्वारा निर्मित होती है जो अपने संवर्धन काल में आकृति में अधिक परिवर्तन नहीं कर सकी होती हैं। वल्कुट के अन्तर्गत केन्द्रीय सिलिन्डर (central cylinder) स्थित होता है जो अंशतः शुद्ध कोशिकीय तत्वों और अंशतः संवहन

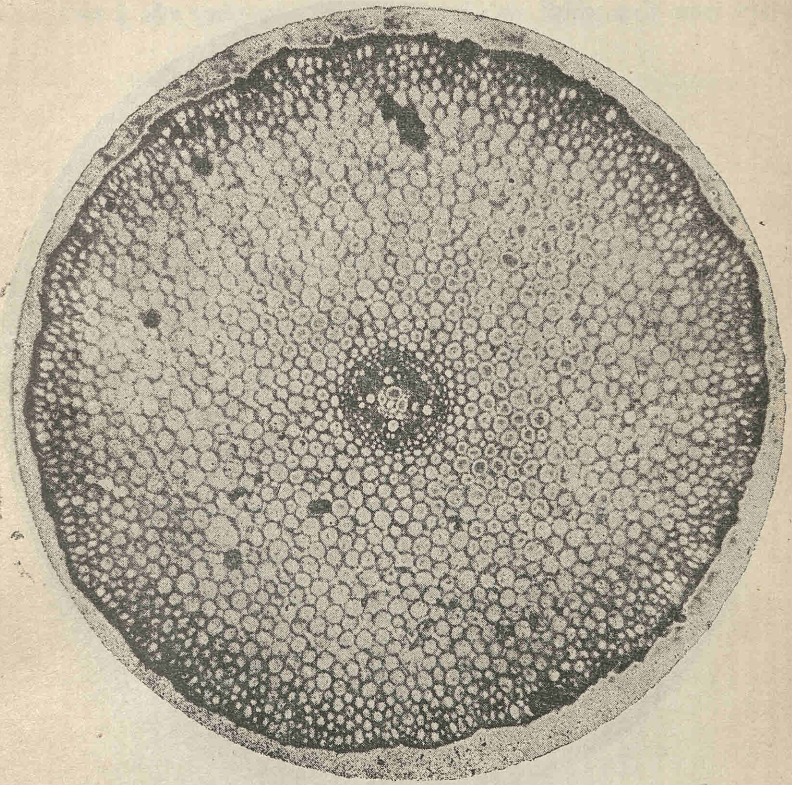

चित्र २४ क—एक द्विबीजपत्री (बटरकप) के तरुण मूल का अनुप्रस्थ काट, जिसमें पृष्ठीय स्तर, वल्कुट और केन्द्रीय सिलिंडर प्रदर्शित है।

वलयकों से निर्मित होता है। संवहन वलयक एक खंडित वलय में स्थित होते हैं जिनमें प्रत्येक अपने निकटवर्ती से कोशिकाओं की संहति से पृथक्कृत होते हैं। वे अपनी रश्मि सदृश आकृति के कारण और इस तथ्य से कि वे मज्जा (medulla) की कोशिकाओं तक प्रसारित और उनसे संयुक्त रहते हैं, उनको मज्जा रश्मि (medullary rays) सरीखा विशद नाम प्राप्त हुआ है। संवहन वलयक निश्चित संख्या के होते हैं और स्तंभ से मूल तक अनुरेखित किये जा सकते हैं जहाँ यद्यपि भिन्नतः अवस्थित

होते हैं, तथापि उनकी समान सारभूत संरचना ही होती है (चित्र २४ क और ख)। वे पार्श्व मूल और शाखाओं तथा पत्तियों तक प्रसारित होते हैं और इस प्रकार पौधे के सब भागों को एक दूसरे के परस्पर संचार में रखते हैं।

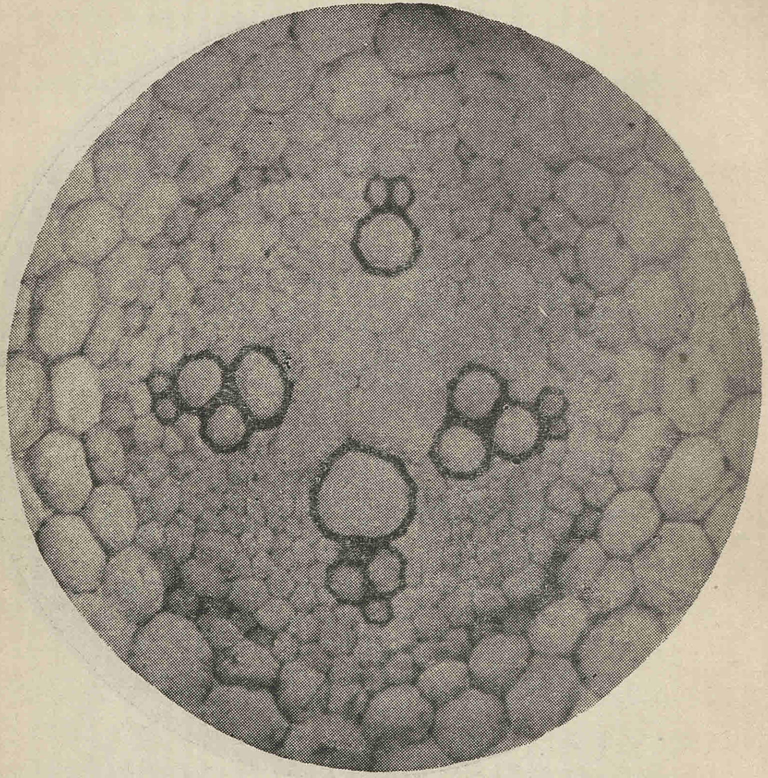

चित्र २४ ख——२४ क के भाग का अत्यधिक आवर्धित रूप, जिसमें दीर्घ कोशिकी वल्कुट के (बाह्य वल्कुट और मूल का पृष्ठीय स्तर प्रदर्शित नहीं है) अनेक स्तरों द्वारा घिरा हुआ केन्द्रीय सिलिन्डर प्रदर्शित है। दारु वलयक, चार की संख्या में, प्रत्येक फ्लोएम वलयक से एकान्तरित है।

यदि तरुण स्तम्भ के स्थान पर कोई प्रौढ़ स्तम्भ, जैसे बड़े द्विबीजपत्री वृक्ष की एक शाखा के अनुप्रस्थ काट को देखा जाय तो एक विलक्षण ही बात दिखाई पड़ती है (चित्र २९, ३०)। वल्कुट में चादर या पट्ट रूप में निर्मित काग (cork) अपने से बाह्यवर्ती बाह्यत्वचा और वल्कुट ऊतकों को काट चुका है। जल

और खाद्य से वंचित होकर ये ऊतक, सूख और सिकुड़ कर मृत छाल (bark) निर्मित करते हैं जो उतने ही अधिक खंडीय और विस्तीर्ण होती है जितनी अधिक गहराई में वल्कुट में काग निर्मित हुआ रहता है। छाल के अन्दर वल्कुट का पतला अवशेष होता है और उसके अन्दर स्तंभ के मुख्य पुंज को निर्मित करने वाला केन्द्रीय

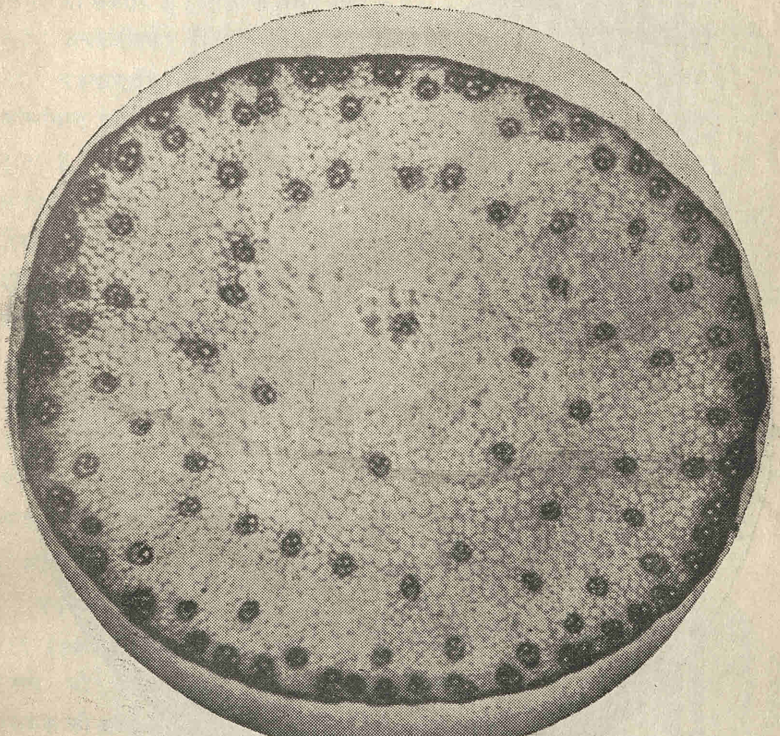

चित्र २५ क——एक बीजपत्री, मक्का, के स्तम्भ का अनुप्रस्थ काट जिसमें अनेक बिखरे हुये बंडल प्रदर्शित हैं (देखें चित्र २३)

सिलिंडर होता है जो बिल्कुल या लगभग केन्द्र तक प्रसारित होता है और अकाष्ठी ऊतकों की पतले आवरण से घिरा हुआ काष्ठ के भारी पुंज युक्त होता है। अकाष्ठीय आवरण काष्ठ से मिल कर संवहन ऊतक निर्मित करती है।

एक बीजपत्री स्तंभ की संरचना चित्र २५ क और ख में प्रदर्शित है। नवोदभिद अवस्था में संवहन बंडल, वलय रूप में नहीं, बल्कि न्यूनाधिकतः कोशिकीय भरण

ऊतक में बिखरे रहते हैं (चित्र २५ क) और प्रौढ़ स्तंभ में बंडल, यद्यपि अधिक संख्या के होते हैं, पृथक तथा बिखरे रहते हैं। इसके घेरे में वृद्धि कोशिकीय भरण ऊतक की वृद्धि के क रण होती है जिसमें बडल स्थित होते हैं। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि जहाँ द्विबीजपत्री स्तभ में प्राथमिक संवहन बंडल अतिरिक्त संवर्धन

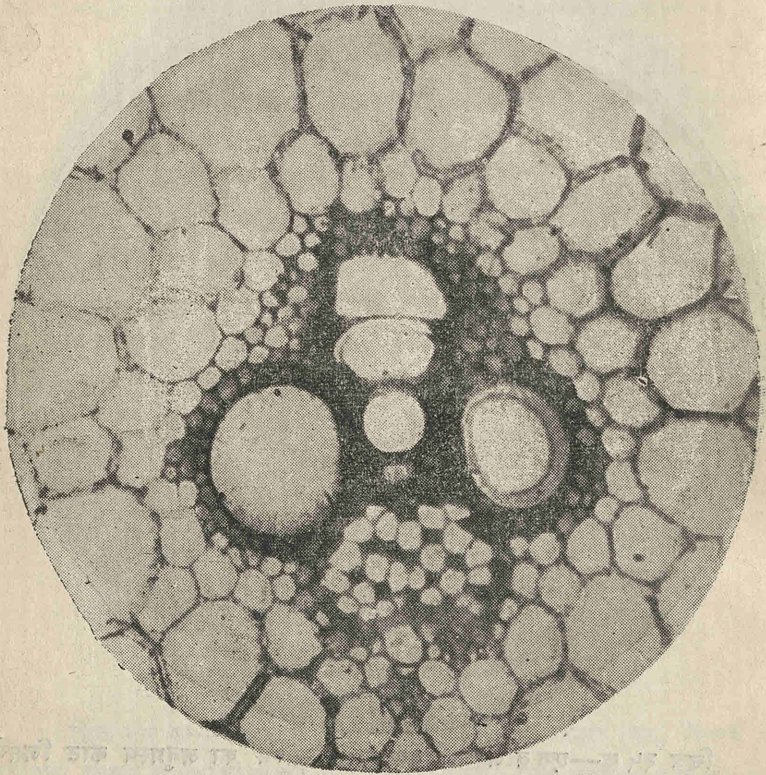

चित्र २५ ख—चित्र २५ क में प्रदर्शित एक संवहन बंडल का अनुप्रस्थ काट। बंडल में एधा रहित फ्लोएम और दारु सन्निविष्ट हैं, देखें चित्र २८।

करते हैं: वहाँ एक बीजपत्री स्तभ में—ऐसे विशाल जैसे ताड़ के स्तंभ में भी वे, दुर्लभ अपवादों युक्त, संवर्धन नहीं करते। जो कुछ भी घटित होता है, वह यह है कि जैसे ताड़ या अन्य एक बीजपत्रियों की पत्तियों के छत्र वृद्धि करते हैं तो स्तंभ के काट में अधिक बंडल दिखलाई पड़ते हैं; क्योंकि प्रत्येक पत्ती में सौ या अधिक बंडल हो सकते

हैं, और पत्तियों के बंडल निम्नवर्ती रूप में स्तंभ में पहुँचते हैं जहाँ वे पूर्वनिर्मित पत्तियों के प्रारंभिक संवहन बंडलों से संयुक्त होते हैं।

द्विबीजपत्रीय संवहन बंडल की वृद्धि के ढंग का प्रेक्षण स्तंभों के अनुक्रमिक संवर्धन की अवस्थाओं की परीक्षा द्वारा किया जा सकता है। स्तंभ के सिरे पर वर्धन अग्रकोशिका स्थित होती है। जो अरूपान्तरित कोशिकाओं से सन्निविष्ट भ्रूणीय ऊतक की संहति होता है। उससे थोड़ी ही दूर पीछे संवहन वलयक एक खडित वलय में स्थित, और वल्कुट द्वारा घिरे रह कर दीर्घीकृत कोशिकाओं के क्षत्र रूप में प्रारम्भ होते हैं। वे प्राक् एधा वलयक (procambial strands) कहलाते हैं। अधिक पीछे सवहन बडल संवर्धित होते रहते हैं। प्राक् एधा वलयक की वे कोशिकाएं जो स्तंभ के केन्द्राभिमुख होती है, परिवर्तित होती हैं और काष्ठीय तत्व उत्पन्न करती है। प्रथम निर्मित काष्ठीय तत्व आदि-दारु (protoxylem) कहलाते हैं। उससे भी अधिक पीछे प्राक् एधा वलयक की अन्य कोशिकाएं इसी प्रकार काष्ठीय तत्व रूप में संवर्धित होती रहती हैं और इसी तरह क्रम जारी रहता है जब तक कि काष्ठ की संहति—प्राथमिक दारु (primary xylem)—का निर्माण नहीं हो जाता। इसी बीच प्रत्येक प्राक् एधा वलयक के बाह्य पार्श्व पर कोशिकाओं में परिवर्तन होते हैं। उनमें से कुछ

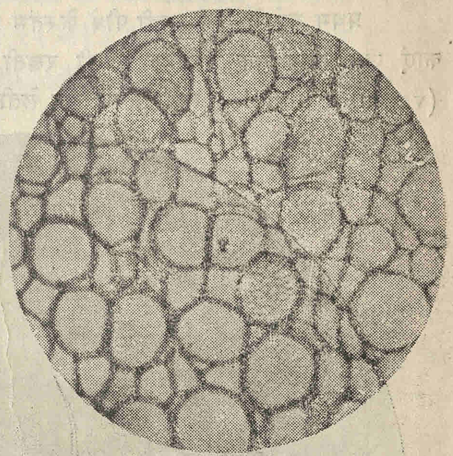

चित्र २६—विलायती कद्दू (vegetable marrow) **के फ्लोएम का अनुप्रस्थ काट जिसमें चालनी-पटिट्का प्रदर्शित है।**

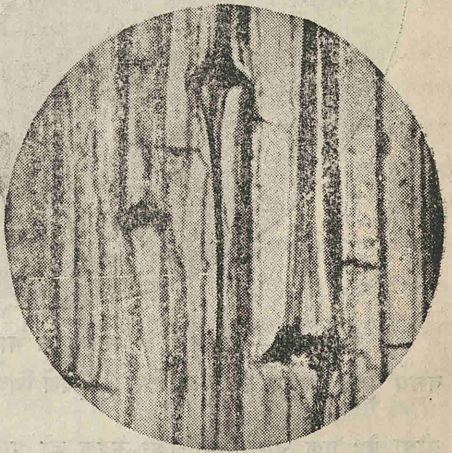

चित्र २७—विलायती कद्दू की चालनी-नलिका अनुदैर्घ्य काट में।

विलक्षण नलिकाकार तत्व की उत्पत्ति करते हैं जो चालनी–नलिका (sieve–tubes) कहलाते हैं (चित्र २६ और २७)।

इस ढंग से चित्र २३ में प्रदर्शित प्रत्येक बंडल की उत्पत्ति होती है।

प्रथम वर्ष में द्विबीजपत्री पौधे के स्तंभ के प्रत्येक प्राक् एधा वलयक की कोशिकाएं उस समय तक सक्रियता जारी रखती हैं जब तक कि वे एक संवहन बंडल (vascular bundle) नहीं उत्पन्न कर लेती हैं जो तीन परमावश्यक भागों युक्त

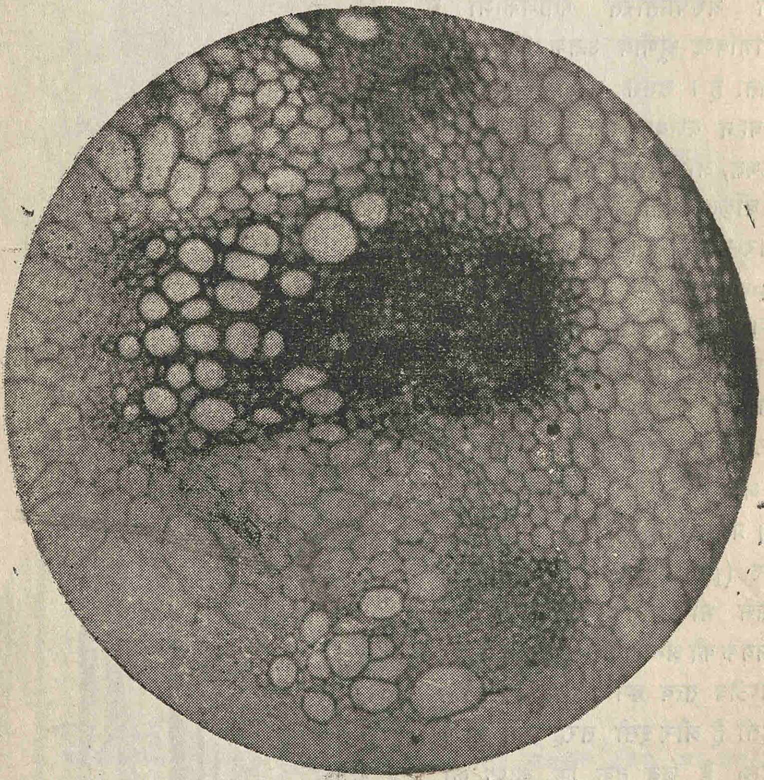

चित्र २८––सूर्यमुखी के स्तम्भ के भाग का अनुप्रस्थ काट जिसमें सतत एधा वलय युक्त संवहन बंडल प्रदर्शित है (देखें चित्र २३)।

होता है: एक चालनी–नलिका ऊतक जो प्राथमिक बास्ट या फ्लोएम (phloem) कहलाता है बाह्यतम होता है; एक काष्ठ ऊतक, प्राथमिक काष्ठ या दारु (xylem) जो अन्तर्तम होता है; और उनके मध्य स्थित प्राक् एधा वलयक की कोशिकाओं के

स्तर जो वृद्धि और विभाजन की शक्ति धारण किये रहती हैं। ये सबसे पिछले वाले एधा (cambium) की रचना करते हैं (चित्र २३ और २९)। एक बीजपत्री स्तंभ में इसके विपक्ष प्रत्येक प्राक् एधा वलयक की सब कोशिकाएं काष्ठ और फ्लोएम के उत्पादन में संलग्न रहती हैं (चित्र २५ ख)। जब प्राथमिक बंडल पूर्ण हो जाता है, तो एधा शेष नहीं रह जाती, और इस कारण संवहन बंडल की तब वृद्धि नहीं होती।

द्विबीजपत्री स्तंभ के साथ यह बिल्कुल ही भिन्न होता है। उनमें फ्लोएम और काष्ठ के मध्य स्थित एधा की कोशिकाएं वृद्धि की शक्ति धारण किये रहती हैं, वे विभाजित होती हैं और अनेक स्तर बनाती हैं। इन स्तरों में से प्राथमिक दारु के निकटतम स्थित स्तर काष्ठ तत्व (द्वितीयक काष्ठ) को जन्म देते हैं तथा प्राथमिक फ्लोएम के निकटतम स्थित स्तर द्वितीयक फ्लोएम को जन्म देते हैं। इस प्रकार नये तत्व के अंतर्विष्ट होने से काष्ठ और फ्लोएम दोनों की वृद्धि होती है। वृद्धि का वर्धन अन्य साधन से भी होता है। किसी अज्ञात विधि से, संवहन बंडल के अन्तर्गत एधा की सक्रियता के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सिलिंडर की कोशिकाएं उसके सम्पर्क में विभाजन की शक्ति अर्जित कर लेती हैं। वे वृद्धि करती तथा विभाजित होती हैं, और एधावत कोशिकाओं के स्तर निर्मित करती हैं जिससे एधा अब न्यूनाधिकतः सतत वलय का रूप धारण कर लेता है (चित्र २३)। बंडल के एधा स्तर जैसे काष्ठ और फ्लोएम की उत्पत्ति करते हैं, वैसे ही बंडलों के मध्य के स्तर करते हैं। बंडल के अन्तर्गत उत्पादित प्रत्येक काष्ठ और फ्लोएम बंडलों की मध्यवर्ती एधा द्वारा उत्पादित संगत काष्ठ और फ्लोएम से संलग्न होते हैं और इस कारण संवहन प्रणाली न्यूनाधिकतया अंतवर्ती रूप में सतत खोखले काष्ठ सिलिन्डर और बाह्यवर्ती रूप में––फ्लोएम से सन्निविष्ट होती है जो केवल संकीर्ण रश्मियों––प्राथमिक मज्जा रश्मियों के अवशेष––द्वारा खडित होती है (चित्र २९ और ३०)। प्रति वर्ष ही, जब वसंत का आगमन होता है, एधा स्तर की कोशिकाएँ सक्रियता पुनर्धारण करती हैं, विभाजित होती हैं तथा अन्तवर्ती पार्श्व में नवीन काष्ठ निर्मायक स्तर तथा बाह्यवर्ती पार्श्व में नवीन फ्लोएम निर्मायक स्तर उत्पादित करती हैं। एधा इतनी सक्रिय और एधा कोशिकाओं की विभाजन शक्ति इतनी प्रबल होती है कि प्राय:किसी काष्ठीय क्षुप या वृक्ष की शाखा उचित मौसम के समय काट कर उसी स्पीशीज या किसी विभिन्न स्पीशीज के दूसरे पौधे के स्तंभ पर कलम की जा सकती है; केवल यही शर्त है कि दोनों एधा एक दूसरे से सम्पर्क रखें। और इसी तरह यह भी है कि किसी शाखा के काटने से बना व्रण मुख्यतः एधा से व्रण (wound) ऊतक के निर्माण द्वारा समय

पाकर स्वस्थ हो जाता है; वर्ष प्रति वर्ष खुले पृष्ठ पर अधिक प्रसारित होता रह कर व्रण ऊतक व्रण को ढ़क देता है।

प्रति वर्ष जब छाल मुरझा जाती और मृत हो जाती है तो वह फैल कर और दरारों द्वारा फट कर पेड़ पर ही रह सकती है या वह पृथक् हो सकती है। दोनों ही

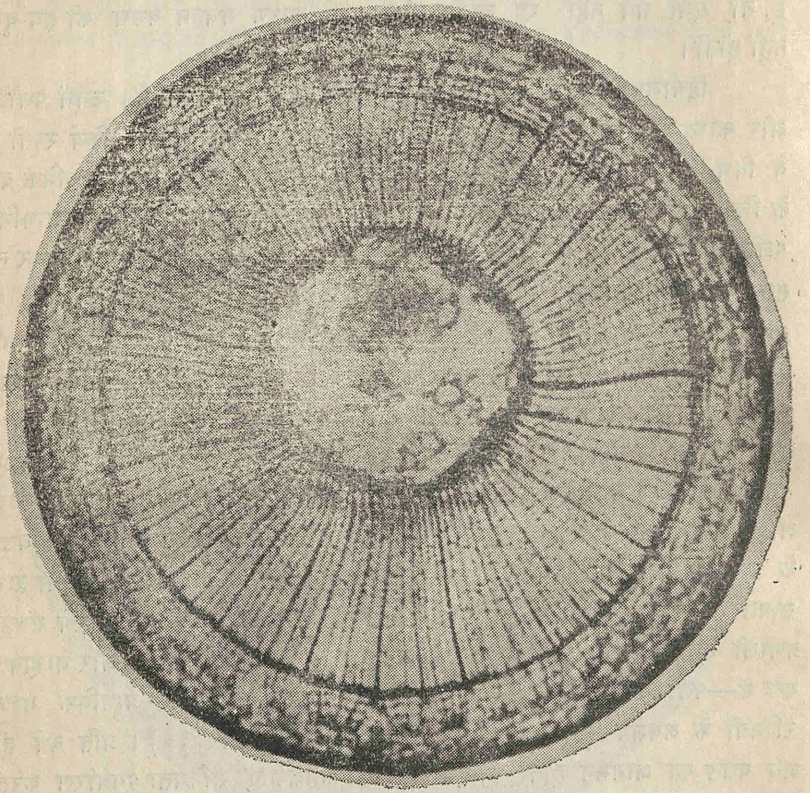

चित्र २९—टिलिया योरोपिया के स्तम्भ की द्वितीय वर्ष में अनुप्रस्थ काट जिसमें अन्तवर्ती रूप में एधा तक प्रसारित सतत काष्ठीय सिलिंडर उसके मध्य त्रिज्यावत् निर्मित मज्जा रश्मियाँ युक्त प्रदर्शित हैं। एधा के बाहर वल्कुट और छाल के अवशेष द्वारा घिरा हुआ फ्लोएम है।

अवस्थाओं में पूर्व वर्ष में काष्ठ और फ्लोएम की वृद्धि द्वारा उत्पन्न दाब मिट जाता है और इस कारण जब वसंत में एधा अपनी सक्रियता पुनः आरंभ करती है तो संवर्धन

के लिये वहाँ स्थान होता है। किन्तु इस समय किशलय उत्पन्न करने वाले वृक्षों द्वारा सर्वत्र खाद्य-पदार्थ की आवश्यकता रहती है, और इसलिए एधा के लिये वह स्वच्छंदतया सुलभ नहीं किया जा सकता। शिशु प्रस्फुटनशील कलिकाओं के लिये जल के तीव्र संवाहन की भी आवश्यकता होती है, और इस प्रकार वसंत काष्ठ में दीर्घ गुहिकाएं और पतली भित्तियाँ होती हैं। इसका मुख्य कार्य जल की प्रचुर मात्रा संवाहन करना होता है। जब वर्ष की वृद्धि संचालित होती है, तो नये काष्ठ और फ्लोएम, जो एकत्र ही एधा वलय को आवेष्ठित रखते हैं, उस पर अधिकाधिक दाब डालते

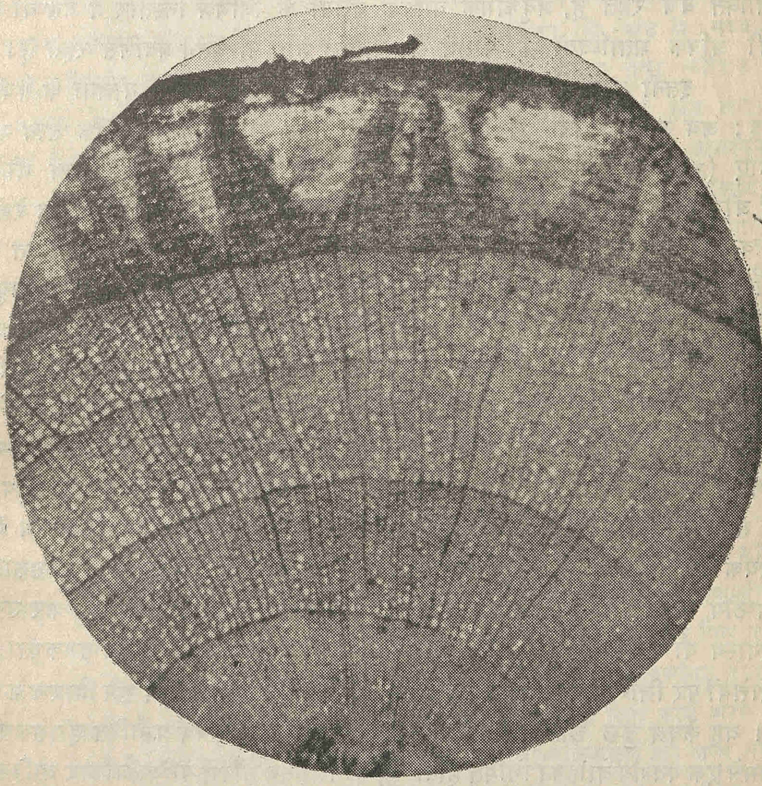

चित्र ३०—टिलिया योरोपिया के स्तम्भ की चतुर्थ वर्ष में अनुप्रस्थ काट का एक भाग, वार्षिक वलय प्रदर्शित करते हुए।

हैं। किन्तु प्रचुर खाद्य-पदार्थ युक्त एधा, अब दाब के विरुद्ध कार्य कर पतली गुहिका और मोटी भित्तियों युक्त दारु वाहिकाएं निर्मित करती है (चित्र ३०)। वे उत्कृष्टतः

कार्य रूप में कंकालीय होती हैं, और वृक्ष के परिवर्तनशील रचना को आधार प्रदान करती हैं। इस कारण शीत और ग्रीष्म के एकान्तरित ऋतु-परिवर्तन के मौसम में वार्षिक वलयों (rings) की संख्या से वृक्ष की आयु जानी जा सकती है। शरद् काल की स्थूल-भित्तीय, सूक्ष्म वाहिकाएं वसंत की सूक्ष्म-भित्तीय चौड़ी वाहिकाओं से ऐसी विभिन्नता प्रकट करती हैं कि नग्न नेत्रों से भी पृथक्कारक रेखा देखी जा सकती है। यही नहीं, इससे भी अधिक यह कदाचित ठीक ही कहा जाता है कि केलिफोर्निया (सिक्योइया जाइजेंटिया) के विशाल वृक्ष के समान जो एक सहस्र वर्ष से भी अधिक जीवित बचे रहते हैं, अनुक्रमिक वार्षिक वलयों के विभिन्न विस्तार में दस या इससे भी अधिक शताब्दियों के मौसम के वार्षिक भाग परिवर्तन प्रदर्शित रहते हैं।

इतनी बातें तो सवाहन ऊतक की दीर्घ वास्तुकलात्मक योजना के संबंध में हुई: अब उनका ब्यौरा देखें। पुष्पी पौधों के काष्ठ या दारु के लाक्षणिक तत्व वाहिकाएं (vessels) कहलाते हैं (चित्र ३१) किन्तु काष्ठ में कोशिका तत्व भी होते हैं और एक एकल कोशिका की वृद्धि और परिवर्तन द्वारा निर्मित लंबे और दृढ़ रेशेदार तत्व--काष्ठीय तन्तु--भी होते हैं। वाहिकाएं लंबी, नलिकाकार, काष्ठ-भित्तीय, मृत तत्व होती हैं जिनकी गुहिकाओं में जल, वायु और जल या पुराने भागों में केवल वायु ही होती है। कुछ वृक्षों में वे कई गज लम्बी हो सकती हैं, यद्यपि साधारणतया बहुत छोटी ही होती हैं; किन्तु किसी भी अवस्था में वाहिकाएं उन कोशिकीय तत्वों से कई गुना लम्बी और चौड़ी होती है, जिनसे वे निर्मित होती हैं। वे अनुदैर्घ्य दिशा में एक दूसरे से निर्बाध संबध रखती है और इस प्रकार पौधे के मध्य फैली हुई जल-मार्ग प्रणाली निर्मित करती हैं। एधा कोशिकाओं से उत्पन्न कोशिकाओं की अनुदैर्घ्य पंक्ति के समक्रमिक संवर्धन द्वारा एक वाहिका निर्मित होती है। वाहिका निर्मायक संघ में से प्रत्यक सब दिशाओं में, किन्तु विशषतया लम्बाई में, वृद्धि करता है। कोशकाद्रव्य काष्ठीय पदार्थ, लिग्निन, निर्मित करता है जो भित्तियों पर निक्षेपित हो कर उनको प्रत्यास्थ या लचकदार (elastic) ही रहने देकर अधिक पुष्टता प्रदान करता है। भित्तियों पर लिग्निन का निक्षप एकसमान नहीं होता, बल्कि विचित्र रूप धारण करता है। वह केवल कुछ छोटे क्षेत्रों के अतिरिक्त भित्ति पर सर्वत्र प्रसारित हो सकता है जिससे एक गर्तमय वाहिका निर्मित होती है, या लिग्निन सर्पिल या वलयाकार वाहिकाएं निर्मित करने के लिये एक सर्पिल या वलय रूप में निक्षेपित हो सकता है। इस प्रकार पौधा प्रकृति के अल्प व्यय तथा दक्षता के साधारण नियम का अनुसरण करता है। स्थानीय स्थूलन (thickening) भित्ति को अवलंब प्रदान करता है, उनके मध्य के सूक्ष्म स्थान वाहिका के भीतर या बाहर जल प्रवाहित हो जाने का मार्ग देते हैं।

वृद्धि और लिग्निन से भित्तियों पर पलस्तर के पूर्ण होने से काष्ठ निर्मायक संघ की कोशिकाओं का जीवन समाप्त होता है। कोशिकाद्रव्य और केन्द्रक लुप्त हो जाते हैं और उनकी मृत्यु वाहिका को जल संचय और संवाहन के यान्त्रिक प्रयोजन के लिये अभिषिक्त करती है।

चालनी-नलिकाएं (sieve tubes)--फ्लोएम के मुख्य तत्व--भी कोशिकाओं की एक संबद्ध अनुदैर्ध्य पंक्ति द्वारा निर्मित होती हैं, किन्तु उनकी रचना विधि काष्ठ-वाहिकाओं से भिन्न होती है। प्रत्येक घटक कोशिका एक क्षुद्र सहकोशिका (companion cell) निर्मित करने के लिये पार्श्व रूप में विभाजित होती है, जो यद्यपि अधिक वृद्धि नहीं करती, तथा चालनी-नलिका के खंड से सम्बद्ध रहती है, जिससे वह कट कर बनी थी, और अपना केन्द्रक तथा कोशिकाद्रव्य धारण करती है। यह हो लेने पर, प्रत्येक चालनी-नलिका खंड अपनी अनुदैर्ध्य भित्ति में अधिक परिवर्तन किये बिना ही किन्तु लम्बाई में अत्यधिक वृद्धि कर अपने तथा दूसरी चालनी निर्मायक कोशिका की मध्यवर्ती भित्ति में, निस्संदेह ही एन्जाइम द्वारा छिद्र बनाती है। उभयवर्ती भित्तियाँ चालनीवत् छिद्रित हो जाती हैं, इसी कारण यह नाम पड़ा है--और पड़ोसी घटकों के कोशिकाद्रव्य चालनी-पट्टिका द्वारा एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं (चित्र २६), जिससे सम्बद्ध चालनी नलिकाओं की प्रणाली द्वारा, जो पौधे के कोने-कोने में फैला होता है, कोशिकाद्रव्यसतत रहता है। किन्तु यह विचित्र बात है कि चालनी-नलिकाओं की रचना के समय प्रत्येक घटक कोशिका का केन्द्रक लुप्त हो जाता है और केवल कोशिकाद्रव्य शेष रह जाता है। कुछ द्विबीजपत्रियों में ऐसा होता है कि शिशिर में जब वे विश्राम अवस्था में जाते हैं तो उनकी चालनी-नलिकाएं उनके ऊपर एक चमकीली श्वेत वस्तु, कैलस (callus) निक्षेपित होने से बन्द हो जाती हैं। इस प्रकार अवरुद्ध परिवहन मार्ग पुनः नहीं खुल सकता। किसी भी अवस्था में चालनी नलिका का जीवन अल्पकालीन होता है। यह ऊपरी और निचले चक्की के पाट--छाल और काष्ठ--के मध्य पिस कर मृत हो जाती है। किन्तु जब वसंत आता है तो कुछ पौधों में कैलस विलयित होकर पृथक् हो जाती है और चालनी नलिका द्वितीय वर्ष की ऋतु के लिये कार्य करने में समर्थ हो जाती है। सब फ्लोएम निर्मायक कोशिकाएं चालनी-नलिकाओं को जन्म नहीं देती। कुछ कोशिकीय रह जाती हैं, और अन्य फ्लोएम रेशे (phloem fibres) उत्पन्न कर सकती हैं: निस्संदेह ही, फ्लोएम रेशे निर्माण करने वाली कोशिकाओं से ही उद्योग में प्रयुक्त सन और अन्य रेशे प्राप्त होते हैं।

स्थिरतः वृद्धिशील संवहन प्रणाली पौधे के जीवन में अनेक कार्य करती है।

वाहिकाओं की काष्ठीय भित्ति और काष्ठीय रेशे एकत्र हो एक आन्तरिक कंकाल निर्मित करते हैं। काष्ठ और फ्लोएम के जीवित तथा कोशिकीय तत्व अतिरिक्त खाद्य-पदार्थ संचय करते हैं। वे अवर्णी लवक धारण किये रहते हैं, और इस कारण चल शर्करा से संग्रह मंड और पुनः शर्करा में कार्बोहाइड्रेट के परिवर्तनों को वलयित कर सकते हैं। काष्ठ, और विशेषतया शिशु काष्ठ, की वाहिकाएं जल अभिगमन के लिये जल-मार्ग और उसके संग्रह के लिये जल भंडार भी निर्मित करते हैं। वे कच्चे तथा संश्लिष्ट खाद्य पदार्थों के दूर तक अभिगमन का भी कार्य करते हैं। मूल द्वारा अवशोषित खनिज पदार्थ वाहिकाओं में प्रवेश करते हैं तथा जल धारा में विलयन रूप में पत्तियों तक वाहित होते हैं, ऐसे ही--वसंत में सब समयों पर जब रस उत्थित होता है, तो मूल और तने के काष्ठ के कोशिकीय तत्वों में संचित मंड विकसनशील पत्तियों तक वाहित होते हैं। यह हो सकता है कि शर्करा रूप में ऐसे खाद्य पदार्थों के केवल मूल से पत्तियों तक ऊर्ध्ववर्ती ही नहीं, बल्कि पत्तियों से तनों और भूमिगत अंगों तक निम्नवर्ती अभिगमन में भी काष्ठ-वाहिकाएं भाग लेती हैं।

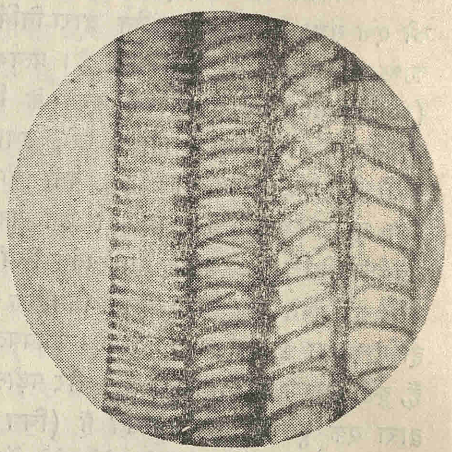

चित्र ३१--सूर्यमुखी के काष्ठ का अनुदैर्ध्य काट, जिसमें सर्पिल स्थूलन युक्त वाहिकाएँ प्रदर्शित हैं।

खाद्य पदार्थों के संवाहन में चालनी-नलिकाओं द्वारा संचालित कार्य अधिक अस्पष्ट है। यदि किसी वृक्ष से कटी हुई शाखा काष्ठ तक छाल का एक वलय पृथक् कर लेने के बाद जल में रखी जाय, तो पानी ऊपर चढ़ता है तथा ऊपरी भागों को ताजा तथा हरा रखता है. किन्तु पत्तियों द्वारा निर्मित खाद्य पदार्थ काट के सिरे के नीचे नहीं उतरता और इसलिये यद्यपि वलय के ऊपर के भाग वृद्धि करते हैं, तथापि नीचे वाले भाग वृद्धि नहीं करते। तने के एक या दूसरे ऊतकों को हटाने की अन्य अधिक विशद विधियों द्वारा प्रमाण प्राप्त किये गये हैं जो, यद्यपि पूर्ण निश्चय से नहीं कहा जा सकता, यह इंगित करते हैं, कि शर्करा और नाइट्रोजनी खाद्य-पदार्थों

के वितरण में चालनी-नलिकाएं महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। चालनी-नलिकाओं की सह-कोशिकाएं पदार्थों के स्थानीय स्थानान्तर के लिये छोटे रेल-मार्ग से माने जा सकते हैं। आंशिकतः काष्ठ में जल-धारा द्वारा और आंशिकतः चालनी-नलिकाओं द्वारा, और अंततः एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक विसरण द्वारा, गतिशील खाद्य-पदार्थ पौधे के सब जीवित भागों तक पहुँचते हैं। इस प्रकार वे अपने निर्धारित लक्ष्य स्थल पर पहुँचते हैं।

अध्याय ९

रचना और शक्ति-उत्पादन के लिए खाद्य पदार्थों का उपयोग। वृद्धि और कोशिकाओं तथा ऊतकों के विभेदन। श्वसन। वायुजीवी और अवायुजीवी जीवन। किण्वन और क्षय। स्वावलंबी (स्वपोषित) और परावलंबी (परपोषित) पुष्पी पौधे: मृतजीवी, परजीवी, अर्ध परजीवी। सहजीवन। कीटाहारी पादप

पौधे द्वारा संश्लेषित खाद्य-पदार्थ प्रत्येक जीवित कोशिका की पहुँच के अन्दर अभिगमन-पद्धति द्वारा आप्रस्तुत और परिवहित होते हैं। वे पदार्थ, जिनके लिए जीवद्रव्यीय झिल्ली पारगम्य (permeable) होती है, कोशिका के अन्दर प्रवेश करते हैं, और या तो तुरन्त प्रयुक्त हो जाते हैं या वहाँ पर की या अन्य स्थानों की भावी-आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगृहीत होते हैं। जीवित कोशिकाओं द्वारा स्वांगीकरित, खाद्य-पदार्थ जिन प्रयोगों में लाये जाते हैं, वे अनेक हैं। ये पदार्थ कोशिकाद्रव्य (cytoplasm), केन्द्रक (nucleus), लवकों (plastids), कोशिका-भित्तियों (cell-wells) या कोशिका के अन्य भागों की रचना में काम आ सकते हैं, या अधोक्रमिक रासायनिक परिवर्तन कर वे सरलतर पदार्थों के रूप में खंडित हो सकते हैं जिनसे वे मूलतः उत्पन्न हुए थे और इस प्रक्रम (process) में वे पौधे को उनमें आबद्ध ऊर्जा (energy) प्रदान कर सकते हैं।

वनस्पति-जगत् द्वारा रचना का कार्य जितना महान् है उतना ही विविधरूपी है। एक सूक्ष्मदर्शीय, एककोशिक भ्रूण से असंख्य कोशिकाओं द्वारा निर्मित एक विशाल वृक्ष उत्पन्न होता है। इसके काष्ठीय और अन्य सभी ऊतक तथा कोशिका-द्रव्य, केन्द्रक और लवक के जीवित पदार्थ की संहति जीवद्रव्य की चिरकालीन सक्रियता का उत्पाद है। वृद्धि करने के लिए पौधे को अनेक भौतिच-रासायनिक क्रियाएँ अवश्य करनी चाहिए। प्रोटीन और अन्य खाद्य-पदार्थ जीवद्रव्य (potoplasm) में अवश्य समाविष्ट होना चाहिए, जिससे उसमें वृद्धि हो सके। लवक (plastids) को भी यथेष्ट प्रोटीन तथा अन्य पदार्थ अवश्य मिलने चाहिए जिससे विभाजन द्वारा उनकी प्रायः असीम-संख्या में वृद्धि हो सके। पर्णहरित (chlorophyll) अवश्य विर्मित होना चाहिए, और मूलतः निर्मित पतली कोशिका-भित्तियों (cell-wall) के

ऊपर या भीतर अतिरिक्त कोशिका-भित्ति पदार्थ, जो सेलुलोस, लिग्निन, क्यूटिन या सुबेरिन (suberin) हो सकता है, निक्षेप कर अवश्य ही प्रबलित किया जाना चाहिए।

किसी भी क्षण परिस्थितियाँ एक या दूसरी जगह पर एन्जाइम (enzyme) की उपस्थिति आवश्यक रख सकती हैं; एक जगह पर मंड, चर्बी, या प्रोटीन के जल-अपघटन की आवश्यकता हो सकती है। और दूसरी जगह चालनी-नलिका की पट्टिका को छिद्रित करने की आवश्यकता हो सकती है। बहुसंख्यक एन्जाइम, जिन्हें पौधा उपयोग में लाता है, जीवद्रव्य द्वारा स्रावित होते हैं, और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह अपनी भौतिक हानि कर सकता है। अतएव मरम्मत तथा नवरचना कार्य में पौधे को सतत संलग्न रहना आवश्यक है और इस समय में रासायनिक कार्य की पूर्ति के लिए अधिक से अधिक संभव उपयुक्त ताप की आन्तरिक अवस्था अवश्य स्थापित रहनी चाहिए। पौधा अपने परिश्रम से पूर्व संश्लेषित खाद्य-पदार्थों के विघटन द्वारा जो ऊर्जा निर्मुक्त करता है, उसका अल्पांश भी इन अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए ताप का रूप नहीं धारण करना चाहिए। पुष्पी पौधा अपने संवर्धन की आरंभिक अवस्थाओं में मातृ पौधे की निर्माणात्मक ऊर्जा के परिणामस्वरूप बीज में संगृहीत खाद्य-पदार्थ को व्यय कर सकता है। जैसा कि प्रदर्शित किया गया है, यह नैसर्गिक संपत्ति मंड, या अन्य कार्बोहाइड्रेट या वसा, और प्रोटीन का भी रूप धारण कर सकती है जो न्यून या अधिक मात्रा में बीज में विद्यमान होती है। इन बीजों में, जो मानव-समुदाय के लिए खाद्य के स्रोत का कार्य करते हैं, संचित भंडार वृहद और भारी होते हैं, जैसा कि शिंबी पौधों के बीजों (मटर, सेम, आदि) के बीजपत्रों की कोशिकाओं में संगृहीत मंड और प्रोटीन कणों में, और गेहूँ तथा अन्य धान्यों में दीर्घ प्रोटीन कणिकाएं सन्निहित रखने वाली कोशिकाओं की विशेष स्तर (ऐल्यूरोन कण स्तर) में दिखायी पड़ता है (चित्र ८ ख)।

वसीय बीजोंयुक्त पौधे अपनी संतान के लिए इससे भी अधिक विशद खाद्य का भंडार रखते हैं। बादाम, एरंड और ब्राजील नट आदि के बीजों में केवल वसा ही नहीं होती, बल्कि बड़े ऐल्यूरोन कण भी होते हैं जो अंशतः प्रोटीन से और अंशतः खनिज पदार्थों--मुख्यतः कैल्सियम और मैग्नीशियम फास्फेट से निर्मित होते हैं। प्रोटीन दो अवस्था में हो सकती है--दानेदार मैट्रिक्स या आधात्री और क्रिस्टलाभ अर्थात् आधात्री में पड़ी हुई एक बड़ी, स्पष्ट, क्रिस्टलाभ संहति (चित्र ३२)।

किन्तु सर्वाधिक प्रचुरतः सम्पन्न पौधे में भी खाद्य-भंडार शीघ्र समाप्त हो जाते हैं, और उसके पश्चात् बीजांकुर को अपना निर्वाह स्वयं करना पड़ता है। अन्य न्यून भाग्यशाली बीज-पादप अल्प संचित खाद्य-पदार्थ युक्त उत्पन्न होते हैं और उन्हें प्रायः प्रारंभ से ही अपना निर्वाह करना पड़ता है। इस दृष्टि से बहुत कुछ वे निम्न-कोटि वर्ग के पौधों के ही समान होते हैं, जो बीज निर्माण की प्रकृति विकसित न किये होने के कारण खाद्य-पदार्थ की अल्प नैसर्गिक संपत्ति या उसके बिना ही जीवन प्रारंभ करते हैं।

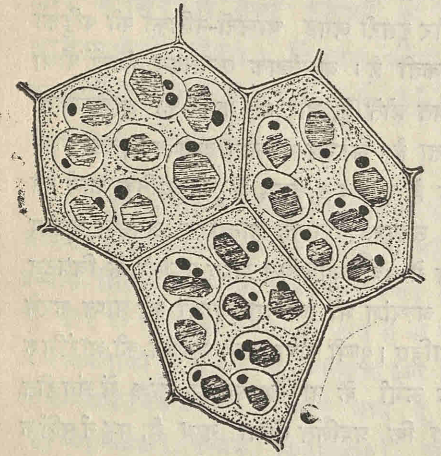

चित्र ३२—एरंड के भ्रूणपोष की कोशिकाएं जिसमें ऐल्यूरोन कण कोशिकाद्रव्य में अंतस्थापित है। प्रत्येक कण एक क्रिस्टलाभ (हल्का रेखाच्छादित) और गोलाभ (गाढ़ा रेखाच्छादित) का बना होता है और प्रोटीन आधात्री (अरेखाच्छादित) में अंतस्थापित रहता है।

जीवद्रव्य द्वारा संचालित विविध संरचनात्मक कार्य का प्रमाण वे उत्पाद या अपशिष्ट (waste) पदार्थ है—जिनमें अनेक नाइट्रोजन सन्निविष्ट रखते हैं—जो पौधे में उसकी रासायनिक सक्रियताओं के परिणामस्वरूप निर्मित और निक्षेपित होते हैं। इन बहु-संख्यक पदार्थोंके संचय का इस तथ्य द्वारा स्पष्टीकरण होता है कि पौधे, जन्तुओं की व्यापक स्थिति के विरुद्ध, शरीर से अपशिष्ट पदार्थों के उत्सर्जन के लिए स्पष्ट निर्मित उत्सर्जन तंत्र (excretory system) नहीं रखते। किन्तु चूँकि बहुवर्षी पौधे के जीवित शरीर में ऊतक सन्निविष्ट रहते हैं जिनका जीवन स्थगित हो चुका रहता है, उनमें मुख्यतया पुराने अन्तः काष्ठ और छाल में, अपशिष्ट पदार्थ प्रायः एकत्रित और संचित होते हैं। कुछ पदार्थ उदाहरणार्थ ऐल्केलॉइड जैसे थीइन, कैफीन, निकोटीन, क्विनीन और अफीम के ऐलकेलॉइड-यद्यपि उनका पौधे के लिए उपयोग अज्ञात-सा है; मानव-समाज के लिए उत्तेजक वस्तुओं, औषधियों और विषों के रूप में अधिक मूल्यवान हैं। अन्य प्रायः निश्चित रूप से पौधे में उपयोगी प्रयोजन सिद्ध करते हैं। छाल या काष्ठ में निक्षेपित विषैले ऐलकेलॉइड प्राकृतिक पूतिरोधी (antiseptic) का कार्य कर सकते हैं जिससे वे

वृक्षों को क्षय से सुरक्षित रख सकते हैं और छेद करने वाले या अन्य कीड़ों के आक्रमण से उनकी रक्षा कर सकते हैं। जीवद्रव्यीय सक्रियता के उपजात में, जो ऐसे प्रयोजनों

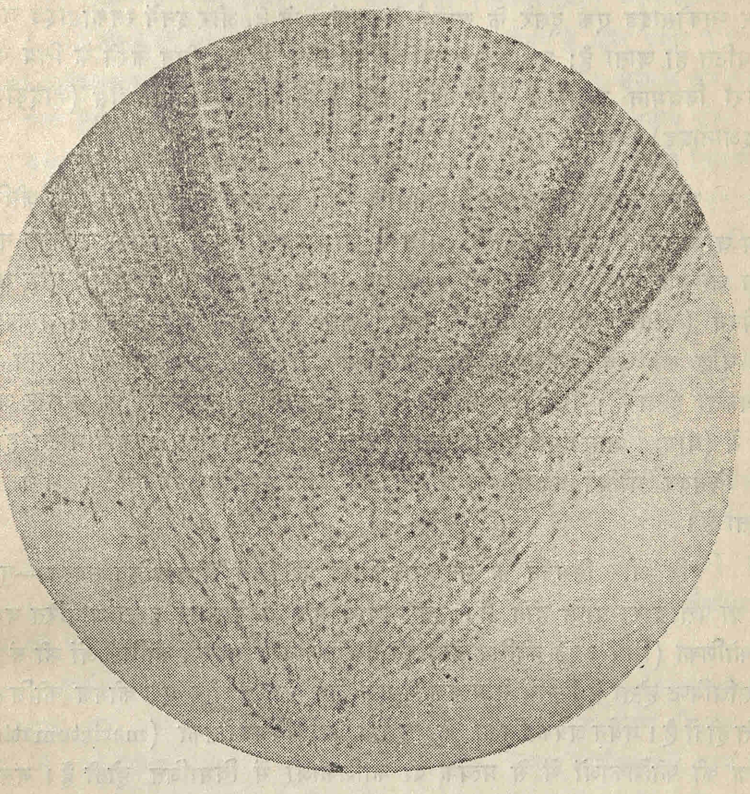

चित्र ३३—मक्का के मूलाग्र के मध्य से अनुदैर्ध्य काट जिसमें मूल-छद द्वारा आवरित वर्धन अग्रक के विभज्योतकी ऊतक प्रदर्शित हैं।

को भी सिद्ध कर सकते हैं, सायनोफोरिक ग्लूकोसाइड के अनेक वर्ग हैं; जो जल-अपघटित होने पर शर्करा और अत्यधिक विषैली गैस हाइड्रोजन साइआनाइड (HCN) उत्पन्न करते हैं। वे कड़वे बादाम, लौरेल की पत्तियों और अनेक पौधों में अधिक पाये जाते हैं। ग्लूकोसाइड के साथ, किन्तु उनसे पृथक् हुए अविकल ऊतकों में ग्लूकोसाइडल एन्जाइम होते हैं, जिनमें से प्रत्येक जिस ग्लूकोसाइड के सम्पर्क में रहता है, उसे शर्करा,

हाइड्रोजन साइआनाइड और अन्य पदार्थों के रूप में विभक्त करते हैं। अतएव यह माना जा सकता है कि जहाँ अक्षत ऊतकों में, चूँकि एन्जाइम उस पर प्रभाव नहीं डाल सकता, ग्लूकोसाइड अपरिवर्तित पड़ा रहता है, और परजीवी जीवों द्वारा क्षत ऊतकों में एन्जाइम और ग्लूकोसाइड एक दूसरे के सम्पर्क में लाये जाते हैं, और इनमें ग्लूकोसाइड जल-अपघटित हो जाता है; इस कारण हानिकारक जीव को प्रलोभित करने के लिये वहाँ शर्करा विद्यमान रहती है और उसे नष्ट करने के लिए विषैली गैस (हाइड्रोजन साइआनाइड) विद्यमान रहती है।

जीवद्रव्य की वृद्धि के ढंग के विषय में—या कोशिका के किसी भी अन्य जीवित भाग या उसकी निर्जीव सेलुलोसी भित्ति के भी सम्बन्ध में इस अवसर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। वे, टौप्सी की तरह, बस वृद्धि करते हैं। तथापि, वृद्धि और विभेदन (differentiation) के मध्य भिन्नता पर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। वृद्धि का अर्थ कोशिकाद्रव्यीय, केन्द्रकीय और आदिलव जीवित पदार्थ में अधिकता होना है; विभेदीकरण का अर्थ कोशिकाओं और ऊतकों के आकार और रूप में (प्रायः अनुत्क्रमणीय) परिवर्तन है जो पौधे के संवर्धन काल में घटित होता है। विभेदन जीवित पदार्थ की संहति की अधिकता या न्यूनता के साथ हो सकता है।

वृद्धि और विभेदन के उदाहरण किसी भी शिशु और सक्रिय सदस्य—मूल, तने या पत्ती द्वारा प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ मूल में मूल-छद द्वारा आवरित वर्धन अग्रकोशिका (चित्र ३३) कोशिकाद्रव्य की प्रचुरता युक्त समरूप कोशिकाओं की संहति से सन्निविष्ट होता है जिनमें से प्रत्येक में एक दीर्घ केन्द्रक और एक कोमल कोशिका-भित्ति होती है। वर्धन अग्रकोशिका के भ्रूणीय या विभज्योतकी (meristematic) ऊतक की कोशिकाओं में से प्रत्येक दो कोशिकाओं में विभाजित होती हैं। संतति (daughter) कोशिकाओं में से कुछ विभज्योतकी बनी रहती हैं। वे वृद्धि करती हैं और जब जीवद्रव्य तथा केन्द्रक यथेष्ट आकार वृद्धि कर चुके होते हैं; तो प्रत्येक विभज्योतकी कोशिका पुनः विभाजित होती है और इसी तरह फिर विभाजित होती जाती है। वह हजार वर्ष तक या उससे भी अधिक समय तक विभाजित या पुनर्विभाजित होती रह सकती हैं। जब तक पौधे में क्षमता होती है, वर्धन अग्रकोशिका की विभज्योतकी कोशिकाएं विभाजित होती हैं, वृद्धि करती हैं और पुनः विभाजित होती हैं। जो संतति कोशिकाएं वर्धन अग्रकोशिका का स्थायी भाग नहीं होतीं, वे दूसरे रूप में व्यवहार करती हैं। वे विभज्योतकी कोशिकाओं के आकार से अधिक आकार-वृद्धि करती

हैं। आकार-वृद्धि निस्संदेह ही इतनी अधिक होती है कि वह कोशिकाद्रव्य की आकार-वृद्धि को पीछे कर देती है जो फलस्वरूप कोशिका-गुहिका को अब नहीं भरती (चित्र २१)। कोशिका-रस के परासरणी पदार्थ जल का अवशोषण करते हैं। कोशिका-भित्ति तन जाती है। अंतरालों और कोलॉइडी (colloidal) कोशिका-भित्ति के पृष्ठ पर कोशिकाद्रव्य द्वारा स्रावित सेलुलोस निक्षेपित होता है, और इसके परिणाम-स्वरूप कोशिका-भित्ति सब विमाओं में आकार वृद्धि करती है। जल के परासरणी अवशोषण द्वारा कोशिका-भित्ति का अनुत्क्रमणीय (reversible) तनाव होता है। यदि वर्धन मूल अपने कोशिका-रस से कुछ अधिक शक्ति के परासरणी विलयन में रखा जाय, तो कोशिकाओं से जल प्रत्याहृत होता है, और मूल अल्पाकार हो जाता है। इस संकुचित अवस्था में मूल की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है; किन्तु यदि वह जल में स्थानान्तरित कर दिया जाय, तो कोशिकाएं एक बार पुनः दीर्घीकृत होती हैं; और वृद्धि संचालित होती है। यदि मूल पुनः परासरणी विलयन में डाल दिया जाय तो दीर्घीकरण क्षेत्र की कोशिकाएं उतनी अधिक अल्पाकार नहीं होती जितनी पहले होती थीं। परासरण दाब द्वारा प्रस्तुत कोशिका-भित्तियों का तनाव या विस्तार इसी बीच में स्थायी बन जाता है: तथापि कोशिका-भित्ति अब भी परासरणी रूप में तनाव में लाई जा सकती है, और इस अतिरिक्त तनाव का कुछ भाग अनुत्क्रमणीय (irreversible) रूप में पुनः स्थायी बनाया जा सकता है। अतएव द्वैध प्रक्रम, रसाकर्षक दाब तथा अन्तःसरण (infiltration) द्वारा तनाव, और कोशिकाद्रव्य द्वारा स्रावित सेलुलोस के पलस्तर लगाने द्वारा दीर्घीकारक क्षेत्र की कोशिका-भित्तियाँ दीर्घ आकार प्राप्त कर सकती हैं।

मूल में दीर्घीकरण (elongation) के क्षेत्र के परे द्वितीयक (secondary) परिवर्तन का क्षेत्र होता है, जिसमें कोशिकाओं के दल, जो अब ऊतक की एक श्रेणी रूप में सीमांकित होते हैं, मूल-रोम कोशिकाओं, वल्कुट कोशिकाओं, प्राक एधा कोशिकाओं, काष्ठ या फ्लोएम कोशिकाओं, चालनी नालिकाओं, वाहिकाओं, इत्यादि रूप में विभेदित होते हैं।

ऊपर वर्णित दीर्घीकरण का प्रक्रम उस आश्चर्यजनक तीव्रता का स्पष्टीकरण करता है जिससे पौधे लम्बाई में बढ़ सकते हैं। उदाहरणार्थ उष्ण देशों में बाँस बढ़ता हुआ देखा जा सकता है। वर्षा के आगमन पर कुछ दिनों में ही नया दंड बननेवाली दीर्घकाय कलिकायें खुलना प्रारम्भ करती हैं और दीर्घ घासनुमा तने की भाँति निकल पड़ती हैं जो वृद्धि के मौसम भर में ही सौ फीट या उससे भी अधिक लंबी हो जाती हैं। दीर्घ वृद्धिशील कलिका में घुसाई हुई एक पिन एक सादे काँच के मुँहवाली स्थिर

नलिका के बीच से कुछ सेकंडों तक देखने पर ऊपर खिसकती दिखाई पड़ती है। यह गति कलिका के अप्रौह प्ररोह की अनेक गाँठों में से प्रत्येक पर कोशिका स्तरों की एक श्रणी के दीर्घीकरण का परिणाम होती है। इन स्तरों की प्रत्येक कोशिका दीर्घीकृत होती है, और बहुसंख्यक स्तरों की अनेक कोशिकाओं का एक ही साथ, यद्यपि सूक्ष्म ही, दीर्घीकरण वृद्धि को प्रत्यक्ष करने के लिय यथेष्ट बड़ा होता है।

जीवद्रव्य की रचनात्मक सक्रियता के इस वर्णन में यह स्पष्ट जान पड़ेगा कि ज्ञान के बारीक परदे में अधिक अज्ञानता निहित है। जीवित जीवद्रव्य के अवयवों की भौतिक-रासायनिक रचना के सम्बन्ध में अभी तक बहुत कम ज्ञात है, और यद्यपि कोलाइड के गुण का अध्ययन कोशिका के जीवद्रव्य के काले स्थानों पर कुछ प्रकाश डालना प्रारम्भ कर रहा है, तथापि अभी तक वह प्रकाश अनिश्चित और धुँधला है। जीवन की प्रकृति हमारी समझ से अब भी बाहर की बात है और इस बात का निर्णय कि कोई वस्तु जीवित या मृत है, उसके व्यवहार के निरीक्षण पर ही आधारित है। यदि पदार्थों के प्रयोग से, जो यद्यपि निश्चित प्रकार के हों, अपना शरीर निर्मित करने, मरम्मत करने और संख्या-वृद्धि करने में समर्थ हों, और पृथक् होने पर या उन पदार्थों के सयुक्त होने पर भी वैसा न हो सकता हो जो जीवित पदार्थ के परमावश्यक गुण हैं, तो वह वस्तु जीवित कहलाती है। कोई क्रिस्टल (crystal) यदि उस पदाथ के विलयन मे डुबाया गया हो जिसका वह स्वय बना है, तो वह वृद्धि करता है, किन्तु एक कोशिका की वृद्धि एक अधिक जटिल विषय है जिसमें अपने चारों ओर की वस्तुओं से बहुत-सी वस्तुयें छाँटी जाती हैं, उनका एकत्रीकरण और संयोग होता है जो यद्यपि आवश्यक तत्वों को निहित रखती है तथापि सरल रूप में प्राप्त की जाती हैं और पौध में उनका विस्तृत संश्लेषण होता है।

जीवित जीव का व्यवहार संलग्नता का विशिष्ट रूप भी रखता है; वह यांत्रिक और अपरिवर्तनशील नहीं होता, बल्कि जीव के कल्याण से सम्बन्ध रखता है। चीड़ के तने का अग्र भाग ऊर्ध्वाधर रूप से (vertically) ऊपर की ओर वृद्धि करता है, और पार्श्विक शाखायें क्षैतिज रूप में रहती हैं। किन्तु यदि मुख्य शाखा को हटा दिया जाय तो एक पार्श्विक शाखा ऊपर को बढ़ सकती है और उसका स्थान ग्रहण कर सकती है। जीवित जीवों की तुलना यांत्रिकत्व से करना एक प्रचलन हो गया है और यांत्रिकत्व के विलक्षण संवर्धन की दृष्टि से इस तुलना के न्याय पर विवाद करना अभद्रता हो सकता है; किन्तु साथ ही यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि किसी भी जीवित जीव के व्यवहार की जटिलता मनुष्य द्वारा निर्मित था अनुमानित सर्वाधिक विस्तृत यांत्रिकत्व से भी महान है।

यदि ऐसे फौजी टैंक बनाये जा सकते हों, जो चालक बिना ही चलाये जा सकते हों, उत्कृष्ट समर-तन्त्र (tactics) के विचार का अनुगमन कर आगे या पीछे बढ़ सकते हों, देश के ऊपर नैपोलियन की सेनाओं की अपेक्षा अधिक निरंकुशता रख सकते हों: यदि वे कृत्रिमतः उत्पन्न गोलाबारूद दाग सकते हों और अपनी तोपों में गोला फिर से भर सकते हों, उलट जाने पर स्वयं सीधे हो सकते हो, टूटने-फूटने पर स्वयं अपनी मरम्मत कर सकते हों: यदि वे स्त्री-पुरुष के जोड़े के समान बन सकते हों और टैंकों का नया कोर उत्पन्न कर सकते हों जिनमें से प्रत्येक सूक्ष्मदर्शीय रूप से, प्रारंभ होकर अपने जनकों के समान प्रौढ़ बन सकते हों: और यदि वे समय की मांग पर उत्कृष्टता और अधिक जटिल प्ररूप विकसित कर सकते हों, और निम्नतर सरलतर रूप भी बन सकते हों जो ऐसा होने पर भी कुछ रण-क्षेत्रों में अधिक कार्यशील सिद्ध हो सकते हों--तब टैंक एक सजीव जीव के भद्दे सक्रिय नमूने का काम कर सकता है।

सजीव जीव अपने आत्म-दमन और आत्म-संहार की शक्तियों के लिए भी आत्म-रचना की शक्ति से कम उल्लेखनीय नहीं होता। पौधे के संवर्धन की प्रत्येक प्रावस्था पर ऊतकों के क्षेत्र विभेदित होते हैं, जिनकी सब या अनेक कोशिकाएं सतत कोशिका-विभाजन (cell division) की शक्ति त्यक्त कर देती हैं जो विभज्योतकी कोशिकाओं में, जिनसे वे निर्मित होती हैं, निहित होती हैं। कुछ दशाओं में यह शक्ति केवल प्रसुप्तावस्था में होती है और कुछ परिस्थितियों में पुनः संचालित हो सकती है उदाहरणार्थ बीगोनिया की पत्ती की एकाकी कोशिका भ्रूणीय (embryonic) बन सकती है, विभाजित हो सकती है, और एक नये पौधे को उत्पन्न कर सकती है; किन्तु अन्य उदाहरणों में कोशिका-विभाजन की भ्रूणीय (embryonic power) शक्ति सर्वथा लुप्त हो जाती है, उदाहरणार्थ, यह काष्ठ निर्मायक कोशिकाओं द्वारा होता है जो अपनी भित्तियों के लिग्नीभवन और अपने कोशिकाद्रव्य की मृत्यु द्वारा जल के संवाहन में भाग लेने मात्र के योग्य ही अपने को बना सकती है। इस प्रकार, मनुष्यों की भाँति, पौधों की कोशिकाओं में विशिष्टीकरण से सीमाबंधन उत्पन्न होता है और किसी विशेष दिशा में गंभीर अभ्यास के कारण व्यापक शक्तियों के सीमाबंधन का अर्थ उन व्यापक शक्तियों का या तो दमन या लोप हो सकता है। वे या तो सदा के लिए लुप्त हो सकती हैं या, जैसे वल्कुट की कोशिकाओं के सबध में होता है जो पौधा कोशिकाएं उत्पन्न करती हैं, एक उद्दीपक उनके दीर्घ-कालीन दमन के याद वृद्धि और विभाजन की व्यापक शक्ति अक्षुण्ण उत्पन्न करने में समर्थ हो सकता है।

जो बात कोशिकाओं और ऊतकों के लिये ठीक है, वही सम्पूर्ण पौधे के लिए भी सत्य हो सकती है। एक वार्षिक पौधा बीज उत्पन्न कर मृत हो जाता है। कोई नहीं जानता कि वह क्यों मरता है। यदि बीज उत्पन्न करने से रोक दिया जाय—जैसे, उदाहरणार्थ, फूल ज्यों ही उत्पन्न होते हैं, उन्हें तोड़ दिया जाय, या अतिशय सिंचाई द्वारा पुष्प निर्माण में बाधा पहुँचायी जाय, तो वार्षिक पौधा कई वर्षों तक जीवित रह सकता है। शाकीय बहुवर्षी पौधे पुष्प लगने के पश्चात् प्रति वर्ष मृत हो जाते हैं; किन्तु प्रति वर्ष के प्ररोह की मृत्यु किस कारण होती है, यह बात अज्ञात है। पौधे के हित के लिए इसकी आवश्यकता होती है और त्याग किया जाता है, क्योंकि प्रत्यक्षतः पूर्ण जीवन को सुषुप्त कर शुष्क पवनों और कठोर मौसम से भूमि के नीचे सुरक्षित रह कर आश्रय लेना तथा शीतकाल व्यतीत करने का यह सुविधाजनक उपाय है।

प्रत्येक पत्ती जो शरद् ऋतु (शीत देशों में पतझड़ की ऋतु) में भूमि पर गिर जाती है अपने साथ एक रहस्य रखती है। यह पौधे के लिए (शीत देशों में) अच्छी बात है कि शीतकाल आने के पूर्व पत्तियाँ गिर जायँ और उनके शुष्कन (desiccation) की आशंका न्यून हो जाय। पौधा अपने लिये निश्चित कर लेता है कि पत्ती पृथक् हो जाय। वह पर्णवृंत के आधार पर काग की एक परत—एक विलग परत (absciss layer) निर्मित कर जल प्रदाय को अवरुद्ध कर देता है। किन्तु वनस्पति जगत् ने ऐसे कठोर व्यय-नियंत्रक विधि (sumptuary laws) को किस प्रकार सर्व प्रथम सहन किया, आज यह एक कल्पना की ही बात है। पतझड़ का नियम केवल आर्द्र और शुष्क, या अल्प कोष्ण और शीत के एकान्तरित ऋतुओं के देशों के लिए ही है। जहाँ पर एकसमान ऋतु होती है, यह नियम लागू नहीं होता। वहाँ पर पत्तियाँ नियमतः सदाबहार और वृक्ष से उस समय तक संयोजित रहती हैं, जब तक कि कुछ वर्षों के बाद वृद्धावस्था के कारण वे एक-एक कर गिर नहीं जाती।

खाद्याभाव होने पर पौधों द्वारा प्रदर्शित नियमित आत्म संहार की शक्ति कोशिकाओं, ऊतकों या सम्पूर्ण पौधों में चरम अभिव्यक्ति तक पहुँचती है। खाद्य प्रदाय से पृथक् हो जाने पर कोशिका कुछ समय तक जीवित पड़ी रहती है, क्रमशः उसका सारा संचित खाद्य प्रयुक्त हो जाता है, और तब भी वह जीवित रहती है; वास्तविक रूप में वह स्वयं को खाती रहती है। इन परिस्थितियों में कोशिका-द्रव्यीय तथा केन्द्रकीय पदार्थ के अपघटन द्वारा ऊर्जा और पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं और जब यह अपघटन बहुत दूर तक पहुँच गया हो ताकि पुनर्जीवन असंभव होता है तब मृत्यु अवश्यंभावी होती है।

किन्तु सामान्य अवस्थाओं में पौधा आवश्यक ऊर्जा इससे न्यून उग्र विधियों

से प्राप्त करता है। प्रकाश-संश्लेषण द्वारा निर्मित शर्करा अणुओं में संश्लेषण प्रक्रम के काल में गुप्त निर्मित ऊर्जा का संग्रह सन्निविष्ट होता है। इन संग्रहों की निर्मुक्ति करना पौधों और जन्तुओं की सक्रिय कोशिकाओं का सतत कार्य होता है। यह प्रक्रम, जो श्वसन कहलाता है, सभी सक्रियतः सजीव जीवों में किसी न किसी रूप में संचालित होता है। क्योंकि जीवन अपनी अभिव्यक्ति तभी कर सकता है जब सजीव जीव के अधिकार में ऊर्जा हो।

हरे पौधे में ऊर्जा के प्रदाय का मुख्य स्रोत कार्बोहाइड्रेट (या कभी वसामय) खाद्य पदार्थ में निहित होता है। कार्बोहाइड्रेट का श्वसनीय अपघटन तथा फलतः ऊर्जा की निर्मुक्ति अंकुरणशील बीज या पौधे के किसी भी भाग, पत्तियों, प्रसारी कलिकाओं, पुष्पों आदि में, जिनमें जीवन सक्रिय हो, प्रदर्शित हो सकती है। इसे प्रदर्शित करने के लिए श्वसन का प्रक्रम प्रकाश-संश्लेषण द्वारा अल्पदृश्य होने से बचाने का ध्यान रखना चाहिए, और यह या तो पौधों के अहरित भाग परीक्षण के लिए चुनने द्वारा या उन भागों से जो हरे हों, प्रकाश को दूर रखने द्वारा हो सकता है। बीज तुरंत उसी समय श्वसन प्रारम्भ कर देते हैं जिस समय उन्हें सक्रियता में चेतन करने के लिए यथेष्ट जल अवशोषित हो चुका रहता है। बैराइटा जल उपकरण के प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि अंकुरणशील बीज से कार्बन डाइऑक्साइड सतत और प्रचुर मात्रा में निर्मुक्त होती है। गैस के निकास के साथ संचित कार्बोहाइड्रेट का अनवरत ह्रास होता है। पौधे जितने ही अधिक समय तक अँधेरे में रक्खे जायँ, कार्बोहाइड्रेट के संग्रह का उतना ही अधिक ह्रास होता है और फलतः उतना ही शुष्क भार न्यून होता है। कार्बन डाइऑक्साइड का सतत निकास ऑक्सीजन के प्रदाय पर निर्भर करता है। यदि अंकुरणशील बीज तक ऑक्सीजन की पहुँच रोक दी जाय तो वृद्धि और कार्बन डाइऑक्साइड के निकास में अवरोध उत्पन्न होता है। अवशोषित ऑक्सीजन और निकसित कार्बन डाइऑक्साइड के मध्य कोई गहरा संबंध होता है, यह निष्कर्ष इस तथ्य से निकाला जा सकता है कि मंडीय बीजों में निर्मुक्त कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा प्रायः अवशोषित ऑक्सीजन के अणु प्रति अणु के बराबर होती है—क्योंकि एक प्राप्त ऑक्सीजन अणु के बदले एक कार्बन डाइऑक्साइड अणु निकसित होता है। यह तो इसी प्रकार है मानो श्वसन निम्न-समीकरण से प्रकट किया जा सकता है:

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 = 6CO_2 + 6H_2O$$

शर्करा ऑक्सीजन कार्बन जल
डाइऑक्साइड

यदि श्वसन—जैसा कि समीकरण इंगित करता है—दहन (combustion) से तुलनीय है तो यह प्रदर्शित करना संभव हो सकता है कि श्वसन के साथ-साथ ऊष्मा का निकास होता है। यह सरलता से किया जा सकता है। श्वसन में ऊष्मा के उत्पादन का प्रदर्शन करने के लिए पानी में भिगो कर पहले ही मोटे बनाये निर्जर्मित (sterilized) बीजों से एक थर्मस फ्लास्क भर लेना यथेष्ट है। एक फ्लास्क में डुबोया और कपास द्वारा स्थिर बनाया तापमापी अंकुरण अग्रसर होने पर कई अंशों की ऊष्मा चढ़ाव अंकित करता है। पौधे के अन्य भाग—उदाहरणार्थ पत्तियाँ—ताप का इसी प्रकार चढ़ाव प्रदर्शित करते हैं। एक फेल्ट (नमदे) से आवृत्त संदूक में कस कर ठूस रखने पर पत्तियों की संहति इन असामान्य अवस्थाओं में ताप का इतना चढ़ाव उत्पन्न करती है कि पत्तियाँ मृत हो सकती हैं। थर्मस फ्लास्क में रखे हुये अनिर्जर्मित बीज निर्जर्मित बीजों की अपेक्षा अधिक तापक्रम की वृद्धि प्रदर्शित कर सकते हैं क्योंकि कवक और जीवाणु श्वसन क्रिया करते हैं और इस क्रिया में ऊष्मा का निकास करते हैं। वे घने रखे हुये बीजों के ऊपर या बीच में वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थिति पाते हैं, और वहाँ बढ़ते हैं और संख्या-वृद्धि करते हैं, तथा अपने श्वसन की ऊष्मा से जो उनके द्वारा निकलती है, अपनी उपस्थिति का आभास दे देते हैं।

इन सब तथ्यों को एक साथ रखने पर श्वसन क्रिया की प्रकृति और महत्व का आभास हो जाता है। पौधे की जीवित कोशिकाएं ऑक्सीजन का अवशोषण करती हैं और शर्करा का ऑक्सीकरण करती हैं जिसमें कार्बन ऑइआक्साइड और जल का निर्माण होता है और ऊर्जा निर्मुक्त होती है।

यद्यपि जो समीकरण अभी दिया गया है आरम्भ और अन्त का निरूपण कर सकता है लेकिन यह रासायनिक क्रियाओं के मध्यस्थ अवस्थाओं के बारे में कुछ नहीं बतलाता। स्टार्च या शर्करा के दहन के लिए ऊष्मा की आवश्यकता होती है, तथा यह निश्चय है कि जीवित कोशिका में इनको जलाने के लिए पर्याप्त ऊष्मा नहीं होती है। लेकिन पौधों की रासायनिक क्रियाओं में उत्प्रेरकों (catalysts) द्वारा क्रिया करने के ज्ञान से यह ज्ञात होता है कि शर्करा का साधारण ताप पर श्वसन विच्छेदन, एन्जाइम के द्वारा होता है। इस अनुमान की पुष्टि इस तथ्य से होती है, ऑक्सीडेसेस अर्थात ऑक्सीकरण करने वाले एन्जाइम साधारणतया पौधों में पाये जाते हैं। छिलका निकाले हुये सेब और मुर्झायी हुई पत्तियों का भूरा होना, और आलू का उबालने पर काला पड़ जाना ऑक्सीडेसेस का इन पौधों में निहित वस्तुओं पर क्रिया होने के उदाहरण हैं जो कि जब ऑक्सीजन से मिलते हैं तो काले वर्णक

(pigments) बनाते हैं। इसलिए यह सम्भव है कि पौधों में कुछ ऐसे कारक हैं—श्वसन एन्जाइम—जो शर्करा या अन्य श्वसन पदार्थ के ऑक्सीकरण की गति को बढ़ाते हैं। इस बात के प्रमाण की भी कमी नहीं है कि कार्बोहाइड्रेट का ऑक्सीकरण विशेष उत्प्रेरकों द्वारा संपादित होता है क्योंकि किसी पौधे को इस प्रकार उपचारित किया जाना सम्भव है कि यद्यपि उसका जीवद्रव्य नष्ट कर दिया गया हो, लेकिन कार्बन डाइऑक्साइड कुछ समय तक निकलता रहता है। जब ऑक्सीजन दिया जाता है तो गैस के निकलने की गति तीव्र हो जाती है, लेकिन जब ऑक्सीजन नहीं पहुँचाया जाता तब भी थोड़े समय के लिए धीमी गति से ऑक्सीजन निकलता रहता है।

यह एक नया तथ्य है: ऑक्सीजन के बिना कार्बन-डाइऑक्साइड का श्वसनीय निकास? लेकिन यह अकेले नहीं है। पास्तुर के यीस्ट के बारे में विख्यात अन्वेषणों के समय से यह ज्ञात है कि कुछ ऐसे पौधे हैं जो ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में जीवित रह सकते हैं। यह भी ज्ञात है कि उच्चतर पौधों के जीवित कोशिकाएँ कार्बन डाइऑक्साइड निकाल सकते हैं जब कि वे ऑक्सीजन-रहित वायुमंडल में रखे जायँ। जब यह होता है तो, कार्बन डाइऑक्साइड के बाहर निकलने के साथ-साथ ऊतकों में ऐल्कोहॉल की पर्याप्त मात्रा उपस्थित हो जाती है जो कि उसकी विशिष्ट गंध और रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा पहचानी जा सकती है। यह परिवर्तन निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$C_6H_{12}O_6 = 2C_2H_5OH + 2CO_2$$

शर्करा एथिल ऐल्कोहॉल कार्बन डाईऑक्साइड

यह आणविक विदारी परिवर्तन है—शर्करा का अणु विच्छेदित होता है लेकिन ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में विच्छेदन पूर्ण नहीं होता। इसलिए पूर्ण संगृहीत ऊर्जा के बाहर निकलने के बजाय, जैसा कि शर्करा के पूर्ण श्वसन दहन में होता है और पानी और कार्बन डाईऑक्साइड बनती है, केवल ऊर्जा का कुछ भाग ही निर्मुक्त होता है। बाकी भाग ऐल्कोहॉल के अणु में संगृहीत रहता है, जो तथ्य इस बात से साबित हो जाता है कि जब ऐल्कोहॉल ऑक्सीजन के साथ मिलकर जलता है तो पानी और कार्बन डाइऑक्साइड बनते हैं और ऊर्जा निर्मुक्त होती है।

इसलिए ऑक्सीजन के बिना श्वसन एक बहुव्यय क्रिया है। ऊर्जा के किसी खास मात्रा के प्रदाय के लिए अधिक शर्करा के अणुओं का विच्छेदन करना पड़ेगा बजाय उस समय के जब ऑक्सीजन उपस्थित हो और शर्करा का दहन पूर्ण हो।

ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में श्वसन क्रिया के दौरान में साधारण पौधों के ऊतकों में ऐल्कोहॉल का निर्माण यह संकेत करता है कि सामान्य तौर पर अवायु

श्वसन (anaerobic respiration) और यीस्ट द्वारा संपादित किण्वन में कुछ सम्बन्ध है, क्योंकि उस क्रिया मे भी शर्करा विलुप्त होती है और ऐल्कोहॉल और कार्बन डाइआक्साइड बनते हैं। अन्य पौधों के अतिरिक्त यीस्ट पौधा ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में जीवित रहने के लिये बहुत अधिक निपुण है। जब यीस्ट को ऑक्सीजन और उचित खाद्य-पदार्थ प्राप्त होते रहते हैं तो यह अच्छी तरह वृद्धि करता है। इसकी कोशिकाएं वृद्धि करती हैं, विभाजित होती हैं और यीस्ट संहतियों का निर्माण करती है। लेकिन इन परिस्थितियों में प्रत्येक यीस्ट कोशिका बहुत कम ऐल्कोहॉल निर्माण करती है। जो शर्करा वे अपने अन्दर लेते हैं अधिकतर पूर्णतः ऑक्सीकृत होकर कार्बन डाइ-आक्साइड और जल बनाता है। लेकिन जब यीस्ट एक ऐसे माध्यम में रख दिया जाता है जहाँ कि पहले के समान खाद्य-पदार्थ हों लेकिन ऑक्सीजन न हो तो यह बिलकुल ही भिन्न रूप में व्यवहार करता है। वृद्धि और कोशिका-विभाजन की गति मन्द हो जाती है, लेकिन प्रत्येक कोशिका द्वारा एल्कोहॉल निर्माण की गति अधिक तीव्र हो जाती है। अवायु जीव के लिए भी ऑक्सीजन के बिना जीवन एक सरल बात नहीं है। यीस्ट कोशिका जीवित रहती है लेकिन ऊर्जा केवल अपेक्षतया बहुव्यय प्रक्रम से अर्थात् शर्करा के अणु का एल्कोहॉल और कार्बन डाइऑक्साइड में विच्छेदित कर ही, प्राप्त कर सकती है। लेकिन प्रसगवश ऐल्कोहॉल का अत्यधिक निर्माण यीस्ट पौधे के लिए उपयोगी है। यीस्ट इसकी अधिक मात्रा को भी सह सकता है जबकि अधिकतर जीवाणु जो आक्सीजन की अनुपस्थिति में जीवित रह सकते हैं इसको नहीं सह सकते, इसलिए तेज शराब के बनाने में यह सब से उच्चतर है। वह कारक जिसके द्वारा यीस्ट कोशिका शर्करा को विच्छदित कर अन्त में कार्बन डाइऑक्साइड और जल बनाती है उससे निष्कषित (extracted) की जा सकती है और उससे वही क्रिया की जा सकती है। यदि यीस्ट कोशिकाएं शिल में पीसी जायं जब तक कि उनकी कोशिका-भित्तियाँ फट कर उसके अन्दर की अन्तर्वस्तुएं बाहर निकल जाय और तब उन पर उच्च दबाव डाला जाय तो यीस्ट का रस यद्यपि इसमें कोई पूर्ण यीस्ट कोशिकाएं नहीं रहती हैं, तब भी जीवित यीस्ट कोशिका के समान शर्करा का तेजी से किण्वन कर ऐल्कोहाल और कार्बन डाइऑक्साइड बनाती है। एन्जाइम के समान उत्प्रेरक कर्ता जिसको जाइमेस कहते हैं, जो किण्वन क्रिया को सम्पादित करता है, यीस्ट के कोशिकाओं से रासायनिक विधियों से प्राप्त किया जा सकता है। इस क्रिया में कोशिका के जीवद्रव्य को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया जाता है और इतनी आसानी से कि जाइमिन के समान पदार्थ जिसमें जाइमेस रहता है आजकल व्यावसायिक रूप में प्रयोग किये जा रहे हैं।

यीस्ट और अन्य सूक्ष्मजीवों द्वारा शर्करा के ऐल्कोहॉली किण्वन के सविस्तार अध्ययन द्वारा किण्वन सम्पादित करने वाले जीवाणुओं के शरीर-क्रियात्मक जीवन-वृतों और विशेषताओं के ज्ञान में बड़ी वृद्धि हुई है और श्वसन की रासायनिक क्रिया में भी नया प्रकाश डाला है। अतएव यह ज्ञात हुआ है कि यीस्ट की विभिन्न जातियों की भिन्न-भिन्न किण्वन की शक्ति होती है। एक जाति डेक्स्ट्रोस का किण्वन कर सकती है लेकिन इक्षु-शर्करा का नहीं, अन्य जिनमें इन्वर्टेस होता है, इक्षु-शर्करा और डेक्स्ट्रोस दोनों का किण्वन कर सकती है, अन्यों में और भी अधिक शक्ति होती है और वे माल्टोस का भी किण्वन कर सकती हैं। अतएव भिन्न-भिन्न किण्वन की शक्ति रखने वाले यीस्ट और अन्य अणुजीवों के द्वारा एक शर्करा को दूसरी शर्करा से अलग किया जा सकता है। यीस्ट पादप के शरीर रूपी चक्की में पीसने पर एक, लिया जा सकता है और दूसरा छोड़ दिया जाता है। अणुजीवों के वरणात्मक शक्ति (selective power) का उच्च कोटि का उदाहरण पास्तुर ने अनुसन्धान किया था। पैनिसिलियम नामक कवक की एक जाति रेसिमिक अम्ल में उगाई जा सकती है जिसमें डेक्स्ट्रो और लीवो टार्टरिक अम्ल होने के कारण वह प्रकाशतः ऋण (optically inactive) है। पैनिसिलियम की वृद्धि के साथ माध्यम वामावर्ती (laevo-rotatory) हो जाता है क्योंकि कवक डेक्स्ट्रो को तो ग्रहण कर लेता है, लेकिन लीवो टार्टरिक अम्ल को छोड़ देता है।

किण्वन की रासायनिक क्रिया के बारे में जो अब तक ज्ञान प्राप्त हुआ है उससे यह स्पष्ट है कि यह प्रक्रम बड़ा जटिल है, और कई अवस्थाओं में सम्पादित होता है, तथा इसमें अनेक मध्यवर्ती पदार्थ बनते हैं। इसलिए यह भी सम्भव है कि पौधों और जन्तुओं द्वारा की जाने वाली सामान्य श्वसन क्रिया भी संकीर्ण है और क्रमिक है। यह भी मानना ही पड़ेगा कि हरे पौधों की कोशिकाओं द्वारा ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में जो अवायु श्वसन सम्पादित होता है वह भी जाइमेस के समान शक्ति रखने वाले एन्जाइम के समान उत्प्रेरक द्वारा होता है, और यह भी बहुत सम्भव है कि यह क्रम सामान्य श्वसन में भी घटित होता है। इस दृष्टिकोण से पादप और जन्तु कोशिका का श्वसन अवस्थाओं में होता है। प्रथम प्रावस्था में शर्करा ऐल्कोहॉल और कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित होती है और इस परिवर्तन में ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी प्रावस्था (phase) में ऐल्कोहॉल (या कोई दूसरा पदार्थ जो यदि अआक्सीकृत हो लेकिन ऐल्कोहॉल बनाता हो) का ऑक्सीकरण होता है और कार्बन डाइऑक्साइड और जल बनता है।

1. $C_6H_{12}O_6 = 2C_2H_5OH + 2CO_2$
डेक्स्ट्रोस ऐल्कोहॉल कार्बन डाइऑक्साइड

2. $C_2H_5OH + 3O_2 = 2CO_2 + 3H_2O$
ऐल्कोहॉल ऑक्सीजन कार्बन डाइऑक्साइड जल

सामान्य श्वसन में शर्करा ही ऐसा पदार्थ नहीं है जो उपभुक्त हो सकता है। अनेक बीजों में कार्बोहाइड्रेट के स्थान पर वसा का संचय रहता है। जब अंकुरण आरम्भ होता है, वसा को तोड़ने वाले एन्जाइम बीज में दिखलायी पड़ने लगते हैं और वसा को ग्लिसरीन और वसीय अम्ल में जल-अपघटित करते हैं जो पदार्थ प्रत्यक्षः या अप्रत्यक्षतः रचनात्मक या ऊर्जा निर्मुक्ति के कार्यों में काम में आता है। अन्त में जब सब संचित पदार्थ क्षय हो जाते हैं तो क्षुधा पीड़ित कोशिका अब भी अपने प्रोटीनों को विश्लेषित कर ऊर्जा प्राप्त कर सकती है; लेकिन जब नाश द्वारा जीवद्रव्यीय तन्तु अलग हो जाते हैं तो जीवन नष्ट हो जाता है।

यह कहना आवश्यक नहीं है कि यद्यपि अंकुरित बीजों में श्वसन अधिक तीव्र गति से होता है, लेकिन यह केवल इन्हीं में नहीं होता। यह पौधों के हर भाग में होता है यद्यपि धीमी गति से। वास्तव में प्रत्येक जीवित कोशिका को यदि जीवित रहना है तो उसे अपने ऊर्जा के निर्मुक्ति का कार्य या तो शर्करा का ऑक्सीकरण या उसको विश्लेषित कर, या किसी अन्य ऊर्जा सम्पन्न पदार्थ को आक्रमण कर विच्छेदन करना पड़ता है और अपशिष्ट पदार्थ बनते हैं जो कि अल्प ऊर्जा वाले होते हैं।

हरी पत्ती की श्वसन क्रिया का विशेष उल्लेख आवश्यक है। जब एक कलिका खुलती है और सूक्ष्म हरी पत्तियाँ खुलती हैं तो उनमें खाद्य-पदार्थ की अधिक मात्रा होती है। पर्णहरित उपकरण यद्यपि विकसित रहता है, तब भी उसको कार्य करने के योग्य होने के लिए कुछ समय लगता है। उस समय निचित खाद्य-पदार्थ, रचनात्मक और श्वसन कार्य के लिए उपयोग में आते हैं। तथापि, तुरन्त प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया आरम्भ होती है और प्रतिदिन पत्ती की हरी कोशिकाओं में कार्बोहाइड्रेट की अधिक मात्रा बनती जाती है। इस प्रकार बने हुए कार्बोहाइड्रेट पर प्रथम अधिकार पत्ती का ही होता है, और दिन और रात निरन्तर कुछ कार्बोहाइड्रेट श्वसन क्रिया में और कोशिका निर्माण और मरम्मत में काम आता है। फिर भी, पौधे के बाकी भाग की जरूरत के लिए काफी हिस्सा बच रहता है। यद्यपि अतिरिक्त प्रदाय के अभिगमन का कार्य निरंतर दिन भर चलता रहता है, तब भी यह संध्या तक पूरा नहीं होता, और रात में जारी रहता है, ताकि प्रातःकाल सूर्य के निकलने तक हरी कोशिकाओं

में संचित कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बिलकुल नहीं रह जाती और वे फिर निर्माण कार्य प्रारम्भ करते हैं। इसलिए दिन में पत्ती एक ही साथ श्वसन और प्रकाश-संश्लेषण की दोनों क्रियायें सम्पादित करती है। एक में, कार्बन डाइऑक्साइड प्रयोग में आता है, और दूसरे में यह बाहर निकलता है, लेकिन स्वांगीकरण की क्रिया इतनी तीव्र गति से होती है कि यह श्वसन क्रिया को ढक देती है।

इसके विपरीत, रात्रि में जब स्वांगीकरण का कार्य बन्द रहता है, तो श्वसन क्रिया अप्रच्छादित रहती है। इसका प्रयोगात्मक रूप में प्रदर्शन करने के लिए प्रकाश को रोकना ही काफी है। है यदि ऐसा किया जाय और कार्बन डाइऑक्साइड रहित वायु बैराइट जल उपकरण में पत्तियों के ऊपर भेजी जाय तो बैराइटा जल का दूधिया बन जाना यह प्रदर्शित करता है कि कार्बन डाइऑक्साइड निकल रही है। यह तथ्य प्रत्यक्ष रूप से उस प्रचलित शंका का आधार है कि रात्रि में फूलों का कमरे में रखना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। यह सत्य है कि फूल रात्रि में कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकालते हैं लेकिन यह भी इससे कम सत्य नहीं है कि जो गैस वे निकालते हैं उसकी मात्रा इतनी कम होती है कि यह उस कमरे में सोने या जगने वाले कमजोर से कमजोर आदमी पर भी प्रभाव नहीं डाल सकता।

यह भी कहा जा सकता है कि श्वसन क्रिया जो पौधों और जन्तुओं के सब जीवित कोशिकाओं में होती है, पौधों में जन्तुओं की अपेक्षा मन्द होती है। केवल सक्रिय विभज्योतकी ऊतकों और कुछ तीव्र गति से वृद्धि करने वाले कवकों और जीवाणुओं में पौधों में श्वसन की क्रिया जन्तुओं की श्वसन क्रिया की गति तक पहुँच पाती है। साधारणतः पौधों में मन्द श्वसन की एक व्याख्या का एक संकेत इस तथ्य से हो सकता है कि उच्चकोटि नियततापी (warm-blooded) जन्तुओं को अपने शरीर का तापक्रम एक निश्चित स्तर पर रखने के लिए ताप उत्पादन का भारी कार्य करना पड़ता है।

यीस्ट पादप श्वसन की प्रकृति का स्पष्टीकरण करने में इतना उपयोगी सिद्ध हुआ है कि इसका कुछ अधिक अध्ययन करना आवश्यक है। अन्य पौधों के समान यीस्ट की संख्या में वृद्धि करने के लिए आवश्यक है कि उसको केवल ऊर्जा ही नहीं बल्कि पदार्थ की आवश्यकता है। ऊर्जा इसको शर्करा के श्वसन द्वारा प्राप्त होती है लेकिन सब शर्करा जो इसको मिलती है इस प्रकार काम नहीं आती। कुछ रचनात्मक कार्यों के काम में आती है। नाइट्रोजन युक्त पदार्थों से यह नाइट्रोजन भी प्राप्त करती है, जैसे अमोनियम टार्टरेट जो से, वनस्पति मलवा में मिलता है जिसमें यीस्ट पाया जाता है। अन्य किसी पादप कोशिका के पोषण के कार्य के समान यीस्ट को भी कार्बोहाइड्रेट,

प्रोटीन संश्लेषण के लिए उपयुक्त नाइट्रोजन यौगिक और आवश्यक खनिज पदार्थों की आवश्यकता होती है।

एक बार यदि ऐल्कोहॉली किण्वन (alcoholic fermentation) की सार्थकता समझ में आ जाय तो अनेक प्रकार के किण्वन समझ में आ जाते हैं। किसी भी प्रकृति में पाये जाने वाले पदार्थ जिसके आक्सीकरण या विच्छेदन से ऊर्जा निर्मुक्त होती है किसी भी सूक्ष्मजीवों द्वारा ऊर्जा के स्रोत के लिए उपयोग में आ सकता है। यदि यह उपयुक्त उत्प्रेरकों द्वारा शक्ति के संग्रह को खोल सकता है तो उसके जीवन को साधन मिल जाता है। इसको रचनात्मक कार्यों के लिए भी पदार्थ चाहिए, लेकिन जीवन का मलवा काफी है और इसमें नाइट्रोजन और अन्य आवश्यक पदार्थ इतनी मात्रा में रहते हैं कि सूक्ष्मजीवों की संख्या-वृद्धि के लिए तथा उनके विकास के लिए काफी होते हैं।

अहरित मृतजीवी पौधों की निम्न दुनिया का सदस्य होने के लिए प्रवेशकों के पास श्वसन उत्प्रेरक या सामान्य मृत चीजों के अवशेषों, जिनमें कार्बनिक पदार्थ रहते हैं, से ऊर्जा खींचने की शक्ति होनी चाहिए। प्रत्येक पदार्थ जिसमें ऊर्जा की प्रचुर मात्रा हो और जो उन स्थानों में अधिकतर रहते हैं जहाँ चीजें जिन्दा रहती हैं और मरती हैं—सूक्ष्मजीवों के लिए उनकी दुनिया है और जो उत्प्रेरक रूपी तलवार से खुलती है। जब तक कि ऊर्जा को निर्मुक्त करने की क्रिया पूरी नहीं हो जाती और शक्ति उत्पादन के कच्चे पदार्थ क्षय नहीं हो जाते तब तक जो वहाँ कब्जा किये रहते हैं वे अपने उत्तराधिकारियों के लिए जगह नहीं छोड़ते, और पूर्वाधिकारियों द्वारा बनाये हुए अपशिष्ट पदार्थ जो विषैले या उनके लिए बिना काम के हों उनको उपयोग में लाने की क्षमता उत्तराधिकारियों में होनी चाहिए।

इस प्रकार जीवन के कार्बनिक क्षय की अवनति कई रास्तों द्वारा हो सकती हैं। शर्करा किसी जन्तु या पौधों के कोशिकाओं द्वारा एक साथ ही कार्बन डाइऑक्साइड और पानी में ऑक्सीकृत हो सकती है। यीस्ट शर्करा को ऐल्कोहॉल और कार्बन डाइऑक्साइड में तोड़ सकता है। ऐसीटिक अम्ल जीवाणु जो शराब को सिरका में बदलते हैं ऐल्कोहाल को ऐसीटिक अम्ल में बदल सकते हैं। यीस्ट के समान दूसरा सूक्ष्मजीव जिसको सैकैरोमाइसीज माइकोडर्मा कहते हैं, ऐसीटिक अम्ल को कार्बन डाइऑक्साइड और जल में बदल सकता है। इसलिए एक शक्तिशाली चक्कर या तीन क्रमिक चक्करों द्वारा परिवर्तन का चक्र, एक पूरा वृत्त बनाता है, फिर सूर्य द्वारा पृथ्वी में भेजी हुई ऊर्जा किसी भी जीव को वितरित हो जाती है जो उसको लेने की क्षमता रखता है।

किण्वन के समान प्रक्रमों में एक सबसे महत्वपूर्ण वह है जो नाइट्रीकारी (nitrifying) जीवाणुओं द्वारा सम्पादित होती है। जो पदार्थ वे किण्वित करते हैं एक जीव में अमोनिया और दूसरे में नाइट्राइट है। एक या दूसरे के ऑक्सीकरण में ऊर्जा की निर्मुक्ति होती है जिसके सहारे जीव जीवित रहता है, और यह भी सम्भव है कि इस प्रकार प्राप्त ऊर्जा नाइट्रीकारी जीवाणुओं के लिए सूर्य के प्रकाश का प्रतिस्थापन कर सकता है और इस प्रकार वे कार्बन डाइऑक्साइड और जल से कार्बन के यौगिकों का संश्लेषण कर सकते हैं।

पौधे विभिन्न प्रकार के पदार्थों से अपने शरीर के निर्माण और ऊर्जा की निर्मुक्ति के लिए उचित पदार्थ खींच लेते हैं। दुख में अनोखे दोस्तों से पाला पड़ता है और जीवन के संघर्ष में, जिसको कोई भी जीव टाल नहीं सकता, अनेक पौधों को बहुत ही अनहोने पदार्थों से ऊर्जा लेने के लिए विशेष योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है। इस विशिष्टीकरण के फलस्वरूप, क्षय की क्रिया नियमित रूप से होती है। जैसे ही कोई जन्तु मरता है तो उसके शरीर में बहुत ही अनुशासनयुक्त मकान तोड़ने वालों के गिरोह अपना कार्य शुरू कर देते हैं। प्रत्येक अपने हिस्से का कार्य करता है, कभी जीवित शरीर के कुछ हिस्सों को तोड़ता है, और अपना कार्य करने के बाद विश्राम करता है क्योंकि उसके भोजन का प्रदाय और ऊर्जा खत्म हो जाता है, इसके बाद दूसरा जीवाणु अपना कार्य प्रारम्भ करता है। अग्रगामियों के कार्य करने के बाद जो अपशिष्ट पदार्थ बच जाते हैं वे उनके उत्तराधिकारियों के लिए ऊर्जा या पदार्थों के स्रोत होते हैं, और यह कार्य निरन्तर चलता रहता है जब तक कि मृत अवशेष भिन्न-भिन्न होकर सारी दुनियाँ में जल, कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन और खनिज पदार्थों के रूप में बिखर नहीं जाते। अपने सम्मिलित प्रयासों के द्वारा प्रकृति के ये जमादार (scaven gers) दुनिया को रहने योग्य बना देते हैं।

जीवाणुओं और कवकों के जीवन के रहन-सहन के सिंहावलोकन से एक बड़ा रोचक फल यह निकलता है कि ज्यादातर जातियाँ या तो मृतजीवी हैं या परजीवी, लेकिन कुछ उदाहरणार्थ नाइट्रीकारी जीवाणु हरे पौधों के समान स्वावलंबी हैं। यह सम्भव है कि अहरित जीव जो कि स्वावलम्बी है, अर्थात् अकार्बनिक यौगिकों से अपना भोजन स्वयं संश्लेषित कर सकते हैं, उनके विषय में जितना कि अब भी साधारणतया अनुमान लगाया जाता है उससे कहीं अधिक बहुसंख्यक हैं। कुछ सल्फर जीवाणु जो कि अकार्बनिक जगत् से कार्बनिक जगत् में और फिर विपरीत दिशा में गंधक का एक सतत चक्र जारी रखने में भाग लेते हैं, नाइट्रीकारी जीवाणु के समान ऐसे माध्यम में जिससे कार्बनिक पदार्थ न हो, जीवित रह सकते हैं। अर्थात् ऐसा

लगता है कि इस बड़े वर्ग जिसको जीवाणु कहते हैं, में केवल वे ही पौधे नहीं हैं जिनमें पर्णहरित का अभाव रहता है और जो मृतजीवी या परजीवी जीवन व्यतीत करते हैं तथा हरे पौधों द्वारा बनाये भोजन पर निर्वाह करते हैं, लेकिन इस वर्ग में जीव के वे आदिकालीन रूप भी सम्मिलित है जो हरे पौधों और सूर्य के प्रकाश के अभाव में भी अपना अस्तित्व बनाये रख सकते हैं। जो भी हमें ज्ञात है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि ये जीव उस जीवन की दुनिया के उत्तरजीवी जीव हैं जो कि प्रथम हरे पौधों के पहले विद्यमान थे।

स्वपोषित (autotrophic) पौधों और परपोषित (theterotrophic) पौधों के बीच में विभाजन-रेखा बिलकुल साफ-साफ नहीं है। कुछ सूक्ष्मजीव ऐसे हैं जो प्रत्यक्ष रूप से कार्बन के प्रदाय के लिए कार्बनिक यौगिकों पर निर्भर रहते हैं, लेकिन फिर भी नाइट्रोजन के अकार्बनिक स्रोतों का भी उपभोग कर सकते हैं। नाइट्रोजन यौगिकीकारक जीवाणु जो शिंबी और अन्य पौधों की जड़ों पर सहजीवी का जीवन बिताते हैं, उन पौधों के उदाहरण हैं जो नाइट्रोजन के प्रति स्वपोषित हैं और कार्बन के लिए परपोषित हैं। वास्तव में यह विश्वास करने का कारण है कि नाइट्रोजन यौगिकीकारक ग्रंथिका जीव उन पौधों की जड़ों से जिनमें वे रहते हैं कार्बोहाइड्रेट का प्रदाय लेते हैं। इसके साथ-साथ यह भी ज्ञात है कि कुछ ऐसे नाइट्रोजन यौगिकीकारक जीवाणु भी विद्यमान हैं जो उच्चतर पौधों के साथ सहजीवी जीवन व्यतीत नहीं करते। उर्वर भूमि और समुद्र में मुक्तजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकारक जीवाणु विस्तृत रूप से फैले रहते हैं और उनकी सक्रियता के फलस्वरूप उच्चतर पौधों के उपयोग के लिए कार्बनिक यौगिकों का सम्पूर्ण योग वर्धित होता रहता है। वे वायुमंडल के स्वतंत्र नाइट्रोजन को यौगिक रूप में लाते हैं अपने शरीर को बनाते हैं, वृद्धि करते हैं, फिर संख्या में वृद्धि करते हैं और अन्त में मर कर अपने कार्बनिक अवशेषों को दुनिया में वसीयत के रूप में छोड़ जाते हैं।

क्लोस्ट्रीडियम पास्चुरीएनम नामक—मुक्तजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकारक जीवाणुओं की एक जाति—अवायु जीवी का विरोधाभास प्रस्तुत करती है जो भूमि के ऊपरी स्तरों में रहता है जहाँ कि वायुमंडलीय ऑक्सीजन का स्वतन्त्र प्रवेश होता रहता है। यह केवल ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में ही वृद्धि करता है लेकिन फिर भी उस तत्व की अधिकतम मात्रा से घिरा रहता है। सत्य तो यह है कि यह जीवाण कुछ अन्य सूक्ष्मजीवों के साथ रहता है जो ऑक्सीजन के इतने लोभी हैं कि जितना भी ऑक्सीजन वहाँ रहता है सब को ग्रहण कर लेते हैं, फिर उनके कारण ऑक्सीजन का जो अभाव हो जाता है, उसमें यह अवायु जीव रहता है। इन

अवस्थाओं में क्लोस्ट्रीडियम पास्चुरीएनम भूमि के शैवालों के मृत शरीर से निकले हुए शर्करा का तीव्र गति से किण्वन प्रारम्भ करता है और इस प्रकार प्राप्त ऊर्जा से कार्बनिक नाइट्रोजन यौगिकों का संश्लेषण करता है। अन्य नाइट्रोजन यौगिकीकारक जीवाणुओं में एजोटोबैक्टर की जातियाँ हैं जो कुछ तो स्थल में और कुछ समुद्र में वायुजीवी के रूप में रहते हैं।

जैसा कि पुरातन काल में वे सब लोग जो सताये हुए थे और जो पीड़ित थे सब ने अड्लाम की गुफा में शरण ली इसी प्रकार हरे पौधों द्वारा विकासीय पथ पर पौधे पाये जाते हैं जो कि पंक्ति से भटक गये और हरियाली की शोभा से वंचित होकर मृतजीवी या परजीवी बन गये। इस प्रकार कवक जो बहुत अधिक संख्या में विद्यमान है शैवालों या शैवालों के पूर्वजों की विकासीय पार्श्व शाखा है। पर्णांगों से सम्बन्धित पौधे या टेरिडोफाइट्स, उदाहरणार्थ कुछ लाइकोपोडस, जो अपने जीवन के कुछ भाग को मृतजीवी के समान बिताते हैं, फिर कई मृतजीवी, अर्ध परजीवी, और पूर्ण परजीवी पौधे हैं जो निश्चित रूप से पौधों के सबसे उच्च वर्ग, अर्थात् पुष्पी पादपों के सदस्य हैं। चाहे उनके शरीर कितने ही विचित्र और अधःपतित हों तब भी जब उन पर पुष्प निकलते हैं तो वे अपना सम्बन्ध पुष्पी पादपों से छिपा नहीं सकते। यह भी आश्चर्य की बात नहीं है कि मृतजीविता और परजीविता को हरे पौधों के विकासीय प्रगति में उसी प्रकार साथ देना चाहिए, जैसा कि जो लोग सूर्य के प्रकाश में चलते हैं उनका साथ छाया देती है। दोनों आदिकालीन और उच्च व्यवस्थित रूप के भी हरे पौधे मृतजीवी प्रवृत्ति दिखाते हैं। यद्यपि जैसा कि जल-संवर्ध के प्रयोग से ज्ञात होता है कि एक पुष्पी पादप को यदि कार्बन डाइऑक्साइड, जल और खनिज पदार्थ मिलता रहे तो वह संपूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेता है, लेकिन यदि अवकाश मिल सके——उदाहरणार्थ नाना प्रकार के कार्बनिक नाइट्रोजनी पदार्थ उसके जड़ों के क्षेत्र में आ जाये——तो हरे पौधे उनको अवशोषित कर सकते हैं और उनका उपयोग कर सकते हैं तथा अपने मृतजीवी अभ्यास के फलस्वरूप निस्संदेह ही ज्यादा विकसित होते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त दशा प्रारम्भ में थी। उदाहरणार्थ क्लैमिडोमॉनैस को लीजिए। यह एक स्वतंत्र, एककोशिक हरा पादप है जो अविलम्ब मृतजीवी ढंग अपना लेता है। कुछ जातियाँ यदि कार्बनिक नाइट्रोजनी यौगिक प्रचुर मात्रा में हो तो नीचे बैठ जाते हैं, कशाभिकाओं और दृक-बिन्दु को खींच लेते हैं, पर्णहरित खो बैठते हैं और रंगहीन हो जाते हैं। इस अवस्था में प्रत्येक कोशिका वृद्धि करती है और विभाजित होती हैं जब तक कि एक जनक-कोशिका के अन्दर रंगहीन कोशिकाओं का समूह नहीं

बन जाता है। वृद्धि और भाजन इतना अधिक और जल्दी, जल्दी होता है कि रंगहीन कोशिकाओं का एक समूह बन जाता है जो कि एक श्लेष्मकी आवरण के अन्दर रहता है। फिर जल्दी ही शायद जब कार्बनिक खाद्य-पदार्थ कम होने लगता है, कोशिकाएं अपना खोल खो बैठती हैं, पर्ण हरित, दृक-बिन्दु और कशाभिकाएं विकसित करते हैं और तीव्र गति से श्लेष्मक के पुंज से बाहर निकल आते हैं और फिर से स्वतंत्र, सक्रिय, और स्वपोषित हो जाते हैं। निस्संदेह ही अपशिष्ट नाइट्रोजन यौगिकों को अवशोषित करने की शक्ति के कारण क्लैमिडोमॉनैस की कुछ जातिया स्वयं जन्तुओं के ऊतकों से सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं और वहाँ वृद्धि करते और संख्या में बढ़ते हैं, तथा जन्तु जो कि रंगहीन रहता है, पत्ती के समान हरा हो जाता है। सूक्ष्म चपटा कृमि कन्वोल्यूटा रौस्कोफेन्सिस में ऐसा ही होता है, जो कि तब ही वृद्धि प्राप्त करता है जब एक निश्चित क्लैमिडोमॉनैस के समान हरे एककोशिक शैवाल की जाति इसके शरीर के अन्दर प्रवेश करती है। हरे शैवालों और जन्तुओं के बीच सहजीवी बन्धुत्व के अनेक उदाहरण हैं जो कि कोविल्स द्वारा लिखित पादप-जन्तुओं में वर्णित हैं।

सहजीवन के अन्य उदाहरण लाइकेन है जिनमें शैवाल और कवक एक दूसरे के साथ निकट साहचर्य में रहते हैं।

पुष्पी पादपों में मृतपजीविता कई रूप धारण कर सकती है। स्कौच पाइन और कई चौड़ी पत्ती वाले पेड़ जैसे बीच, बाँज, बर्च, इत्यादि विरले ही कभी पूर्ण स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं। प्राकृतिक अवस्थाओं में उनकी जड़े एक कवक के प्रावार से ढकी रहती है। कवक के बटे हुए कवक तन्तु केवल अग्रभाग को छोड़ कर पूरे वर्धन भाग को घेरे रहते हैं और सतह की कोशिकाओं की भित्तियों के बीच भी अन्दर को प्रवेश करते हैं। इस प्रकार के संक्रमित (infected) जड़ों में मूल-रोम नहीं होते। अतः यह निश्चय है कि कवक जल और खनिज लवणों को अवशोषित करता है और उनको जड़ तक पहुँचाता है। लेकिन इससे अधिक यह कुछ और करता है, ज्ञात नहीं है। कुछ पुष्पी पादपों, विशेषतः मृतजीवी पौधों, उदाहरणार्थ मोनोट्रोपा और नियोटिया नाइटस-एविस, और कवकों में अधिक घनिष्ट सम्बन्ध है। पुष्पी पादपों और कवकों के इन घनिष्ठ साहचर्यों में कवक जड़ और भूमिगत भागों की जीवित कोशिकाओं में प्रवेश करता है। वहाँ कभी-कभी यह तीव्र गति से वृद्धि करता है और कभी-कभी जब पोषक कोशिकाएँ इसको पचा देती हैं तो यह मुरझा जाता है या क्षीण हो जाता है। सबसे अनोखा सहजीवन कवक की कुछ जातियाँ और अधिपादप ऑर्किड में होता है। ऑर्किड जो केवल पेड़ों की शाखाओं में वास करते हैं, यह उम्मेद की जाती है कि वे अपनी जाति की संख्या-वृद्धि के लिए अधिक

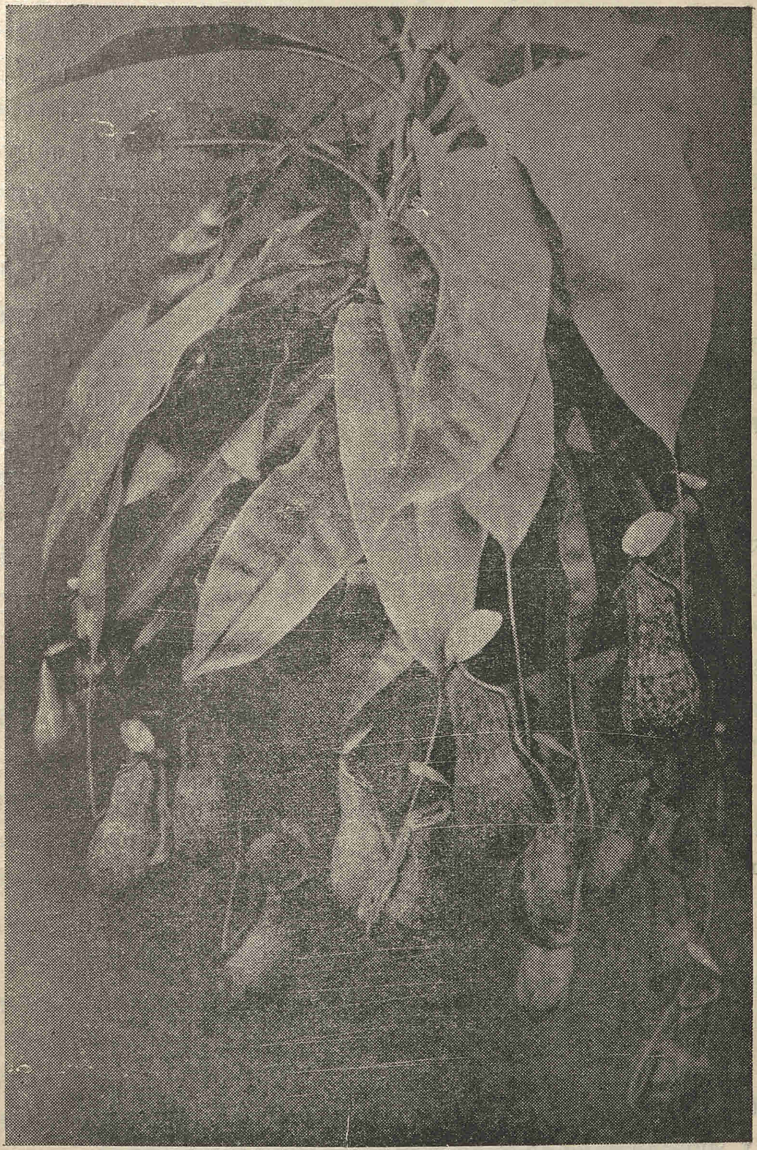

चित्र ३४—घटपर्णी (नेपेन्थीज रॅटविलफियाना)

संख्या में बीज पैदा करें, नहीं तो वायु और अवसर उनके ठीक स्थान में पहुँचने की जिम्मेवारी नहीं ले सकते। उनमें वास्तव में सबसे छोटे धूल के कण के समान बीज होते हैं। इस प्रकार के ऑर्किड के बीजों में कोई पहचानने योग्य भ्रूण नहीं होता। संकरे बीज में कोशिकाओं का एक छोटा पुंज बहुत ही प्राथमिक रूप में भविष्य के पौधे का प्रतिनिधित्व करता है। जब तक कि बीज अच्छी भूमि में नहीं गिरता और कवक द्वारा संक्रमित नहीं होता तब तक यह सूक्ष्म भ्रूण पहचानने योग्य पौधे के समान रूप धारण नहीं करता। क्रमानुसार पद-पद पर जैसे-जैसे तरुण पौधा बढ़ता है कवक इसके ऊतकों पर आक्रमण करता है, लेकिन केवल जड़ों और प्ररोह के निचले भाग तक ही सीमित रहता है और पूरे पौधे को नहीं घेरता। ऑर्किड के उगाने वालों को इनके बीजों को अंकुरित करने में जो कठिनाई होती थी उसका कारण यह था कि वे इस तथ्य से अनभिज्ञ थे और असफलता कवक के अनिवार्य सहभागी न मिलने के कारण होती थी। इस स्थिति के थोड़े से आभास से, या कुछ अचानक निरीक्षण से ऑर्किड के उगाने वालों को मालूम हुआ कि मातृ पौधे के पुरानी जड़ के टुकड़े यदि क्यारियों में डाल दिये जायँ तो सफलता मिलती है। अब इस तथ्य का ज्ञान हो जाने के कारण, ऑर्किड के उगाने वाले उनकी जड़ों में पाये जाने वाले कवक की जाति के संवर्ध से क्यारी को निवेशित कर देते हैं। निस्संदेह ही वृद्धि के सलाह-कारिणी के अतिरिक्त यह कवक क्या करता है किसी को ज्ञात नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसका संबंध नाइट्रोजन समस्या के हल से है—उपयुक्त नाइट्रोजनी यौगिकों की सांसारिक न्यूनता की वह समस्या जिसने उनके विकास के पूरे मार्ग में पौधों के जीवन को सताया है और उनकी आदतों पर प्रभाव डाला है।

पौधों के किसी वर्ग में भी नाइट्रोजन के प्राकृतिक प्रदाय की अनिश्चितता के कारण इतने अनोखे विकास हुये हैं जितना कि कीटाहारी पादपों (insectivorous plants) में। इन पौधों में ड्रॉसेरा रोटन्डीफोलिया, जो दलदली जगहों में उगता है, और अन्य प्रकार के ड्रॉसेरा, डाइऑनिया मस्सीपुला (वीनस फ्लाई ट्रैप) और ड्रॉसेरेसी कुल के अन्य वंशों की १०० जातियों तक संसार के सब भागों में फैली हुई हैं। इनमें नेपेन्थीज नामक घटपर्णी पौधे, जो कि पुरानी दुनिया के उष्ण कटिबन्धी दल-दली स्थलों में पाये जाने वाले और नयी दुनिया के सैरेसीनिय भी इनमें सम्मिलित हैं। किसी न किसी युक्ति द्वारा कीटाहारी पादप कीटों को आकर्षित करते हैं, पकड़ते हैं, और उनको पचाते हैं। इनमें से सबसे सरल में कीड़े फसाये जाते हैं और वे मर जाते हैं। इन मृत पकड़े हुए कीड़ों से कुछ समय बाद ह्रास के फलस्वरूप नाइट्रोजनी पदार्थ निर्मुक्त होते हैं जिनमें से कुछ पौधों द्वारा अवशोषित हो जाते

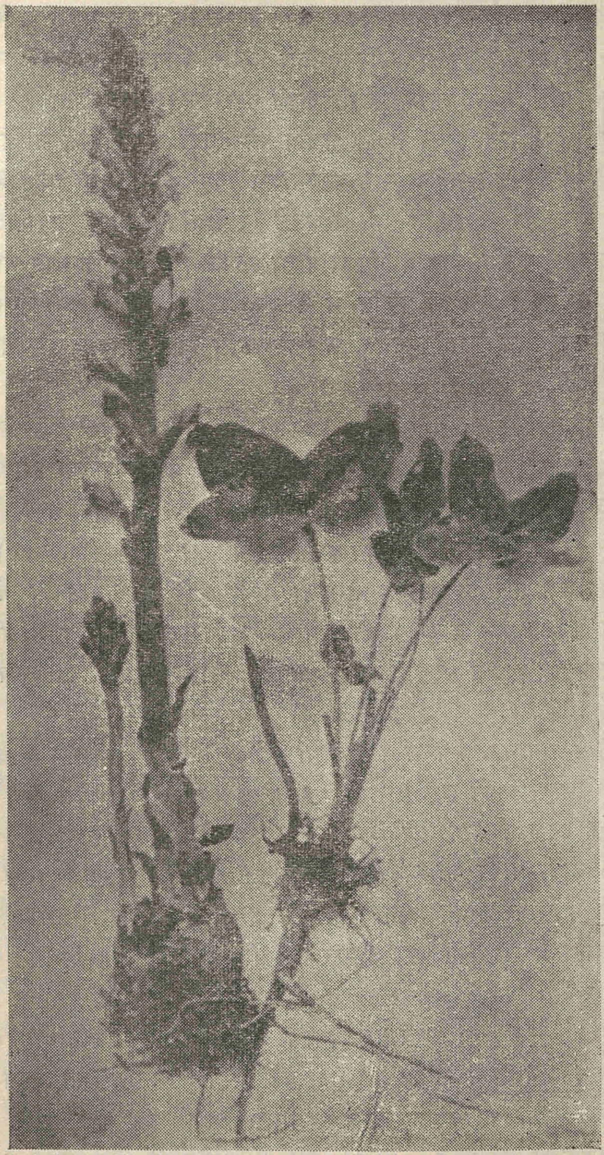

चित्र ३५—भुंइ फोड़ क्लोवर पर परजीवी।

हैं। अधिक जटिल कीटाहारी पौधों में, जैसा कि ड्रॉसेरा, डाइऑनिया और नेपेन्थीज में प्रोटीन अपघटक एन्जाइम स्रावित किये जाते हैं जो कि फँसे हुए कीड़ों के शरीर के विखंडन में सहायता करते हैं, और ऐमीनो अम्ल यौगिक निर्मुक्त करते हैं जो पकड़ने वाली पत्तियों की जीवित कोशिकाओं द्वारा अवशोषित होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यद्यपि कीटाहारी पादप मांस के बिना जीवित रह सकते हैं लेकिन जब उनको मांस का भोजन दिया जाता है, वे बहुत अच्छी तरह फूलते और फलते हैं। कार्बन के लिए वे अच्छे हरे पौधों के समान स्वपोषित हैं। यदि उनको मक्खियाँ और अन्य कीड़ न दिये जायँ तो उनको नाइट्रोजन के लिए भी स्वपोषित बनाया जा सकता है, लेकिन प्रकृति में वे जन्तु जगत के लिए स्थिति एकदम पलट देते हैं और नाइट्रोजन तथा सम्भवतः फॉस्फेट के सहायक प्रदाय जन्तु जगत से प्राप्त करते हैं।

अन्य परजीवी (parasites) परपोषी के जीवित ऊतकों से अपना खाद्य पदार्थ ग्रहण करते हैं, लेकिन हमेशा ही ये परजीवी अपने स्वपोषी जीवन को नहीं छोड़ देते, उदाहरणार्थ विस्कम एल्बम में पर्णहरित रहता है और अन्य हरे पौधों के समान कार्बन के यौगिकों को संश्लेषित करते हैं। यह जो चूषक (sucker) परपोषी पौधे के जीवित ऊतकों में भेजता है फ्लोएम से होते हुए दारु से जैव सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इसके द्वारा परजीवी पौधा जल और खनिज लवण प्राप्त करता है और निस्संदेह ही जब पेड़ में रस चढ़ता है तो यह कार्बनिक पदार्थ भी उसमें से खींच लेता है।

इसी के समान अर्ध-परजीवी अवस्था पेडीक्युलैरिस की स्पीशीज में पायी जाती है। भूमि के ऊपर उनकी हरी पत्तियाँ उनके स्वतन्त्रता का आभास देती हैं, लेकिन भूमि के नीचे उनके परजीवी होने की स्थिति जड़ों के द्वारा ज्ञात होती है जो चूषकों द्वारा दूसरे पड़ोसी पौधों की जड़ों से सम्बन्धित रहते हैं। इसके विपरीत भुंइ फोड़ ने बिल्कुल ही परजीवी जीवन अपना लिया है। इनके भूरे शरीर में पर्णहरित बिल्कुल नहीं पाया जाता और उनका पूरा आहार उस पौधे से प्राप्त होता है जिन पर उनकी जड़ें चिपकी रहती हैं।

अमरबेल एक अन्य परजीवी पौधा है जिसकी अनेक जातियाँ (species) दुनिया के प्रत्येक भाग में फैली हुई हैं। यह पौधा किसानों को बहुत सताता है और इसके बीज क्लोवर के बीज से मिलते जुलते हैं। यह दूसरे पौधों पर लिपटा हुआ पाया जाता है। बचपन से ही इनका जीवन परजीवी होता है और उनका प्रत्येक कार्य उनके जीवन के कार्य के लिए उपयुक्त होता है। शिशु अमरबेल

अन्य नवोद्भिदों से भिन्न होता है। बीज से यह एक पीले, पतले धागे के समान नवोद्भिद के रूप में बाहर निकलता है और जड़ और छोटे, शल्क पत्र के अतिरिक्त अन्य पत्तियों के बनाने में यह समय नष्ट नहीं करता। यह लम्बाई में वृद्धि करता है और अपने तने के अग्र भाग को हवा में सर्प के समान बढ़ाता है और पौधे के चारों ओर हल्के सर्पिल रूप में साँप के डसने के आकार में चक्कर लगाता है। सर्पिल चाल से जब यह परिपोषी के पास पहुँचता है तो अमरबेल का तना इसके चारों ओर तन्तु (tendril) के समान लिपट जाता है। अगर परपोषी पौधा उपयुक्त प्रकार का हुआ तो यह उसके चारों ओर जोर से लिपट जाता है, यदि यह उपयुक्त नहीं हुआ तो कुंडलियाँ ढीली पड़ जाती हैं और चक्करदार घूमना फिर से जारी जाता है। कुंडली के कसने के पश्चात अमरबेल से चूषक निकल कर परपोषी पौधे में प्रवेश करते हैं; चूषक के अन्दर दारु और फ्लोएम होता है और जैसे-जैसे ये प्रवेश करते हैं तो इसका फ्लोएम परपोषी के फ्लोएम के निकट सम्पर्क में आता है और इसी प्रकार चूषक का दारु पोषक के दारु से सम्बन्ध स्थापित करता है और दारु और फ्लोएम के द्वारा अमरबेल परपोषी पौधे से पोषक पदार्थ ग्रहण करता है। इस प्रकार परजीवी वृद्धि करता, फूलता-फलता है और परपोषी का पतन होता जाता है। यदि परजीवी में फूल आने से पहले ही परपोषी पौधे का पतन जल्दी हो गया तो परजीवी के वर्धन छोर फिर

चित्र ३६—अमरबेल

से परपोषी पौधे से अलग हो जाते हैं और सर्पिलाकार वृद्धि जारी रखते हैं। इस अवस्था में पीलापन या हरापन लिए हुए पीलापन इसमें आ जाता है जो इस बात का प्रतीक है कि यह कभी हरा रहा होगा। जब इसको दूसरा परपोषी पौधा मिल जाता है तो देर से विकसित पर्णहरित लुप्त हो जाता है और फिर से पीली कुंडलियाँ दिखायी देते हैं। जब तक यह पौधा फूलता नहीं है तब तक यह अन्य पौधों के समान दिखायी नहीं पड़ता। लेकिन जब इसके फूलने का समय आता है तब यह प्रदर्शित करता है कि यह एक पुष्पी पादप है और कॉन्वॉल्वुलस से सम्बन्धित है।

आकार में कम असाधारण लेकिन पूर्ण परजीवी अन्य पौधे हैं जिनको भुँइ फोड़ (ब्रूम रेप) कहते हैं जिनकी जातियाँ आइवी (ऑरोबैंकी हेडेरी), क्लोवर (ऑरोबैंकी माइनर) और अन्य पौधों पर उगती हैं। इसके पुष्ट, सरस, भूरे पुष्पी स्तम्भ के कारण भुँइ फोड़ को एक बार देखने पर भूला नहीं जा सकता। जब इसका सूक्ष्म बीज अंकुरित होता है, जैसे ही बीजांकुर की जड़ बनती है तो यह परपोषी पौधे से चिपक जाती है और इसके बाद भुँइ फोड़ को खाद्य का प्रदाय परपोषी की जड़ से इसमें आता रहता है। खाद्य का इतना प्रदाय इसको इन जड़ों से मिलता है कि यह बहुत बड़े फूल उत्पन्न करता है। इसके पक्व सम्पुटिका (capsule) में असंख्य बीज रहते हैं। निस्संदेह ही भुँइ फोड़ पराजीवी व्यवसाय में अमरबेल से पुराने हैं क्योंकि इनके पुष्प यद्यपि पीले अपक्व स्नैपड्रेगन से मिलते-जुलते हैं लेकिन तब भी इतने स्पष्ट हैं कि वे एक नये ही कुल में रखे गये हैं।

इस प्रकार उस मनुष्य के समान जिसने चढ़ने के लिये प्रस्थान किया लेकिन कुछ दूर चढ़ कर लौट गया और अपूर्ण स्मारक पर एक और पत्थर लगा आया, भुँइ फोड़ और अमरबेल प्रारम्भिक आकृति से हरे पुष्पी पादपों तक विकास के लम्बे पथ पर गये लेकिन अन्त में स्वतंत्रता प्राप्त न कर सके।

अध्याय ७

स्थल पादप का वातावरण: जल-प्रदाय और सूर्य का प्रकाश। रन्ध्र, गैसों के विनिमय के नियंत्रक। रन्ध्री गति की क्रियाविधि। वाष्पोत्सर्जन का पौधों की उपापचय व्यवस्था में महत्व। वाष्पोत्सर्जन धारा (रसारोहण)

जब नितलस्थ पौधों ने समुद्र को छोड़ा और स्थल पौधे बने तो उन्होंने अपने नये वातावरण की दशाओं को बहुत ही कठिन और आश्चर्यजनक पाया होगा। स्थापनाग (holdfast) अंग जिन्होंने उन पौधों को अधःस्तर (substratum) पर बाँधे रहने का कार्य किया था, भूमि पर स्थल पौधों को बाँधे रहने का कार्य भी कर सकते थे। भूमि में प्रवेश करने से जड़ वाला सिरा सूर्य की गर्मी से बच सकता है और कुछ समय के पश्चात् विस्तृत मूल तंत्र बना सकता है जो कि आजकल के उच्चकोटि पौधों में दिखायी देता है। लेकिन स्तम्भ वाले सिरे को जलाभाव और सूर्य की गर्मी से छुटकारा नहीं मिल सकता। यद्यपि यह भूमि के पृष्ठ के समीप ही शयान रहता है तब भी यह वायु, गर्मी इत्यादि के सम्पर्क में रहता है। यदि यह खड़ा रहता और प्रकाश की ओर ऊपर वृद्धि करता, जैसा कि अधिकांश स्थल पौधे करते हैं, यद्यपि पत्तियों को खाद्य-पदार्थ के निर्माण में सुविधा होती लेकिन ऊपर की ओर बढ़ने में शुष्कन का खतरा हमेशा रहता। इसलिये यदि समुद्र से प्रवासी पौधे अपने कोमल और आवश्यक अनावरित भागों को बचाने का कोई प्रबन्ध न कर लेते तो स्थल का जीतना असफल हो जाता। वे निम्नकोटि के पिग्मी जातियों के समान नम व छायादार स्थानों में जीवित रह सकते, लेकिन वे पृथ्वी पर पूर्ण रूप से कब्जा नहीं कर सकते। यद्यपि आप्रवासी पौधों ने किस प्रकार अपने नये वातावरण के अद्भुत व कठिन दशाओं को जीता, ठीक से ज्ञात नहीं हो सकता, फिर भी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। सबसे प्रथम क्रम यह रहा होगा कि जीवद्रव्य के रासायनिक पदार्थों से एक क्यूटिन के समान जलसह (water-proof) पदार्थ बना होगा और फिर वह कोशिकाओं के बाहरी पृष्ठों पर निक्षेपित कर दिया गया होगा जो वायु के सम्पर्क में रहते हैं। इस प्रकार बाह्य कोशिका-भित्तियाँ जल वाष्प के लिए अप्रवेश्य हो गई। जैसे कि छीला हुआ सेव बगैर छीले हुए फल की अपेक्षा हवा के सम्पर्क में जल्दी सूखता है, उसी प्रकार कोशिका की उपचर्मीयित (cuticularized) भित्तियाँ सेलुलोस की भित्तियों की अपेक्षा जल कम तीव्र गति से खोती हैं।

लेकिन क्यूटिन की एक परत पौधे में कार्बन डाइऑक्साइड के प्रवेश करने में भी उतनी ही रुकावट पैदा करती है जितना कि जल-वाष्प के वाष्पीकरण में रुकावट पैदा करती है। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि पौधों का स्थल की ओर स्थानान्तरण का रास्ता अनशन और शुष्कन (desiccation) के बीच था, क्योंकि कार्बन डाइ-ऑक्साइड के अभाव में प्रकाश-संश्लेषण रुक जाता है और हरे पौधे सूख कर मर जाते हैं। इसका एक सरल रास्ता निकाला गया। एक बाह्यत्वचा (epidermis) का विकास हुआ जो कि बाह्य कोशिका-भित्ति के क्यूटिनीकरण द्वारा कार्बन डाइ-ऑक्साइड और जल-वाष्प के विसरण में रुकावट पैदा करता है और साथ ही साथ कुछ स्पष्ट मार्ग (channels) प्रस्तुत करता है जिनसे विसरण स्वतंत्रता से हो सके। ये मार्ग रन्ध्र (stomata) हैं। जितने ही अधिक प्रभावकारी ये मार्ग होंगे उतना ही अधिक पौधा सुखाने वाली हवा और गर्म सूर्य की दया पर रहेगा (रन्ध्र विसरण क्रिया को सुगम बनाने में कितने प्रभावकारी हैं, इसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है), क्योंकि यदि कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल से पौधों के अन्दर तीव्र गति से विसरण करेगा तो जलवाष्प भी पत्तियों के संतृप्त अंतराकोशिकी अवकाशों के वायु से रन्ध्रों के द्वारा वायुमंडल में उतनी ही तीव्र गति से निकलेगा।

गर्म सूर्य और सूखी भूमि का ऑस्मुन्डा रिगेलिस जैसे पौधे पर हानिकर प्रभाव का निरीक्षण उस समय किया जा सकता है जब कि पादप गृह में गमले में उगाया हुआ पौधा गर्म सूर्य वाले दिन बाहर रखा जाय। जैसे-जैसे मिट्टी सूखती जाती है, पत्तियाँ मुरझाती जाती हैं, और भूरी होकर मर जाती हैं। पत्ती का सूक्ष्मदर्शी द्वारा निरीक्षण करने पर पता लगता है कि रन्ध्र बड़े और अभिदृश्य हैं । इनके द्वारा जल-वाष्प का विसरण इतनी तीव्र गति से होता है कि जब जड़ द्वारा जल का प्रदाय कम होने लगता है तो पत्ती सूखने लगती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। तथापि, अधिकांश पौधों को उन अवस्थाओं में रखे जाने पर, जब कि मिट्टी के सूखने और पत्तियों से अधिकतम जल के निकलने की साथ-साथ क्रिया हो, तो कहीं कम तीव्रता से हानि पहुँचती है। उदाहरणार्थ यदि रायल फर्न के साथ वाला प्रयोग किसी गमले में लगे हराठी पौधे, जैसे पेलारगोनियम, के साथ किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि यद्यपि मिट्टी, जो गर्मी के दिन की गर्म वायु के सम्पर्क में हो, सूख जाती है, और यद्यपि पत्तियाँ मुरझा जाती हैं और शिशु स्तम्भ भी सूखने लगता है, लेकिन पौधे को स्थायी हानि नहीं पहुँचती। जब दिन की गर्मी समाप्त हो जाती है, और यदि गमले में काफी पानी भर दिया जाय तो तना सीधा खड़ा हो जाता है, पत्तियाँ भी ताजी होकर फैल जाती है और फिर से हरी दिखायी देती हैं।

किसी म्लान पत्ती की सतह से पतले टुकड़े को काट कर या छील कर सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र के नीचे निरीक्षण करने पर यह प्रतीत होता है कि रन्ध्र इतने छोटे हैं कि वे कठिनाई से दिखायी देते हैं। उसी प्रकार के सेक्शन, ऊपर लिखी विधि से यदि ताजी पत्ती से लिये जायँ, और उनको पत्ती से निकालने के तुरन्त ही बाद यदि परिशुद्ध ऐल्कोहॉल (absolute alcohol) में डाल दिया जाय, ताकि उनके आकार में कोई परिवर्तन न हो सके, और तब उनका निरीक्षण किया जाय तो दिखायी देता है कि रन्ध्र बड़े और अभिदृश्य हैं। रायल फर्न में इसके विपरीत ताजी और मुरझायी पत्ती में रन्ध्र के आकार में कोई भेद दिखायी नहीं पड़ता। इससे यह स्पष्ट है कि आजकल के पौधों में से कुछ पौधे ऐसे होते हैं जिनमें रन्ध्रों के आकार को बदलने की शक्ति होती है, और अन्य पौधों में, जिनका उदाहरण रायल फर्न हैं और जो सदा नम भूमि में रहते हैं, यह शक्ति नहीं होती। जहाँ तक कि गतिशील रन्ध्र वन-स्पति जगत् के उच्च विभागों, जैसे मॉस, फर्न और पुष्पी पादपों, में पाये जाते हैं। यह निश्चित है कि रन्ध्रों की गति की प्रक्रिया स्थल पौधों के इतिहास में बहुत जल्दी ही विकसित हुई, और इतनी लाभदायक सिद्ध हुई कि यह सब उच्चकोटि पादपों द्वारा स्थापित कर दी गयी, केवल उनको छोड़ कर जो कि नम और रक्षित स्थानों में उगते हैं। ये असाधारण पौधे यद्यपि रन्ध्र बनाये रखते हैं, लेकिन उपयोग में न लाने के कारण उस प्रक्रिया को खो देते हैं जो उनमें गति उत्पन्न करती है।

जो कारक रन्ध्रों को खोलने और बन्द करने में सहायक हैं, द्वार-कोशिकाएँ कहलाते हैं। वे परासरणता के द्वारा कार्य करते हैं। किसी अन्य कोशिका की भाँति जब द्वार-कोशिका के कोशिका-रस में परासरण पदार्थों की वृद्धि होती है तो परासरण दाब विकसित होता है। यदि जल प्राप्य हो तो कोशिका में यह परासरण के द्वारा प्रवेश करता है और कोशिका-रस के आयतन में वृद्धि के कारण कोशिका-भित्तियाँ फैल जाती हैं। कोशिकायें आकार में बढ़ती हैं। अधिकांश कोशिकाओं के विपरीत द्वार-कोशिकाओं की भित्तियाँ एकसमान मोटाई की नहीं होती। इस कारण परासरण दाब के बढ़ने के बाद जो जल का अवशोषण होता है उसके कारण भित्ति का फैलाव भी एकसमान नहीं होता। कोशिका के स्थूलित भाग कम वितान्य (extensible) होते हैं और कम फैलते हैं और अस्थूलित भाग अधिक वितान्य होते हैं और अधिक फैलते हैं। रन्ध्र क्रियाविधि के सबसे साधारण रूप में, जो कि कुछ मॉस और कुछ पुष्पी पौधों में पाया जाता है, भित्ति का पिछला भाग अर्थात् रन्ध्र द्वार से दूर का भाग स्थूल रहता है और भित्ति का उपरी भाग भी स्थूल हो सकता है। कोशिका-गुहिका, जिसमें कोशिका-रस रहता है, की लगभग दीर्घवृत्ताकार रूपरेखा होती है जिसका लम्बा

अक्ष द्वार-कोशिका के स्वतंत्र पृष्ठ के समानान्तर रहता है (चित्र ३७)। जैसे ही द्वार-कोशिका में परासरण दाब बढ़ता है और जल प्रवेश करता है, प्रत्येक द्वार-कोशिका के गुहिका की रूपरेखा पतली आधारिक भित्ति के फैलने से गोलाकार हो जाती है। गति के कारण रन्ध्र के चारों ओर की भित्तियाँ, जो कि पहले एक दूसरे के साथ बिल्कुल मिली थी, सीधी हो जाती हैं और सीधे होने के कारण अलग हो जाती है।

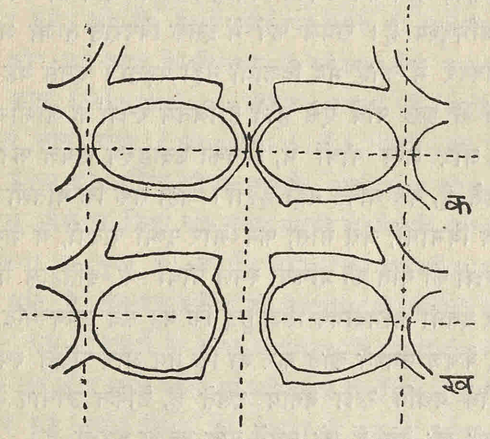

सन्निकट मापों की सारणी

	बंद	खुला
रंध्र की संपूर्ण लंबाई	५०μ	५०μ
रंध्र की संपूर्ण चौड़ाई	४०μ	४०μ
एक द्वार-कोशिका की चौड़ाई	२०μ	१७μ
अग्र गुहिका की चौड़ाई	८μ	८μ
छिद्र की चौड़ाई	०	६μ

चित्र ३७--रंध्र की द्वार-कोशिकाएं। क, रंध्र बंद, ख, रंध्र खुला।

रन्ध्र खुल जाता है। जब भी द्वार-कोशिकाओं का परासरण दाब कम होता है, कोशिकाओं से जल का विसरण होता है और भित्तियाँ जो पहले तनी रहती हैं ढीली हो जाती हैं। रन्ध्र को घेरनेवाली भित्तियाँ अपनी वक्र रूपरेखा बना लेती हैं और एक दूसरे

के समीप आती जाती है जब तक कि रन्ध्र द्वार विलुप्त नहीं हो जाता और अन्त में रन्ध्र बन्द हो जाता है।

द्वार-कोशिकाओं द्वारा कोशिका-रस के परासरण दाब को परिवर्तन करने की शक्ति उनमें हरित लवकों की विद्यमानता के कारण है। साधारण स्थल पौधों के बाह्यत्वचीय कोशिकाओं में केवल द्वार-कोशिकाओं में हरे, पर्णहरित रखने वाले लवक होते हैं। अन्य बाह्यत्वचीय कोशिकाओं में यद्यपि अवर्णी लवक होते हैं लेकिन उनमें हरा वर्णक नहीं होता। इस कारण जब पत्ती को प्रकाश में रखा जाता है तो अन्य हरी कोशिकाओं के समान द्वार-कोशिकाएँ भी प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया करने लगती हैं। प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया के फलस्वरूप शर्करा का निर्माण होता है और कोशिका-रस में संचित होता है। लेकिन जैसा अभी कहा गया है शर्करा परासरणी पदार्थ है और इस कारण उनमें शर्करा के संग्रह से द्वार-कोशिकाओं में परासरण दाब बढ़ता है और रन्ध्र खुल जाते हैं। रन्ध्रीय क्रियाविधि की प्रकृति से यह ज्ञात होता है कि दो अवस्थायें आवश्यक हैं जिससे कि क्रियाविधि कार्य कर सके। रन्ध्रों के खुलने के लिए द्वार-कोशिकाओं में परासरणी पदार्थ की वृद्धि की आवश्यकता है--अर्थात् जल के अवशोषण की अधिकतम शक्ति--और अवशोषण के लिए जल का रहना भी आवश्यक है। रन्ध्र के बन्द होने के लिए द्वार-कोशिकाओं में परासरण दाब के गिरने की ही आवश्यकता है। चूंकि पत्ती की सब कोशिकाए एक दूसरे से मिली रहती हैं इसलिए रन्ध्र का बन्द होना कोशिकाओं के आपस में जल के लिए प्रतियोगिता के कारण भी हो सकता है। उदाहरणार्थ यदि पत्ती की कोशिकाएं शिराओं की वाहिकाओं से जल लेने की गति से अधिक गति से पानी का ह्रास करें तो उनका परासरण दाब बढ़ जायगा और स्फीत हुए द्वार-कोशिकाओं से परासरण द्वारा जल की कोशिकाओं में चला जायगा।

रन्ध्र का बन्द होना दूसरी विधि से भी हो सकता है। जैसे कि पत्ती की हरी कोशिकाएं अधिशेष शर्करा को मंड के रूप में संचित रखती हैं उसी प्रकार द्वार-कोशिकाएं भी कर सकती हैं। इसलिए यदि किसी कारण भी द्वार-कोशिकाओं के हरित लवकों द्वारा संश्लेषित शर्करा मंड के रूप में परिवर्तित हो जाय तो द्वार-कोशिकाओं का परासरण दाब गिर जाता है। कोशिका-भित्तियाँ ढीली पड़ जाती हैं और द्वार-कोशिकाओं से पानी निकल जाता है तथा रन्ध्र बन्द हो जाते हैं।

इन तथ्यों के आधार पर रन्ध्रों का सामान्य व्यवहार समझ में आ जाता है। द्वार-कोशिकाओं की गति की क्रियाविधि अपने आप ही चलने लगती है जैसे ही

कोई आन्तरिक या बाह्य परिवर्तन द्वार-कोशिका के परासरण को या उनमें जल के प्रदाय को प्रभावित करता है। प्रकाश द्वार-कोशिकाओं में शर्करा की मात्रा को बढ़ा कर घटनाओं की एक श्रृंखला को प्रारंभ कर देता है जिसके कारण रन्ध्र खुल जाते हैं। इसके विपरीत अंधकार अधिकांश पौधों में रन्ध्रों को बन्द करने की क्रिया करता है। अंधकार में प्रकाश-संश्लेषण बन्द हो जाता है। द्वार-कोशिकाओं की शर्करा या तो मंड के रूप में संचित हो जाती है या कोशिकाओं से स्थानान्तरित हो जाती है, परासरण दाब गिरता है और रन्ध्र बन्द हो जाते हैं। नम हवा खुली अवस्था को कायम रखने में सुविधा पहुँचाती हैं। हवा में जल-वाष्प की प्रचुर मात्रा होने के कारण पत्ती से जल का ह्रास और कम हो जाता है। इसलिए द्वार-कोशिकाओं के लिए जल की कमी नहीं रहती। वे स्फीत और तने रहते हैं तथा रन्ध्र खुले रहते हैं। लेकिन यदि हवा बहुत शुष्क हो तो पत्ती की हरी कोशिकाओं से पानी का ह्रास बहुत अधिक हो जाता है, और इतना कम भी हो सकता है कि जड़ों से ऊपर चढ़ने वाला जल भी उनको फूला हुआ रखने के लिए काफी न हो। जैसे पत्ती की साधारण कोशिकाएं पानी खोती हैं तो उनका परासरण दाब कार्यान्वित हो जाता है। इसलिए यद्यपि रन्ध्र रन्ध्रीय अवकाश की शुष्क हवा द्वारा जल के ह्रास के कारण बन्द नहीं होते, लेकिन उनको बन्द होना पड़ता है क्योंकि पत्ती की अन्य कोशिकाओं में जल के लिए अधिक प्रतियोगिता के कारण उनको जल नहीं मिल पाता। जब मिट्टी शुष्क रहती है तब भी रन्ध्र बन्द हो जाते हैं क्योंकि इस अवस्था में जल का प्रदाय कम हो जाता है और द्वार-कोशिकाएं जो जल खो बैठती हैं उसको प्राप्त नहीं कर पातीं। उनकी भित्तियाँ ढीली पड़ जाती हैं और रन्ध्र बन्द हो जाते हैं।

इन कारणों से अनेकों प्रकार के पुष्पी पादपों के रन्ध्र दैनिक (diurnal) गति प्रदर्शित करते हैं। सूर्योदय, या उससे पहले, वे खुलने लगते हैं। जैसे-जैसे दिन बढ़ने लगता है वे अधिक चौड़े खुल जाते हैं। यदि दिन बहुत गर्म न हो और भूमि अधिक शुष्क न हो तो रन्ध्र दोपहर के पहले तक खुले रहते हैं। सूर्यास्त से पहले वे बन्द होने लगते हैं। बन्द होने की क्रिया रात्रि के प्रथम प्रहर में पूरी हो जाती है और फिर यह अवस्था सूर्योदय तक बनी रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकाश और अन्धकार की अवस्थाओं के क्रमिक परिवर्तन में बहुत समय तक अनावृत रहने के कारण पौधों ने अपने रन्ध्रों के लयबद्ध परिवर्तनों द्वारा उन अवस्थाओं का अनुमान लगाना सीख लिया है। तथापि किसी समय भी आदत का दबाव परिस्थितियों के दबाव से पराजित हो सकता है। सुखाने वाली हवाओं से या जलाभाव से अथवा किसी अंधेरे स्थान में रख देने से रन्ध्र बन्द हो जाते हैं। अधिकांश जल ह्रास से रन्ध्र

का बन्द होना प्रदर्शित करने के लिए एक चौड़ी कोमल पत्ती को काटकर धूप में रख देना ही काफी है। जैसे ही पत्ती मुरझाने लगती है इसके रन्ध्र बन्द हो जाते हैं। इन रन्ध्रों को पत्ती में जल अन्दर डाल कर या उसको पानी में डुबो कर फिर से खोला जा सकता है। कुछ दशाओं में जब रन्ध्रों को इस प्रकार खोला जाता है, जब जल वाष्पीकरण द्वारा उड़ जाता है तो भी वे बन्द नहीं होते। इस प्रकार पौधे को थोड़ा जल देकर उनकी मृत्यु जल्द की जा सकती है; क्योंकि यह स्पष्ट है कि रन्ध्रों के द्वारा जल के ह्रास की गति, और इस कारण पत्ती का सूखना अधिक तीव्र गति से होता है जब कि रन्ध्र चौड़े हों। कुछ पौधों द्वारा इस प्रकार का व्यवहार मालियों के सारपूर्ण कहावत की पुष्टि करता है कि "थोड़ा जल भयानक चीज है।" यह व्यवहार अच्छे मालियों के उस यथार्थ की भी सराहना करता है, जो कि जल्दी-जल्दी पानी नहीं देते और खूब ज्यादा पानी देते हैं जब कि परिस्थितियाँ उनको ऐसा करने के लिये विवश कर देती हैं।

रन्ध्रों के बन्द हो जाने के कारण प्रकाश-संश्लेषण भी बन्द हो जाता है, और तब तक बन्द रहता है जब तक कि रन्ध्र फिर से नहीं खुल जाते। यह पहले ही बताया जा चुका है कि खाद्य-निर्माण के बन्द होने का कारण यह है कि कार्बन डाइऑक्साइड का प्रदाय बन्द हो जाता है, और यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि पत्ती को इस प्रकार उपचारित करें कि इनके रन्ध्र बन्द होने के बावजूद भी हरी कोशिकाओं में कार्बन डाइऑक्साइड पहुंचाया जा सके। यदि एक पत्ती को बहुत सबेरे ही तोड़ लिया जाय ताकि वह मंड का निर्माण न कर सके, और इसको शुष्क हवा में रख दिया जाय ताकि यह पत्ती मुर्झाने लगे। जैसा कि प्रायः होता है, यदि रन्ध्र बन्द हो जाते हैं तो पत्ती में मंड का संचय नहीं होता। लेकिन यदि पत्ती को एक पतली सुई से छेद कर उसमें कार्बन डाइऑक्साइड का विसरण संभव किया जा सके तो प्रत्येक छेद के आस-पास की कोशिकाओं में मंड एकदम दिखायी देता है। यह इस बात का प्रमाण है कि कार्बन डाइऑक्साइड के फिर से पत्ती में पहुँचाये जाने पर प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया फिर से जारी की जा सकती है—चाहे पत्ती मुरझाई हुई ही क्यों न हो।

रन्ध्रों के बन्द हो जाने से जो अपने आप ही खाद्य-निर्माण की क्रिया बन्द हो जाती है वह पौधों के लिए अहितकर नहीं है। अँधेरे में प्रकाश-संश्लेषण बन्द हो जाता है, चाहे रन्ध्र खुले हों या बन्द हों। निस्संदेह ही कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनमें रन्ध्रों के बन्द होने की आदत के कारण पौधे को कुछ सुविधायें मिल सकती हैं। रात्रि में जड़ पानी और खनिज लवण अवशोषित करती रहती हैं और कोई भी ऊतक जो कि पहले दिन अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन के कारण अपने सब जल को खो

बैठे हों, अपने संग्रह को फिर से पूरा कर लेते हैं और फिर से फूल कर दूसरे दिन के कार्य के लिए तैयार हो जाते हैं। कुछ पौधों में जड़ के अवशोषण की क्रिया रात्रि में इतनी तीव्र गति से होती है कि रात्रि में उनके बन्द रन्ध्रों द्वारा जो थोड़ा बहुत जल कम हो जाता है, उसकी पूर्ति वे कर सकें लेकिन यह पत्तियों और स्तम्भ के ऊतकों में फिर से स्फीति लाने के लिए काफी ही नहीं बल्कि काफी से अधिक है। जब ऐसा होता है कि रात्रि में अवशोषित जल इन कार्यों के लिए आवश्यकता से अधिक होता है तो अतिरिक्त जल बाहर निकाल दिया जा सकता है और यह पत्तियों के किनारे या चोटी पर ओस की बूँदों के समान दिखाई देता है। प्रभात के प्रथम प्रहर में जल की चमकीली बूँदों से जड़ी हुई प्रत्येक पत्ती सहित जई का खेत या प्रिमुला से भरा हुआ पादप गृह बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है। कुछ उष्ण कटिबन्धी पौधे, जैसे कोलोकेसिया की कुछ जातियाँ, इतना जल बाहर निकालती है कि ऐसा आभास होता है कि आँसुओं की बाढ़ गिर रही है। कई प्रकार के फूलों के दलपुटों (spurs) या अन्य भागों में जो मकरन्द दिखाई पड़ता है वह भी करीब-करीब इसी प्रकार उत्पन्न हता है। मकरन्द कोषों (nectary) की ग्रन्थिल कोशिकाएं शर्करा स्रावित करती हैं जो उनके बाहरी पृष्ठ पर जमा हो जाता है। जब मकरन्द-कोषों की कोशिकाएं जल से इतना अधिक भरी रहती हैं कि वे फूल जाती हैं, तब बाहर की शर्करा उनसे जल खींचती है, जिसके परिणामस्वरूप मकरन्द-कोष में मीठे मकरन्द की बूँदें एकत्र हो जाती हैं।

शुष्क वायु या मिट्टी के कारण रन्ध्र के बन्द हो जाने के फलस्वरूप प्रकाश-संश्लेषण की जो क्रिया बन्द हो जाती है, उस तथ्य का एक प्रदर्शन है, कि जब तक कोशिकाओं को उचित जल का प्रदाय नहीं प्राप्त होता, वे सब जैव क्रियायें नहीं कर सकती। साथ ही साथ रन्ध्रों के बन्द कर देने से पौधा जल की न्यूनता के कारण प्राणनाशक खतरे से भी अपनी रक्षा करता हैं। जब यह बहुत ही कम जल प्राप्त कर रहा है या बहुत ही अधिक जल खो रहा है यह ठीक समय है कि कार्य बन्द किया जाय, क्योंकि यद्यपि कार्य जीवन में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है, तब भी बिना स्वास्थ्य के कार्य से विशेष लाभ नहीं उठाया जा सकता। अतः पत्ती के रन्ध्र रूपी ताले वाले फाटक कार्बन डाइऑक्साइड और जल-वाष्प के विसरणशील बहाव को पौधे से और पौधे में बन्द करने या अग्रसर करने के वे साधन प्रस्तुत करते हैं जिसके द्वारा स्थल वनस्पति स्थलीय अस्तित्व के अपृथक्करणीय कठिनाइयों का सामना करता है और उन पर विजय प्राप्त करता है। वे हरे पौधों में कुछ मात्रा तक अपने भाग्य के प्रभुत्व की क्षमता प्रदान करते हैं। इस प्रभुत्व की सीमाएं और विस्तार किसी भी आदमी को ज्ञात

हो सकता है जो उन तरुण पौधों का निरीक्षण करे जो क्यारी के लगाने के बाद ही वसंत ऋतु की अनावृष्टि से घेर लिया गया हो। वे पौधे मर जाते हैं जिनकी जड़ों ने भूमि को ठीक तरह से पकड़ नहीं लिया हो लेकिन वे पौधे जिनकी जड़ों ने वृद्धि कर ली हो और जो थोड़ा भी जल प्राप्त कर सकते हैं, अनावृष्टि को सहन कर लेते हैं। पत्तियाँ दुख के मारे झुक जायँ और पौधा हफ्तों तक बिना वृद्धि के निश्चल रहे, तब भी जब वर्षा आती है तो वे फिर से पिछली स्थिति को प्राप्त करते हैं, और यद्यपि कुछ स्थायी रूप से बौने रह जाते हैं और समय से पहले ही फूल जाते हैं, लेकिन अधिकांश जीवन के संघर्ष के लिए कोई बहुत खराब दशा में नहीं रहते और पूरी उम्र तक जीवित रहते हैं।

विभिन्न अवस्थाओं की इस दुनिया में यह प्रत्याशित ही है कि कभी-कभी रन्ध्रों का होना हरे पौधे के लिए कमजोरी का स्रोत हो सकता है। कुछ परजीवी कवक (उदाहरणार्थ, जो आलू की अंगमारी (blight of potato) और गेहूँ का रतुआ (wheat rust) रोग पैदा करते हैं और प्रतिवर्ष बहुत हानि पहुँचाते हैं) पौधों के ऊतकों में रन्ध्रों के द्वारा ही प्रवेश करते हैं। अगर रन्ध्र न होते तो स्तम्भ और पत्तियाँ इनके आक्रमण से अभेद्य रहतीं, क्योंकि अंगमारी और रतुआ के बीजाणु जो कि पत्तियों के नम सतह पर अंकुरित होते हैं, नवोद्भिद के बाह्यत्वचा को भी नहीं भेद सकते हैं। लेकिन खुले हुए रन्ध्र अनेक और काफी बड़े और आकर्षक रास्ते हैं जिनके द्वारा अंकुरित बीजाणु की बढ़ती हुयी जनन नलिका (germ tube) पत्ती के नम अंतराकोशिक अवकाशों में पहुँच सकती है। उसके बाद कवक पत्तियों की कोशिकाओं की कोमल भित्तियों में प्रवेश करता है, और एक कोशिका से दूसरी कोशिका में फैल कर अपना विनाश का कार्य करता है।

लेकिन यह वनस्पति के लिए सामान्य बात है, यद्यपि यह किसानों के लिए महत्त्व की चीज है; क्योंकि इनकी प्रबलता के होते हुए भी परजीवी कवकों ने पौधों की किसी भी जाति को पूर्णतः नष्ट नहीं कर पाया है। इससे अधिक सब परजीवी कवक जो पौधों को हानि पहुँचाते हैं और नष्ट करते हैं, सब रन्ध्रों के द्वारा हमला नहीं करते। कुछ घावों तथा छेदों के द्वारा प्रवेश करते हैं, और अन्य में बाह्यत्वचा को भेदने की शक्ति है और इसलिए वे परपोषी पौधे के शरीर में प्रवेश करते हैं।

औद्योगिक क्षेत्रों के धुएँदार वायुमंडल का पौधों पर हानिकारक प्रभाव एक दूसरा उदाहरण है जो यह प्रदर्शित करता है, कि रन्ध्रों के होने से पौधों को कुछ असुविधाएं हो सकती हैं क्योंकि इनके द्वारा गैसों का विसरण होता है। कोयले के

अपूर्ण दहन के फलस्वरूप जो तेलमय कोलतार सदृश पदार्थ बनते हैं उनसे रन्ध्र बन्द हो सकते हैं, या कुछ विषैली गैसें इनके द्वारा पौधों के अन्दर जा सकती हैं, और जिनमें से कुछ, जैसे कोयला-गैस के प्रति पौधे बड़े संवेदनशील (susceptible) होते हैं। अतः औद्योगिक शहरों के आसपास वनस्पति उदासीन रूप धारण करती है, और शरद् ऋतु के रंग जो कि पौधे के कार्य करने के वर्ष के अन्त की निशानी है वसन्त ऋतु के कोमल हरे रंग के तुरन्त बाद आ जाती है।

स्थल पौधों के जीवन में रन्ध्रों के महत्त्व के बारे में इतना लिखा जा चुका है कि यह संक्षिप्त रूप में बताना रोचक होगा कि किसी समय रन्ध्रों की दशा किस प्रकार ज्ञात की जा सकती है, और बाह्य दशाओं, जैसे प्रकाश, वायुमंडलीय नमी और जल के प्रदाय का रन्ध्रों की गति पर क्या प्रभाव पड़ता है, कैसे प्रदर्शित किया जा सकता है। एक सामान्य रचना का यंत्र जिसको स्टोमामापी कहते हैं इस कार्य के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसमें एक T के आकार की काँच की नली होती है जिसके एक छोटे पाद में एक काँच का बेल-जार (bell-jar) जुड़ा रहता है जो इतना छोटा और हलका होता है कि यह पत्ती के किसी भाग के पृष्ठ पर जोड़ा जा सकता है। दूसरे छोटे पाद वाले भाग में एक मोटी भित्ति वाली रबर की नली लगी रहती है जिस पर एक क्लैम्प लगा रहता है। लम्बा पाद वाला भाग जिसके पीछे एक स्केल लगा रहता है पानी में डूबा रहता है। बेल-जार पत्ती पर जिलेटिन या निम्न गलनांक (melting point) के मोम से वायु-रुद्ध जोड़ से जोड़ दिया जाता है। स्टोमामापी को उपयोग में लाने के लिए खुले सिरे पर चूषण (suction) उपयुक्त किया जाता है जब तक कि T—नली के लम्बे पाद में कुछ ऊँचाई तक पानी न चढ़ जाय। रबर की नली को बन्द कर दिया जाता है और जल के गिरने की गति का अभिलेख किया जाता है। यदि पत्ती के उस भाग में जहाँ बेल-जार जुड़ा हुआ है, रन्ध्र न हों तो जल का स्तम्भ (water column) अपने पहले की ऊँचाई पर स्थिर रहता है, क्योंकि यद्यपि यंत्र से हवा निकालने के कारण बेल-जार के अन्दर दाब हवा के दाब से कम रहता है, फिर भी सतत बाह्यत्वचा पत्ती से होते हुए बेल-जार में हवा के रास्ते को रोकती है लेकिन यदि बेल-जार के नीचे स्थित भाग में रन्ध्र उपस्थित हों तो बेल-जार के अन्दर स्थित वायु और बाहर की वायु के दाब में अन्तर होने के कारण वायुमंडल से रन्ध्रों से होते हुए पत्ती के अंतराकोशिकी अवकाशों और बेल-जार के नीचे स्थित रन्ध्रों के द्वारा उपकरण में वायु का विसरण होता है। इसके फलस्वरूप जल का स्तम्भ गिरता है और शून्य के निशान तक गिरता जाता है, अर्थात् जब तक कि बाहर और

अन्दर के वायुमंडलीय दाब एक से नहीं हो जाते (चित्र ३८ ख)। यह तर्क संगत है कि यदि रन्ध्र जितने चौड़े होंगे उतना ही तीव्र विसरण होगा और इसलिए जल स्तम्भ उतनी ही तेजी से नीचे गिरेगा। अतः पाठयांकों की एक श्रेणी द्वारा बेल-जार से जुड़े हुए पहले पत्ती के ऊपरी पृष्ठ से और फिर निचले पृष्ठ से जल स्तम्भ के नीचे गिरने की गति से रन्ध्रों की उपस्थिति और अनुपस्थिति का पता लग सकता है, अथवा

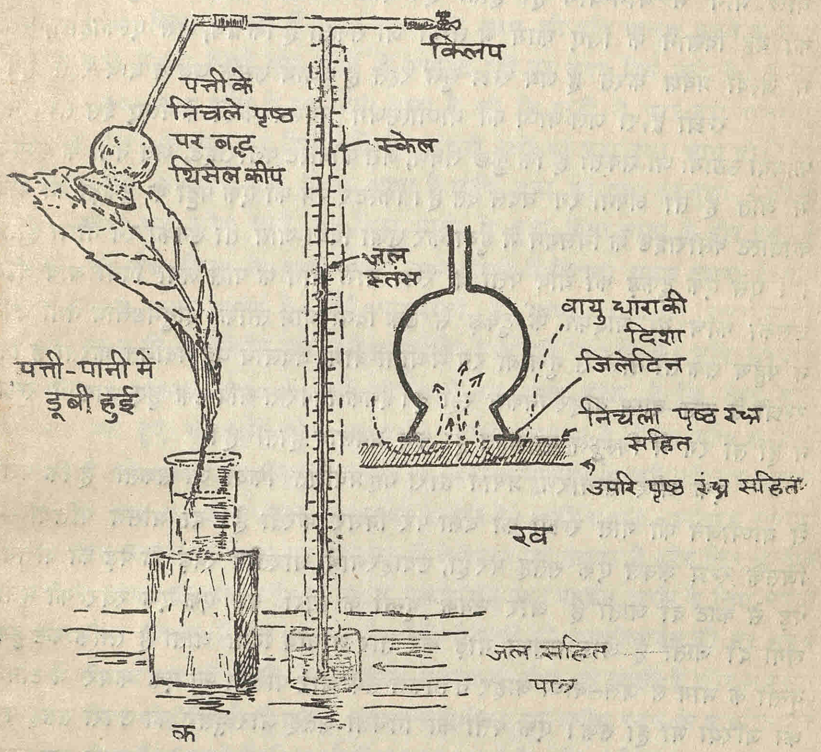

चित्र ३८—रन्ध्रमापी या स्टोमामापी

पत्ती की प्रत्येक पृष्ठ पर उनके सापेक्ष संख्यात्मक वितरण का पता लग सकता है। इसी प्रकार परिस्थितियों, जैसे प्रदीप्ति (illumination), सुखापन, या हवा की प्रशान्तता को अदल-बदल कर परिवर्तन का प्रभाव जल स्तम्भ के गिरने की गति में परिवर्तन का निरीक्षण कर आकलन (estimation) किया जा सकता है। साधारण उपायों से भी यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि रन्ध्रों की दशा पर यह निर्भर करता है

कि किस तीव्रता से जल और गैस पत्ती में प्रवेश करेंगे। पौधों का लाल ऐन्थोसाइएनिन वर्णक अमोनिया द्वारा प्रतिक्रिया होने पर हरे रंग का हो जाता। इसलिए, अगर कापर बीच या इसी प्रकार वर्णकी पौध की पत्ती, जो कि आधा एक काले कपड़े से ढकी हो, ताकि अंधेरे वाले भाग मे रन्ध्र बन्द हो गये हों, को अमोनिया की भाप के समीप रखा जाय तो प्रदीप्त भाग मे पत्ती का रंग जल्दी हरा हो जाता है और अंधेरे वाले भाग में धीमे-धीमे हो होता है। इसी प्रकार अंधेरे में रखी हुई कोमल पत्ती को यह दिखाने के लिए काम मे लाया जा सकता है कि द्रव, जैसे ऐल्कोहॉल, पत्ती में जल्दी प्रवेश करते है जब रन्ध्र खुले रहते हैं बजाय उसके जब वे बन्द रहते हैं।

रन्ध्रों द्वारा जल-वाष्प का वाष्पोत्सर्जन प्रदर्शन करने के लिए इस तथ्य का फायदा उठाया जा सकता है कि कुछ लवण, जैसे कोबाल्ट क्लोराइड, जब नमी के सम्पर्क में आते हैं तो अपना रंग बदल देते है। फिल्टर पत्र की एक पट्टी के टुकड़ों को यदि कोबाल्ट क्लोराइड के विलयन में डुबा कर सुखा दिया जाय तो उनका रंग नीला होता है। एसे एक टुकड़े को यदि पत्ता के रन्ध्र वाले भाग के पास लगा दिया जाय और उसको काँच या माइका के टुकड़े से ढक दिया जाय ताकि वायुमंडलीय नमी वहाँ न पहुच सके तो नीले से गुलाबी रंग में धीमा-धीमा बदलाव यह प्रदर्शित करता है कि रन्ध्रों से जल–वाष्प बाहर निकल रहा है। इसके विपरीत यदि ढके हुए भाग में रन्ध्र न हों तो रंग में बिल्कुल या बहुत ही कम बदलाव होता है।

एक और साधारण प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि पत्ती से वाष्पोर्जन की गति रन्ध्रों की दशा पर निभर करती है। दो मांसल पत्तियाँ— जिसके रन्ध्र केवल एक सतह पर हों, उदाहरणार्थ भारतीय रबड़ के पेड़ की पत्तियाँ पेड़ से काट दी जाती हैं और उनके वृन्तों के छोरों पर एक-एक रबर की नली लगा दी जाती है और उसको मोड़ कर तार से बाँध दिया जाता है ताकि कटे हुये वृन्तों के भाग से जल–वाष्प बाहर न निकल सके और पत्तियों को एक कमरे में टाँगने का जरिया भी हो सके। एक पत्ती की निचली सतह और दूसरे की उपरी सतह पर वैसलिन चुपड़ दी जाती है। कुछ दिनों के बाद वह पत्ती जिसके निचली सतह पर वैसलिन नहीं लगायी गयी थी, मुड़ जाती है और सूख जाती है, लेकिन दूसरी पत्ती ताजी रहती है क्योंकि उसकी निचली सतह पर वैसलिन लगी रहने के कारण रन्ध्र बन्द हो गये थे। प्रयोग के पहले और बाद पत्ती को तोल कर यह ज्ञात होता है कि उस सूखी हुई पत्ती ने बहुत जल खोया जिसके रन्ध्र खुले हुए थे और दूसरी पत्ती, जिसके रन्ध्र बन्द कर दिये गये थे, उसने बहुत कम जल खोया।

पौधों की पत्तियों से वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में कितना जल बाहर निकलता

है उसको ठीक-ठीक मापने के लिए गमले में लगे पौधों को तोल लेना पड़ता है। लेकिन एक दूसरी सरल विधि है जिससे ज्ञात किया जा सकता है कि पत्तियों द्वारा पानी के बाहर निकलने की क्या गति है। इस विधि में एक पतली काँच की नली में, जो कि एक ओर एक जल के प्रदाय से जुड़ी हो और दूसरी ओर एक काँच के बर्तन से जुड़ी हो जिसमें एक पत्ती वाली शाखा वायुरुद्ध करके लगा दी गई हो, कितने समय में पानी जाता है, ज्ञात करना पड़ता है। इस उपकरण, जिसको पोटोमीटर कहते हैं, का ब्यौरा चित्र ३९ में दिखाया गया हैं। जल स्तम्भ के चाल की गति मालुम करने के लिए संकरी नली में दो चिह्न एक दूसरे से उपयुक्त दूरी पर लगा दिये जाते हैं। शाखा का कटा हुआ भाग बर्तन में रख दिया जाता है जो कि पानी से पूरा भरा रहता है, और सब जोड़ वायुरुद्ध कर दिये जाते हैं। संकरी नली का मुड़ा हुआ भाग थोड़ी देर के लिए पानी से ऊपर उठा लिया जाता है ताकि हवा का एक बुलबुला नली के अन्दर प्रवेश कर सके। नली का सिरा पानी में डुबा दिया जाता है और हवा के बुलबुले को एक चिह्न से दूसरे चिह्न तक पहुँचने में कितना समय लगता है, एक स्टॉप वाच से मापा जाता है। कई पाठ्यांकों के माध्य (mean) द्वारा स्तम्भ के कटे भाग से अवशोषण की औसतन गति ज्ञात हो सकती है। यदि उपयुक्त पूर्वोपाय (precautions) किये जायँ, तो यह ज्ञात होता है कि जिस गति से जल कटे हुए भाग में प्रवेश करता है उसके बराबर है जिस गति से जल-वाष्प पत्ती की सतहों से बाहर निकलता है। हवा के बुलबुले के गति की दर वाष्पोत्सर्जन के माप का एक उपाय माना जा सकता है। क्योंकि यह उपकरण सुवाह्य है, वह तीव्र प्रकाश से छाया या अंधकार में ले जाया जा सकता है और फिर से तीव्र प्रकाश में लाया जा सकता है, और इस प्रकार यह तथ्य प्रदर्शन करने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है कि साधारण चौड़ी पत्तियों की वाष्पोत्सर्जन की दर सबसे अधिक तीव्र प्रकाश में होती है, विसरित प्रकाश में कम हो जाती है और अंधकार में और भी कम हो जाती है। इसी प्रकार पोटोमीटर का प्रयोग पवन के वाष्पोत्सर्जन पर प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए भी किया जा सकता है, और इसी प्रकार वाष्पोत्सर्जन की सापेक्ष दर नम व शुष्क हवा में ज्ञात की जा सकती है। पोटोमीटर के द्वारा इन तथ्यों को प्रदर्शित करने के लिए जो पूर्वोपाय किये जाने चाहिए वे ये हैं: प्रथम, शाखा पानी के अन्दर काटी जाय, और दूसरा, इसको काटने के बाद कई घंटों तक पानी में रखना चाहिए; और फिर माप लेना चाहिए। ये पूर्वोपाय क्यों आवश्यक हैं उसके कारण महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये संवाहन काष्ठ वाहिकाओं की दशा का पानी से सम्बन्ध के प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालते हैं। यदि सक्रिय पौधे की दारु वाहिकाएं

स्थायी रूप से और पूर्णतः जल से भरी रहें तो प्रथम पूर्वोपाय की कोई आवश्यकता नहीं है। वास्तव में काष्ठ वाहिकाएं विरल ही सतत जल स्तम्भ से भरी रहती है। एक समय, उदाहरणार्थ नम हवा में शान्त रात्रि के बाद शायद वे भरी भी रह सकती है। अन्य समय में, और मुख्यतः जब वाष्पोत्सर्जन तीव्र गति से हो रहा हो, जड़ से वाहिकाओं में जाने वाले जल की मात्रा उस जल की पूर्ति करने के लिये काफी नहीं होती जो वाष्पोत्सर्जन द्वारा खो गया हो, और इसके परिणामस्वरूप वाहिकाएं पानी से भरी नहीं रहती। अब उनमें जल और वायु दोनों रहते हैं और इसके साथ-साथ हवा वायुमंडल के दाब से कम दाब पर रहती है। इसका नतीजा यह होता है कि इस दशा में जब कोई शाखा काटी जाती है और कटा हुआ भाग खुला रहता है तो कटे हुए भाग से हवा वाहिकाओं में तुरन्त प्रवेश करती है और यह तब तक जाती रहती है जब तक कि वाहिका के अन्दर की हवा का दाब बाहर की वायु के दाब के बराबर न हो जाय। प्रयोग द्वारा यह ज्ञात होता है कि जब दारु वाहिकाएं इस प्रकार वायु द्वारा रुद्ध हो जाती हैं तो जल का वाहिका में ऊपर की ओर पत्ती तक संवाहन में रुकावट पड़ती है। अतः शाखा को पानी के अन्दर काटने की सावधानी लिए बिना वाष्पोत्सर्जन की आभासी (apparent) गति जो पोटोमीटर द्वारा नापी जायेगी अक्षत शाखा में जितनी वास्तविक होगी, उसके बजाय पहले बहुत तीव्र रहेगी और फिर धीमी होगी। इसी कारण माप लेने के पहले कुछ घंटों तक शाखा पानी में रखी जाती है; क्योंकि इस समय में यदि वाहिका में हवा वायुमंडलीय दाब से कम दाब में होती है तो जल पेड़ में वायुमंडलीय दाब द्वारा प्रविष्ट किया जाता है और जब तक बाहरी और भीतरी दाब बराबर न हो गये हों तो वायुमंडलीय दाब के द्वारा पोटोमीटर की नली में जल का प्रवाह पत्तियों द्वारा पानी के वाष्पोत्सर्जन की वास्तविक गति का कोई सूचक नहीं होगा।

वायुमंडलीय दाब द्वारा किस तीव्रता से जल कटी हुई शाखा में प्रवेश करता है, इसका प्रदर्शन एक शाखा को काटने के समय और काटने के बाद एक रंग (जैसे इओसिन या मेथिलीन ब्लू) के जल विलयन में डुबो देने से किया जा सकता है। यदि दिन धूपयुक्त हो और वाष्पोत्सर्जन तीव्र हो, तो पौधे के अंदर और बाहर वायु के दाब में इतना अन्तर होता है कि पानी तीव्र गति से शाखा में चढ़ता है और इसके साथ रंग स्तम्भ में कई इंच ऊपर तक कुछ ही मिनिटों में पहुँच जाता है।

जब पोटोमीटर द्वारा लिए गये परिणाम रन्ध्रों के गति के ज्ञान के प्रकाश में विचारे जायँ तो दो प्रकार के आभासतः विरोधी तथ्यों का समाधान हो जाता है। एक ओर तो, वाष्पोत्सर्जन उन दशाओं द्वारा तीव्र या सुगम हो जाता है जो किसी

जलीय सतह से वाष्पन में सहायता पहुँचाते हैं। जैसे कि एक रस्सी में टँगे हुए कपड़े ठंडी हवा के बजाय गर्म हवा में जल्दी सूखते हैं, इसी प्रकार पौधे भी अधिक वाष्पोत्सर्जन करते हैं; और जैसे हवा में जब नमी कम रहती है उस समय शुष्कता अधिक तीव्र गति से होती है बजाय उसके जब कि हवा में नमी ज्यादा होती है। इसी प्रकार वाष्पोत्सर्जन में भी होता है। वास्तव में अंतराकोशिकी अवकाशों से लगी हुई कोशिका-भित्तियों से जल-वाष्प का हरण, जल-वाष्प का अंतराकोशिकी अवकाशों से रन्ध्री

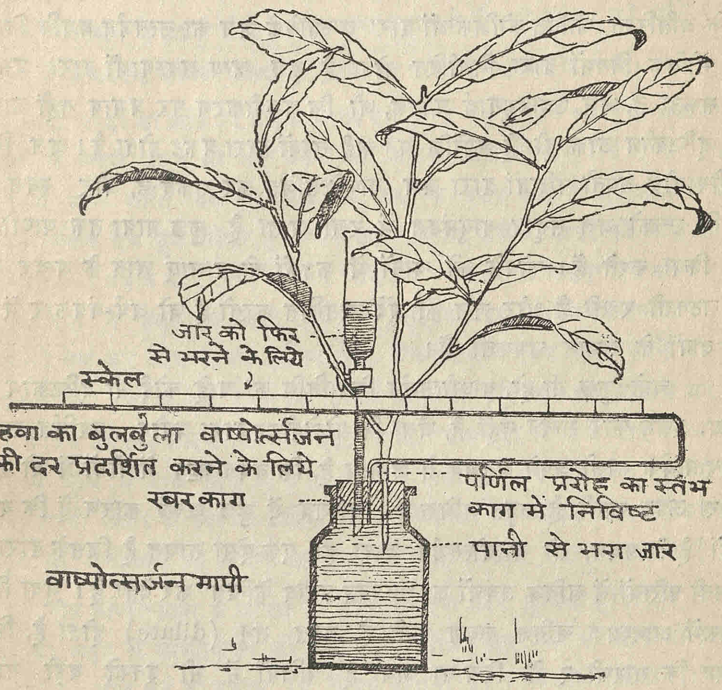

चित्र ३९—पोटोमीटर

छिद्रों और फिर बाहर के वायु में विसरण वाष्पन के द्वारा होता है। लेकिन, जैसा दिखाया गया है, पौधा रन्ध्री प्रक्रम के द्वारा इस क्रियाविधि में दखल देने की क्षमता रखता है। रन्ध्र को छोटा या बड़ा करके गति जो एक-सी रहती, कम या ज्यादा की जा सकती है। एक और तथ्य है, जो स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है कि प्रकाश वाष्पोत्सर्जन की गति पर उससे अधिक प्रभाव डालता है, जितनी कि उम्मीद की जाती है यदि यह केवल रन्ध्रों के आकार में बदलाव के द्वारा करे। इस कारण से और

अन्य कारणों से भी पत्तियों की कोशिकाओं से जल की क्षति को केवल भौतिक प्रक्रम ही नहीं, बल्कि शरीर क्रियात्मक प्रक्रम मानना पड़ेगा, और वाष्पोत्सर्जन को उत्सर्जन प्रक्रम मानना पड़ेगा। इस दृष्टिकोण से देखने पर जो वास्तव में होता है वही वास्तव में होना चाहिए। सामान्य रूप से जो अवस्थाएं वाष्पीकरण के लिए अनुकूल होती हैं वाष्पोत्सर्जन के लिए भी अनुकूल होती हैं, लेकिन द्वार-कोशिकाएं उत्तेजित कर सकती हैं और रन्ध्रों के आकार को बदल कर वाष्पोत्सर्जन की गति को बदल सकती है। इसके अतिरिक्त, जीवित कोशिकाओं द्वारा वास्तविक जल का उत्सर्जन यद्यपि निस्संदेह ही भौतिक नियमों द्वारा निर्धारित होता है, कुछ अन्य अवस्थाओं द्वारा प्रभावित हो सकता है, जैसे उदाहरणार्थ प्रकाश, जो कि वाष्पीकरण पर प्रभाव नहीं डालता। यह दृष्टिकोण ठीक ही है क्योंकि यह कई तथ्यों द्वारा प्रकट होता है। जल निमग्न जलीय पौधे अपनी पत्तियों द्वारा जल वाष्पोत्सर्जित कर सकते हैं, और स्थल पादप यद्यपि उनको जल संतृप्त वायुमंडल में रखा जाता है, कुछ मात्रा तक वाष्पोत्सर्जन की क्रिया करते हैं। कोयले की खानों में कवकों की मालाएं खान के अन्दर खम्भों से लटकती रहती हैं और जल की बूंदें उत्सर्जित करती हैं जो अर्ध-अंधकार में मोती के दानों के समान चमकती हैं।

चाहे कुछ भी हो, वाष्पोत्सर्जन क्रियाविधि का चाहे कोई भी दृष्टिकोण लिया जाय, इसमें कोई सन्देह नहीं है, जैसा कि पोटोमीटर द्वारा प्रयोग प्रदर्शित करते हैं, और प्रत्येक माली अपने अनुभव से जानता है, कि वर्धन ऋतु में पौधों में जो जल की धारा ऊपर जाती है, बहुत अधिक है। वास्तव में कुछ अच्छे कारण हैं कि यह ऐसे क्यों है? प्रथम, तो वाष्पोत्सर्जन धारा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा पौधा अपनी पत्तियों में खनिज लवणों का उपयुक्त प्रदाय केन्द्रित कर देता है। मृदा विलयन जिसमें आवश्यक खनिज लवण रहते हैं, बहुत तनु (dilute) होता है, फिर भी जैसा कि सारणी २ में दिखाया गया है पत्तियों में भी इनकी बड़ी मात्रा हो सकती है और इसलिए ऐसा है कि जैसा प्रयोग प्रदर्शित करता है कि वाष्पोत्सर्जन की गति केवल प्रकाश, शुष्क हवा, जल की प्राप्य मात्रा पर ही निर्भर नहीं होती लेकिन भूमि में खनिज लवणों की मात्रा से भी प्रभावित होती है।

अतः यदि समान संख्या में हरे पौधे एक ही खेत में एक ही आकार के प्लाट में उगाये जांय जो कि आवश्यक खनिज लवणों में हीन हों, तो वाष्पोत्सर्जन की गति बहुत अलग-अलग होगी और यह उस पर निर्भर करेगा कि कृत्रिम खाद, नाइट्रोजन, पोटैशियम और फॉस्फोरस के लवण उन भू-क्षेत्रों में डाले गये हैं या नहीं। इस प्रकार के एक जई के प्रयोग में यह देखा गया कि जब खाद दिये हुए भूमि में

उगे हुए पौधों ने प्रत्येक एक पौंड शुष्क द्रव्य बनाने में २०५ पौंड जल बाहर निकाला, और जो खाद न दिये हुए भूमि में उगाये गये २६० पौंड जल प्रत्येक पौंड शुष्क द्रव्य के निर्माण के लिए खोया। निस्संदेह दूसरी दशा में वाष्पोत्सर्जन की उच्चतर गति अच्छे और ज्यादा भाग में मूल तंत्र के बनने के कारण थी, लेकिन यह एक तथ्य है कि किसी पौधे के वाष्पोत्सर्जन की गति का भूमि में उपस्थित विलेय खनिज लवणों की मात्रा से भी सम्बन्ध रखता है। और यह दृष्टिकोण उचित है कि तीव्र वाष्पोत्सर्जन के द्वारा पौधे के पास एक साधन है जिसके द्वारा वह भूमि के तनु विलयन से आवश्यक खनिज पदार्थों की उपयुक्त मात्रा ग्रहण कर लेता है।

इन तथ्यों का कृषि पर प्रभाव ध्यान देने योग्य है। कृत्रिम खादों के सुव्यवस्थित उपयोग से केवल उपज ही नहीं बढ़ाई जा सकती बल्कि इससे पौधे शुष्क वर्षों या स्थानों में भली भाँति फल-फूल सकते हैं, जब कि बगैर खाद दी हुई भूमि में वे मर जायेंगे। लेकिन एक पूर्ण सीमा है जिसके ऊपर विलेय कृत्रिम खादों की वृद्धि के साथ कोई लाभकारी प्रभाव नहीं होता, लेकिन हानिकारक प्रभाव हो सकता है। कई किसानों और मालियों ने फसलों के ऊपर सोडियम नाइट्रेट और अमोनियम-सल्फेट के अच्छे प्रभाव को देख कर और अधिक कृत्रिम खाद देकर उत्तम उपज प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसका नतीजा यह हुआ कि उसके पौधे की वृद्धि रुक गई और वे मर गये। विलेय कृत्रिम उर्वरक, जैसे सोडियम नाइट्रेट आदि, परासरणी पदार्थ हैं और वे अत्यधिक मात्रा में भूमि में डाल दिये जायँ तो वे मूल-रोमों से जल को खींच लेंगे और इस प्रकार उनकी क्रिया में विरोध डालेंगे, या कोशिकाओं में अधिक मात्रा में प्रवेश कर नाइट्रेट या अमोनिया के लवण उन पर विष जैसा प्रभाव पैदा कर सकते हैं।

तीव्र वाष्पोत्सर्जन के कारण हरे पौधे को एक और सुविधा होता है। वायवीय भागों की सतह से वाष्पीकरण की गति को नियंत्रित कर पत्ती का ताप भी नियंत्रित हो जाता है। तीव्र सूर्य के प्रकाश में स्थित पत्तियों द्वारा विकीर्ण ऊर्जा (radiant energy) के अवशोषण से ऊतकों का ताप निश्चय ही घातक सीमा तक पहुँच सकता है, यदि यह ऊर्जा जल के वाष्पीकरण के उपयोग में न आये। इस प्रकार से उपयोग में लायी ऊर्जा किसी दूसरे प्रकार से उपयोग में नहीं लायी जा सकती, और इस प्रकार पौधा हानि से बच जाता है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि सब को ज्ञात है, जिस सतह से वाष्पीकरण होता है वह अपने आप ही ठंडी हो जाती है—जैसा किसी स्वस्थ कुत्ते की नाक को देखने से पता लगता है, या सूर्य के प्रकाश में रखी हुई पत्तियों की प्रत्यक्ष ठंडक से ज्ञात होता है।

यदि हवा शुष्क भी हो जाय और रन्ध्र बन्द हों, और वाष्पोत्सर्जन द्वारा निकले जल की मात्रा कम भी हो जाय, तब भी यह पानी पत्तियों को इतना ठंडा करने के लिए काफी है कि पूर्ण सूर्य में रखी पत्तियों को भी घातक बिन्दु तक पहुँचने से रोक सकती है। रात्रि में रन्ध्रों का बन्द होना भी लाभकारी है। रन्ध्रों के बन्द होने से वाष्पोत्सर्जन कम हो जाता है और कम ठंडक पैदा होती है, ताकि, उदाहरणार्थ, बादल हीन रातों में जब कि ताप का विकिरण अधिक होता है, पौधे को अनुचित ताप के गिरने का जो खतरा है, यद्यपि पूरा दूर नहीं हो जाता है, तब भी कम हो जाता है।

यह सम्भव है कि इस बात पर कई प्रकार के पौधों की पत्तियों और पुष्प पत्तियों की नैश गति का महत्व है। पत्तियों की नैश गति (sleep movements) छुईमुइ, आक्सेलिस को स्पाशाज इत्यादि में स्पष्ट दिखाई देती है। दिन के समय पत्र दल करीब-करीब क्षैतिजतः फैले रहते हैं और वायु में खुले रहते हैं। जब रात्रि आती है तो कुछ पौधों में पत्र दल नीचे झुक जाते हैं, और कुछ में खड़े हो जाते हैं, ताकि वे वाष्पोत्सर्जन से कम जल खोते हैं और कम ताप का विकिरण करते हैं। प्रत्येक पत्र दल मध्य शिरा को हिन्ज बना कर अपने में ही मुड़ भी सकता है, या संयुक्त पत्तियों में जिसमें प्रत्येक में कई पत्रक होते हैं, जैसे छुईमुई में, विपरीत पत्रक युग्मों में वलित हो सकते हैं।

यह स्पष्ट है कि पत्तियों की रात्रि की गतियाँ जो नैश गति प्रदर्शित करती हैं, पूरे खुले हुए सतह में कमी कर देती है और इस प्रकार वाष्पोत्सर्जन और विकिरण कम हो जाता है अतः—उदाहरणार्थ वसन्त के स्वच्छ पाले वाली रातों में नैश गतियाँ पत्तियों के कोमल ऊतकों की कुछ रक्षा प्रदान करती हैं। इसके साथ-साथ तीव्र वाष्पोत्सर्जन की आवश्यकता और शुष्कन के भय को दूर करने के लिए प्रत्येक पौधे ने वाष्पोत्सर्जन की क्षमता (efficiency) और आत्म-रक्षा के बीच समझौता कर लिया है। इंगलैंड में गर्मी समशीतोष्ण है, और जलवायु नम है, इसलिए चौड़ी पत्तियों वाले वृक्ष, क्षुप या शाक अधिक पाये जाते हैं और जब तक जाड़े का मौसम नहीं आ जाता, यह समझौता कम स्पष्ट होता है। जाड़े में चौड़ी पत्ती वाले पेड़ अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं क्योंकि भूमि ठंडी रहती और तेज हवायें चलती हैं और इस अवस्था में पत्तियों का होना हानिकर होता है। अतः इस प्रकार इंगलैंड की चौड़ी पत्तियों वाले वृक्षों ने जलवायु के साथ समझौता कर लिया है। कम समय के मौसम में उनकी पत्तियों को बहुत अधिक काम करना पड़ता है और गर्मी के समाप्त होने के बाद ही वे गिर जाती हैं। दूसरी जलवायु में वनस्पति दूसरा ही रूप धारण करती है। उदाहरणार्थ रिवियरा के वृक्ष और क्षुप अधिक समय तक सदाहरित रहते हैं और बहुतों

की पत्तियाँ मांसल होती हैं, उदाहरणार्थ कार्क ओक (क्वेरकस सूबर) में इंगलैंड

चित्र ४०—मरुदभिदी पौधे।

के ओक और अन्य पेड़ों की पत्तियों की अपेक्षा छोटी और गहरे हरे रंग की होती हैं, क्योंकि वे वर्ष भर जीवित रहती हैं अतः उनको सूर्य की तेज गर्मी भी सहन करनी पड़ती है। रिवियरा में पाये जाने वाले सदाबहार पेड़ बारह महीने काम करते हैं इसलिए वे शुष्कन से अपनी रक्षा करने के हेतु अपनी सतह में कमी कर सकते हैं।

किसी देश की ऋतुओं और वहाँ की भूमि का ज्ञान होने पर वहाँ की वनस्पति के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है, यद्यपि ठीक-ठीक वृक्षों के प्रकार के बारे में नहीं तो कम से कम यह ज्ञात हो सकता है कि वनस्पति का क्या स्वरूप होगा। उदाहरणार्थ कुछ पौधों के बारे में जो साधारणतः बागों में उगते हैं और जो इंगलैंड के मूल निवासी है विचार किया जा सकता है। हाउस लीक (सेमपरवाइवम टक्टोरम) में जो कि प्रायः छतों या दिवालों पर उगाया जाता है और स्विटजरलैंड में आल्पीय चट्टानों की सतह पर उगते हैं, मांसल पत्तियाँ गुलाववत आकार में गुँथी रहती हैं, गोर्स (यूलेक्स यूरोपियस) में कँटीली शाखाएँ होती हैं और पत्तियाँ नाममात्र को ही होती हैं, और चीड़ (पाइनस) में चर्मवत सूचिकाकार पत्तियों होती हैं। यह स्पष्ट है कि हाउस लीक की सरसता, गोर्स की पर्णहीनता और चीड़ के पत्तियों की चर्मवतता यह संकेत करती है कि वे चौड़ी कोमल पत्तियों से कम जल का उपयोग करती हैं। चौड़ी पत्तियों वाले पेड़ को काफी पानी मिलने के कारण वे ज्यादा पानी खर्च कर सकती हैं। अन्य पौधे, जैसे मरुद्भिदी (xerophytic) पौधों को पानी मितव्ययिता से खर्च करना पड़ता है। हाउस लीक को चट्टानों में लगी थोड़ी मिट्टी से, जिसमें इसकी जड़ें चिपकी रहती हैं, बहुत थोड़ा पानी मिल सकता है। गोर्स और पाइन जो हवा वाले स्थानों में उगते हैं और प्रायः प्यासे बालू में उगते हैं, निस्सन्देह प्रकृतिवश और परिस्थिति के दबाव से भी जल को खोने में कंजूस होते हैं।

मरुद्भिदी पौधों के विभिन्न रूप किस प्रकार अपनी पत्तियों और स्तम्भों के रूपान्तर प्रदर्शित करते हैं, इसकी खोज बड़ी रोचक होगी। प्रयोगों के फलों से यह दिखलाना ही काफी होगा कि पौधों के जल की आवश्यकता कितनी ज्यादा और अलग-अलग है। एक चौड़ी पत्ती वाला शाकीय पौधा, जैसे सूरजमुखी का पौधा, एक गर्म सूर्य वाले दिन एक पिंट पानी बाहर निकाल सकता है। यदि एक सेव का पेड़ गर्म मौसम में मुर्झाता है, तो उसे अपनी पुरानी अवस्था में लाने के लिए उसकी जड़ों में १०० गैलन से भी ज्यादा पानी डालना पड़ेगा। गर्मी के किसी दिन भी बीच (beech) का पेड़ एक दिन में १०० गैलन से कम पानी नहीं बाहर निकालता। यह अनुमान लगाया गया है कि बाँज (oak) का प्रौढ़ पेड़, जिसमें सात लाख पत्तियाँ हों, और प्रत्येक पत्ती में लाखों रन्ध्र हों, अपने जीवन के पाँच, सक्रिय वार्षिक काल में

२०० टन से अधिक पानी बाहर निकालता है। गेहूँ का पौधा, जो प्यासा पौधा नहीं है, अपने वृद्धि के दौरान में १००० टन प्रति एकड़ जल बाहर निकालता है; अर्थात यदि इसकी फसल पैदा करनी है तो गेहूँ के एक एकड़ को भूमि से इतना जल लेकर पत्तियों से बाहर निकालना पड़ेगा जो कि दस इंच वर्षा के बराबर होगा। यह देखते हुए कि इंगलैंड के पूर्वी देशों में जहाँ काफी गेहूँ उगाया जाता है, पूर्ण वार्षिक वर्षा २०–२५ इंच के अन्दर होती है और सर्दी की वर्षा का अधिकतर जल या तो बह जाता है या उड़ जाता है और पौधे द्वारा वह उपयोग में नहीं लाया जाता। यह स्पष्ट है कि फसल के उत्पादन में जल का प्रदाय इंगलैंड में सीमाकारी कारक (limiting factor) का कार्य करता है।

वाष्पोत्सर्जन के परिमाण की माप का अन्दाजा दुनियाँ के गेहूँ की फसल द्वारा वायुमंडल में लौटाये जल की मात्रा को ज्ञात कर लगाया जा सकता है। गेहूँ की फसल में ४००,००० वर्गमील=२५६० लाख एकड़ भूमि को मानते हुए, और औसत वार्षिक वाष्पोत्सर्जन की मात्रा को १००० टन प्रति एकड़ के बराबर मानते हुए दुनिया के गेहूँ की फसल द्वारा प्रति वर्ष वाष्पोत्सर्जित जल २½ खरब टन से कम नहीं हो सकता। अन्य कृष्य पौधे गेहूँ से कहीं ज्यादा जल भूमि से लेते हैं। क्लोवर, गेहूँ के बराबर शुष्क भार के बराबर उपज पैदा करने के लिए, गेहूँ से आधा पानी वाष्पोत्सर्जित करता है। स्केल के दूसरे सिरे पर दूर मरुद्भिदी पौधे हैं। ये जल मितोपयोजक हैं जिनको कि सापेक्षतः कम जल बाहर निकालने पर ही संतुष्ट रहना पड़ता है, क्योंकि या तो उनको तेजी से उपयोग के लिए जल सहज में प्राप्त नहीं होता, या उन्हें जिस विकासीय अनुभव द्वारा आगे बढ़ना पड़ा उसमें वाष्पोत्सर्जित सतह में इतनी कमी हो जाती है और उनके ऊतकों में इतने रूपान्तर हो जाते हैं कि वे अब ऐसे स्थानों में रहने पर भी जहाँ वाष्पोत्सर्जन के लिए सुविधाएँ हैं, बहुत कम पानी बाहर निकालते हैं। ऐसा ही सरस कैक्टेसी के सम्बन्ध में होता है जो प्रायः उष्ण कटिबंधी और उपोष्ण शुष्क रेगिस्तानों में पाये जाते हैं। कैक्टेसी कुल के एक सदस्य ओपंशिया सिलिंड्रिका (नागफनी), जिसमें मांसल स्तम्भ भी होता है और हरी पत्तियाँ नहीं होती, के द्वारा जल निकालने की तुलना यदि एक चौड़ी पत्ती वाले पेड़ हाइड्रेंजिया से की जाय तो वह बहुत कम है, जैसा कि निम्न तालिका से ज्ञात होता है। हाइड्रेंजिया के १०० ग्राम भार की एक शाखा द्वारा एक दिन में २३६·२ घन-सेंटीमीटर जल बाहर निकला, और उसी भार के ओपंशिया द्वारा एक दिन में केवल ०·५२ घन सेंटीमीटर पानी निकला, अर्थात् भार प्रति भार एक का वाष्पोत्सर्जन दूसरे से ५०० गुना था।

लेकिन ओपंशिया मोटे और मांसल होते हैं (चित्र ४०)। सतह के समानुपात में उनका आयतन बड़ा होता है। फिर भी, उपर लिखित प्रयोग में पौधे की सतह नापी जाय तो यह प्रकट होता है कि प्रति १०० वर्ग सेमी० सतह के लिए वाष्पोत्सर्जन की मात्रा—हाइड्रेंजिया में ६·५४ घन सेंटीमीटर और ओपंशिया में ०·२० घन सेंटीमीटर है, अर्थात् एक का दर दूसरे से करीब ३२ गुना है। प्रक्रम के इस प्रकार चाल कम कर देने से कैक्टसी उष्ण कटिबंधी अमरीका के अहितकारी शुष्क रेगिस्तानों में रह सकते हैं। जल की आवश्यकता के प्रति प्रत्यास्थता (elasticity) से वनस्पति ने पृथ्वी की विजय को पूरा कर दिया है।

चौड़ी पत्ती वाले सक्रिय वर्धमान पेड़ों द्वारा प्रदर्शित वाष्पोत्सर्जन की उँची दर से यह प्रश्न उठता है कि किस विधि से पौधा अवशोषण अंगों से सबसे ऊँची टहनियों की पत्तियों तक की अधिक दूरी तक जल की अधिक मात्रा तीव्र गति से पहुँचाता है।

संसार का सबसे ऊँचा वृक्ष—उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया का यूकेलिप्टस ३०० फीट ऊँचा होता है। उनकी जड़ें भी बहुत लम्बी होती हैं। जड़ के तरुण भाग ही जल का अवशोषण करते हैं। इस कारण इन और अन्य समान पौधों में अधिकतम (maximum) दूरी जिसमें कि जल वाहित होता है, दो सौ गज से कम नहीं हो सकता।

यह प्रश्न जो प्रायः रसारोहण (ascent of sap) की समस्या के प्रश्न के नाम से वर्णित किया जाता है, इसका अभी तक ऐसा उत्तर नहीं मिला है जिससे इसका अन्वेषण करने वाले सन्तुष्ट हो सके हों। इसलिए जो व्याख्या दी जा रही है अस्थायी मानी जानी चाहिए न कि अन्तिम। प्रथमतः, यह दिखाया गया है कि यद्यपि मूलों द्वारा अवशोषण तभी होता है जब कि अवशोषण करने वाली कोशिकाएं जीवित रहती हैं, तब भी वाष्पोत्सर्जन धारा, अर्थात् जल की धारा मूल से पत्ती तक दारु वाहिकाओं में होकर बहती रहती है, भले ही स्तम्भ का एक लम्बा भाग—उदाहरणार्थ भाप के द्वारा या विषैले पदार्थों के अतःक्षपण द्वारा प्रवेश करने की विधि से पूर्णतः मृत कर दिया गया हो। लेकिन, पश्चादुक्त दशा में जब विष पत्ती तक पहुचता है और पत्ती को मार देता है तब वाष्पोत्सर्जन धारा बन्द हो जाती है। पत्तियाँ जिनको अब जल नहीं मिलता, मुरझा जाती हैं और वाष्पीकरण द्वारा अधिक जल के खो जाने से वे शुष्क और भगुर हो जाती हैं। भूमि से मूल-रोमों की कोशिकाओं तक और वहाँ से जड़ से होते हुए तरुण वाहिकाओं में जल की यात्रा पहले ही परासरण दाब के कारण माना जा चुका है। मूल-रोम कोशिकाए, या उस उद्देश्य से कोई भी जीवित पौधे की कोशिका, जैसे पत्ती का हरी कोशिका, जो परासरणी पदार्थों में उच्च होती

है, बहुत परासरण दाब डाल सकती है। वास्तविक मापों से ज्ञात हुआ है कि ३० वायुमंडल या उससे भी कहीं अधिक दाब पैदा होता है, और यह कहना ठीक होगा कि इतना दाब यदि डाला जा सके तो यह सबसे ऊँचे पेड़ की चोटी तक जल को उठाने के लिए पर्याप्त है।

अब समस्या यह है कि इस बात का अध्ययन किया जाय कि वाष्पोत्सर्जन करने वाली पत्तियों की कोशिकाओं में किस प्रकार परासरण दाब दारु वाहिकाओं में जल के स्तम्भ को उठाने में काम में लाया जा सके। यह समझना सापेक्षतः आसान है कि यह कैसे हो सकता है, अगर जब वाष्पोत्सर्जन सर्वाधिक सक्रिय रहता है, तब दारु वाहिकाओं में जल का एक सतत स्तंभ रहता हो जो जड़ से पत्ती तक फैला हुआ हो। लेकिन जीवित और तेजी से वाष्पोत्सर्जन करने वाले पेड़ों के दारु को निरीक्षण करने से पता लगता है कि जब वाष्पोत्सर्जन सक्रिय होता है तब वाहिकाओं में जल और वायु दोनों पाये जाते हैं। कभी-कभी जल और वायु के बुलबुले एकान्तर रहते हैं। कभी-कभी भित्ति से चिपकी हुई पानी की केवल परत-सी रहती है। इसलिए यदि वाष्पोत्सर्जन के जल का प्रदाय जारी रखा जाय–जैसा कि वास्तव में रहता है–उस समय जल को फिल्म या खोखले बेलनों के रूप में वाहिकाओं की हवा और भित्तियों के बीच में उठना चाहिए। यह विश्वास करना मुश्किल है कि ऊपर से किसी कर्षण (pull) के कारण जल का पूरा-पूरा खोखला बेलन ऊपर उठने लगता है। लेकिन जल के कुछ अद्भुत गुण हैं जिनके कारण यह विश्वास असम्भव नहीं प्रतीत होता। एक थिसेल कीप को चर्म-पत्र की झिल्ली से ढक कर और उसमें पानी भर कर पुनः उसके निचले हिस्से को पारे के एक बर्तन में डुबो दिया जाय तो यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि चर्म-पत्र की झिल्ली से जल के वाष्पीकरण के कारण नली में पारा चढ़ने लगता है। वाष्पीकरण एक नापने योग्य कर्षण उत्पन्न कर लेता है। लेकिन थोड़ी देर बाद ही चर्म-पत्र की झिल्ली के नीचे हवा के बुलबुले जमा होने लगते हैं और पारे का उठना बन्द हो जाता है। यदि इस प्रयोग को थिसेल कीप में उबाला हुआ जल लेकर फिर से किया जाय तो वाष्पन कर्षण से पारा अधिक ऊँचाई तक चढ़ जाता है। लेकिन चढ़ना फिर बन्द हो जाता है जब वायुमंडल की वायु जल और चर्म-पत्र की झिल्ली के बीच के स्थान में आकर जल स्तम्भ को तोड़ देती है। चर्म-पत्र के बजाय यदि पेरिस-प्लास्टर का प्रयोग किया जाय तो पारे का स्तम्भ और अधिक ऊँचाई तक उठता है—यहाँ तक कि यह ८० सेमी० तक भी उठ सकता है। यह ऊँचाई वायुदाबमापी (barometer) में वायुमंडलीय दाब से पारा जितना ऊपर उठता है (लगभग ७६ सेमी०) उससे भी अधिक है।

इन प्रयोगों में पारे के स्तम्भ के बहुत अधिक भार के बावजूद जल के कण या आणविक समुच्चय (molecular aggregates) एक दूसरे के साथ सट कर चिपके रहते हैं, और पारे से भी चिपके रहते हैं। इसलिए, जल को जल के साथ ससंजन (cohesion) की शक्ति है और यदि यह दिखाया जा सके कि यह शक्ति तेजी से वाष्पोत्सर्जन करते हुए पेड़ों की दारु वाहिकाओं में लम्बे तथा खोखले जल के स्तम्भ को तोड़ने को रोकने के लिए काफी है तो रसारोहण की समस्या हल हुई समझी जा सकती है। जड़ से काफी पानी अन्दर जाता रहता है। पत्तियाँ कर्षण प्रदान करती है। कभी-कभी, जड़ वास्तव में जल के प्रदाय के अलावा कुछ और भी करती हैं। यह इसको वाहिका में धकेल सकती है। वसन्त में यदि किसी अंगूर की बेल को काटा जाय तो इससे रस-स्रवण होने लगता है, फिर यदि स्तम्भ के छोर पर दाबांतरमापी लगा दिया जाय तो यह दिखाया जा सकता है कि रस-स्रवण दाब काफी है। यह तथ्य रसारोहण की व्याख्या करने में बहुत कम सहायता करता है; क्योंकि रस-स्रवण वसन्त में होता है और प्रायः रात्रि में दिन की अपेक्षा अधिक होता है। यदि जिस दाब के कारण रस-स्रवण चालू होता है रसारोहण में कुछ सहायता करता तो इसको सबसे अधिक गर्मियों में और दिन के समय प्रत्यक्ष होना चाहिए। तब भी, मूलीय दाब (root pressure) संचित जल के संग्रह का जड़ तथा स्तम्भ के नीचे के भाग की वाहिकाओं में पूरा करने में और उन जीवित कोशिकाओं में जल को पहुचाने में, जिन्होंने दिन में जल को खो दिया हो, जब कि पत्तियाँ तीव्र गति से वाष्पोत्सजन कर रही थी, अप्रत्यक्षतः सहायता कर सकता है।

किसी न किसी प्रकार, रसारोहण प्रयुक्त होता है और जारी रहता है। जल के साथ खनिज लवण भी प्रवेश करते हैं, जिसके द्वारा वे तेजी से पत्तियों तक पहुंच जाते हैं, क्योंकि रसारोहण द्रव्यमान गति है न कि अणुओं के विसरण के कारण एक शिथिल गति। दारु (दारु-मृदूतक) की जीवित कोशिकाओं में प्रथम गर्मी में जो शर्करा और नाइट्रोजन यौगिक संगृहीत रहते हैं, वसन्त में वे वाहिकाओं में निरावेशित कर दिये जाते हैं। फिर वे ऊपर चढ़ते हुए जल की धारा में चलते हैं और इस प्रकार तरुण पत्तियाँ और वर्धमान स्तम्भों तक पहुच जाते हैं। किस प्रकार ये पहले से पत्तियों में निर्मित पदार्थ दूर के स्तम्भ ऊतकों और जड़ में पहुँचते हैं, स्पष्ट नहीं है। कई प्रयोगों में पेड़ों को वलयन कर (ringing)—अर्थात् छाल इत्यादि को दारु तक निकाल कर—यह प्रदशित होता है कि निर्मित रस (शर्करा और नाइट्रोजना यौगिक) फ्लोएम के रास्ते जाते हैं। यदि ऐसा होता है तो यह आश्चर्यजनक बात है, क्योंकि जिस गति से शर्करा और अन्य संश्लेषित खाद्य पदार्थ पत्तियों से नीचे

स्तम्भ में जाते हैं सापेक्षतः अधिक हैं, और वास्तव में फ्लोएम के सब तत्व और चालनी-नलिकाएं संकरी और सापेक्षतः कम हैं। इन पदार्थों को फ्लोएम के रास्ते पौधे के हर भाग में पहुँचाने के लिए किसी प्रकार की सक्रियता की आवश्यकता होनी चाहिए जो अभी तक समझी नहीं गयी है। एक विकल्प विचार प्रतिपादित किया गया है कि पत्तियों द्वारा निर्मित खाद्य पदार्थ, अर्थात निर्मित रस और कच्चे रस——जल और खनिज लवण——वाहिकाओं के रास्ते जाते हैं। यदि यह पूरी तौर पर साबित हो जाय तो पौधे के वितरण की विधि कम से कम स्पष्ट और सुबोध हो जाय। मन की आँखों में दारु-वाहिकाओं में जल की धारायें कुछ में ऊपर चढ़ती हुई और कुछ में नीचे आती हुई दिखायी दे सकती हैं: कुछ दारु के रास्तों से ऊपर चढ़ती हुई और अन्यों में नीचे आती हुई। चढ़ने और उतरने के प्रत्येक कदम में वाहिकाओं से लगी हुई कोशिकाएं अपनी जरूरत के पदार्थ ले सकती हैं। वे इस प्रकार प्राप्त भोजन को पास पड़ोस की कोशिकाओं में भी बाँट सकती हैं, जो कि उनके समान खाद्य-पदार्थों के लिए भूखी हों। बहती हुई जल की धारा दारु वाहिकाओं के समीप के ऊतकों में सब आवश्यक पदार्थ ला सकती है। वाहिकाओं से लगे हुए ऊतकों की कोशिकाएं इस बहती हुई धारा से प्रदाय ग्रहण करती हैं, और अन्य कोशिकाओं में वितरण का कार्य एक कोशिका से दूसरी कोशिका में विसरण के प्रक्रम द्वारा मन्द गति से लेकिन निश्चित रूप से चलता रहता है।

अतः वाष्पोत्सर्जन का अध्ययन निश्चित के स्पष्ट क्षेत्र से धुँधले अनिश्चित, और आगे अज्ञात को ले जाता है, जिसके अंधकार में भविष्य का अनुसंधान ही प्रकाश डाल सकता है। तथापि, जो कुछ भी ज्ञात है उससे प्रदर्शित होता है कि हरे पौधे के जीवन में जल कितना महत्वपूर्ण भाग लेता है, और, थोड़े जल के रहते हुए भी, जिसको कि वह उपयोग में ला सकता है, किस दक्षता से पौधे ने अपने को जल के उपयोग करने के लिए व्यवस्थित कर लिया है अथवा सहन करने योग्य बना लिया है।

अध्याय ८

विभिन्नता और आनुवंशिकता : विकास। जनन; अलैंगिक तथा लैंगिक। कोशिका और केन्द्रकीय विभाजन : गुणसूत्र आनुवंशिकता के भौतिक आधार के रूप में। पौधों और जन्तुओं का प्रयोगात्मक प्रजनन। मन्डेलीय वंशागति

जीवन की सब अभिव्यक्तियों में पीढ़ी दर पीढ़ी, पौधों और जन्तुओं का प्रत्येक का अपने किस्म के सन्तनन से अधिक परिचित अथवा अधिक आश्चर्यजनक कोई अभिव्यक्ति नहीं है। एक पीढ़ी के उपरान्त दूसरी आती है और नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के अलग-अलग लक्षणों का इतने अनुराग से अनुसरण करती है कि प्रत्येक प्रकार का पौधा और जन्तु अनुत्परिवर्त्य (immutable) प्रतीत होता है। वास्तव में विभिन्न प्रकार के जीवों के प्रत्येक के सदस्य इतने समरूप होते हैं कि वे एक ही समुदाय में रखे जाते हैं जिसको एक जाति या स्पीशीज कहते हैं और वे सब उसी नाम से ज्ञात होते हैं: उदाहरणार्थ रोजा कैनीना (डॉग रोज) को जातीय नाम सब डॉग रोजेज और वंशीय नाम सब रोजेज से नामोद्दिष्ट किया जाता है।

लेकिन, यद्यपि जिस प्रकार एक राही को किसी भेड़ के झुंड के सदस्यों के बीच किसी प्रकार का अन्तर प्रतीत नहीं होता, परन्तु गड़रिया तथा भेड़ों की रखवाली करने वाले कुत्ते को यह अन्तर स्पष्ट जान पड़ता है। इसी प्रकार जो पौधों और जानवरों को पालते हैं उनको ज्ञात होता है कि किसी स्पीशीज के सब सदस्य सब प्रकार से सम नहीं होते। उनमें केवल अन्तर ही नहीं होते अपितु ये अन्तर विभिन्न प्रकार के होते हैं। किसी स्पीशीज के सदस्य समूहों में रखे जा सकते हैं, एक समूह दूसरे समूह से यद्यपि अल्प अन्तर ही प्रदर्शित करता है लेकिन यह अन्तर निरन्तर रहता है।

जहाँ इस उपविभाजन का प्रदर्शन किया जा सकता है वहाँ इन समुदायों को 'सूक्ष्म स्पीशीज' या 'सूक्ष्म जातियाँ' कहते हैं। जिस प्रकार यह प्रयोग द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है कि एक स्पीशीज उसके अन्तर्गत रखे गये 'सूक्ष्म स्पीशीज' के गुणों के तद्रूप प्रजनित (breeds true) होता है, इसी प्रकार यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी 'सूक्ष्म स्पीशीज' के सदस्य भी उस विशेष समुदाय के विशिष्ट गुणों के तद्रूप प्रजनित होते हैं। एक 'सूक्ष्म स्पीशीज' के सब व्यक्तिविशेष एक दूसरे

के समरूप नहीं होते। इनमें से कुछ के लक्षण दूसरों में नहीं होते या कम स्पष्ट होते हैं, और इन लक्षणों में से कुछ अचल रहते हैं, जो सन्तान में पुनः प्रकट होते हैं, तथा दूसरे उन स्थितियों के अनुसार ही प्रकट होते तथा लुप्त होते रहते हैं जिनमें उस व्यक्तिविशेष को रखा जाता है। जब यह मान लिया जाता था कि एक स्पीशीज एक नियत जैव इकाई (biological unit) है, तो इसके जो सदस्य भी विशिष्ट विलक्षणतायें प्रदर्शित करते थे, उनको किस्में या उपजातियाँ कहते थे और किस्मों के अस्तित्व को समझाने के लिए यह माना जाता था कि जीवित पौधों व जन्तुओं में वे शक्तियाँ निहित हैं जो अपने समान को उत्पन्न करने में परवश होते हुए भी समानता की पहचान से कुछ भिन्न हो जाते हैं, अर्थात विभिन्नता प्रदर्शित करते हैं। अब यद्यपि यह स्पष्ट है कि 'किस्म' (variety) शब्द के अन्तर्गत भेद के विशेष प्रकार आते हैं, न तो 'किस्में' और न 'विभिन्नतायें' ही, जीवन के रूप के, अनुत्परिवर्त्य न होने पर भी, परिवर्तन की सामर्थ्य रखने के तथ्य को प्रदर्शित करने की अपेक्षा अधिक निश्चित महत्त्वपूर्ण अर्थ नहीं रखते।

ठीक जिस प्रकार एक वर्तमान स्पीशीज का निकटतम अवलोकन इस निष्कर्ष की ओर संकेत करता है, उसी प्रकार विश्व के इतिहास का सुदूर दृश्य भी इसी ओर संकेत करता है। जब पृथ्वी तल पर उत्पन्न हुए जीवों के जलूस का, जो या तो लुप्त हो गये हैं और दूसरों से प्रतिस्थापित हो गये हैं, या अब भी विद्यमान हैं, पुनर्विलोकन किया जाता है तो यह अस्थिरता का संकेत करता है, अपरिवर्तनशीलता का नहीं। कोयला युक्त संस्तरों के फॉसिल पौधे अधिकांशतः वर्तमान पेड़ों तथा शाकों से इतने भिन्न प्रकार के हरे पौधों के अवशेष है कि उनका वर्गीकरण पुष्पी पादपों के साथ नहीं किया जा सकता और न वे उनके पूर्वज ही माने जा सकते हैं। तथापि, यह सम्भव है कि जब अनुपम वनस्पति वाले कार्बनी-युग के जंगल उन्नति के पथ पर थे तब पुष्पी पादपों का पूर्ववत ही अस्तित्व था, अर्थात इतनी उच्च कोटि का उनका पुरातनत्व है।

यद्यपि, पृथ्वी के पटल की खोज यह प्रदर्शित कर सकती है कि वर्तमान जीवित पौधों के समूहों का उद्भव कितना प्राचीन है, फिर भी पौधों का अनुक्रम, जो यह प्रकट करता है, से यह ज्ञात होता है कि जीवन आदिकाल से पूर्वग अन्तिम पूर्णता में स्थिर नहीं रहा, बल्कि इसमें प्रगामी परिवर्तन हुए हैं। कुछ रूपों ने अधिक विस्तृतता प्रस्तुत की और दूसरे एक या दूसरी जटिलता की स्थिति पर पहुँच कर लम्बी भूवैज्ञानिक अवधियों तक स्थिरता से अपरिवर्तित रहे हैं; अन्य, एक बार विस्तृतता प्राप्त कर इस सीमा तक सरलीकरण प्राप्त कर गये हैं कि यह कहना कठिन है कि वे आद्य रूप से ही सरल हैं या अधिक संकीर्ण पूर्वजों के वंशज हैं।

पौधों के स्थान-वितरण (distribution in space) का अध्ययन काल-वितरण द्वारा इंगित निष्कर्ष की पुष्टि करता है। कुछ स्पीशीज जो किसी समय विस्तृत रूप से वितरित थे अब एक संकीर्ण क्षेत्र में ही सीमित हैं। मेडन हेयर ट्री (गिंको बाइलोबा), जैसा कि फॉसिल प्रमाणित करते हैं, बहुत समय पहले ब्रिटेन और यूरोप के विस्तृत भूमि-भागों के मूल निवासी थे। आज इस वंश का एकमात्र प्रतिनिधि चीनी मन्दिरों के उद्यानों के अतिरिक्त संसार में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता, जहाँ कि पुजारियों ने इसको शरण-स्थान दिया है जो कि प्रकृति ने भी इसको नहीं दिया। कैलिफोर्निया का विशाल वृक्ष सिक्वोइया जाइजेन्टिया और रेड वुड (सिक्वोइया सेमपरवाइरन्स) उत्तरी अमरीका के पश्चिमी रियासतों के संकीर्ण क्षेत्रों के मूल निवासी हैं, और वहाँ भी रेड वुड केवल कुछ सीमित छोटे-छोटे जंगलों में ही पाये जाते हैं। तथापि ये महान शंकुधारी वृक्ष जो कभी विस्तृत क्षेत्र में वितरित थे, अब इतने एकान्तवासी हैं।

भिन्न-भिन्न कालों में पौधों और जन्तुओं के विकास की व्याख्या के लिए भिन्न-भिन्न परिकल्पनायें रखी गयी हैं लेकिन अब तक उनमें से कुछ को अनुमति मिल पायी है, परन्तु किसी को भी सर्वव्यापी स्वीकृति नहीं मिली है। सभी आधुनिक सिद्धान्तों में एक बात समान है कि वे, जैसा वास्तव में किसी भी विकासीय सिद्धान्त (evolutionary theory) को करना चाहिए, आनुवंशिकता (heredity) तथा विभिन्नता (variation) के दो आभासी विरोधी तथ्यों को विचाराधीन रखते हैं। एक, आनुवंशिकता, लक्षित करती है कि जनक सन्तान में गुण सम्प्रेषित करता है; दूसरा, विभिन्नता बताती है कि सन्तान जनक के गुणों से भिन्न गुण प्रदर्शित कर सकते हैं। अतः इससे यह परिणाम निकलता है कि विकास के विवेचन में विभिन्नता तथा आनुवंशिकता का अध्ययन एक आवश्यक प्रारम्भिक विषय है। इस अध्ययन में प्रथम प्रश्न जिसका उत्तर देना आवश्यक है यह है कि जनक से सन्तान में संप्रेषण की विधि की क्या प्रयुक्ति है? इसका उत्तर जनन के प्रक्रमों की खोज करने तथा पौधों और जन्तुओं के प्रायोगिक प्रजनन के द्वारा मिल सकता है।

जिस प्रकार क्लैमिडोमॉनैस, जो एककोशिक पौधों का एक आद्य वंश है, सामान्य पादप शरीरकिया विज्ञान के लिए परिचय के रूप में उपयुक्त हुआ था, उसी प्रकार यह पुनः जनन के शरीरकिया विज्ञान के अध्ययन में प्रस्थान बिन्दु के लिए उपयुक्त हो सकता है। क्लैमिडोमॉनैस की स्पीशीज दो विधियों में से एक से अपने जातिवर्ग को चिरस्थायी रखते हैं। कुछ परिस्थितियों में चर हरी कोशिका (चित्र ३) जो व्यक्तिविशेष की रचना करती है, विभाजित और पुनः विभाजित होने पर सब प्रकार से समान रूप

से प्रतीत होने वाले दो या अधिक कोशिकाओं के समूह को उत्पन्न करती है और जो उसी के समान होते हैं, केवल अन्तर इतना है कि वे कुछ छोटे होते हैं। जैसे कि मिनर्वा जोव के सिर से समस्त्र उत्पन्न हुई थी, उसी प्रकार ये अलैंगिक उत्पादित एककोशिक व्यक्ति (चल बीजाणु) जनक कोशिका के विभाजित शरीर से मातृ भित्ति के अन्त्य भंजन द्वारा उत्पन्न होते हैं। वे समूह से अलग होते हैं, अपने विभिन्न रास्तों से होकर जाते हैं और प्रत्येक एक प्रौढ़ व्यक्ति रूप में वृद्धि करता है और सब बातों में उसके समरूप होता है जिसने उसको जन्म दिया है।

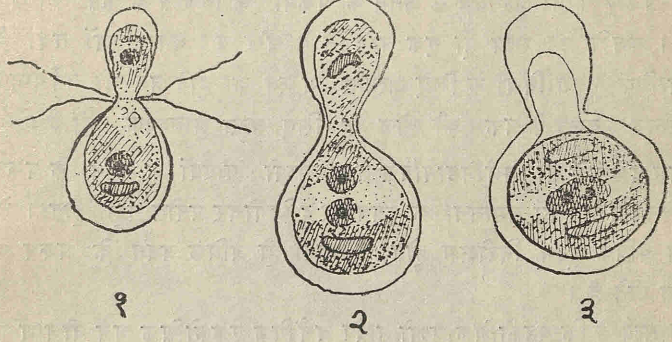

चित्र ४१—क्लैमिडोमॉनैस का लैंगिक जनन

दूसरी परिस्थितियों में एक नया व्यक्ति एक पूर्णरूपेण भिन्न विधि द्वारा उत्पन्न होता है। दो चर हरे क्लैमिडोमॉनैसी कोशिकाएं एक दूसरे के समीप पहुँचते हैं, और जैसा कि कुछ स्पीशीज में होता है, वे एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आ जाते हैं (चित्र ४१)। एक का केन्द्रक दूसरे तक पहुँचता है और उसके साथ संगलित हो जाता है तथा उनके कोशिकाद्रव्य संमिश्रित हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप दो एक-कोशिक व्यक्तियों के कोशिकाद्रव्य के संमिश्रण तथा केन्द्रकों के युग्मन से एक एकल एककोशिक व्यक्ति उत्पन्न होता है।

अतः क्लैमिडोमॉनैस में और दूसरे एककोशिक पौधों में भी दो प्रत्यक्ष रूप से विशिष्ट प्रक्रम घटित होते हैं, एक लैंगिक प्रक्रम जिसमें दो व्यक्तियों के संलयन द्वारा एक व्यक्ति की रचना होती है। दूसरा, अलैंगिक जनन जिसमें जाति का गुणन या वृद्धि होती है। उच्चकोटि पौधों तथा जन्तुओं में दोनों प्रकार के परिणाम लैंगिक जनन के द्वारा उद्भूत होते हैं, क्योंकि उनके बहुकोशिक कायों में कोशिकाएं जो युग्मों में संगलित होती है प्रायः बहुत अधिक संख्या में उत्पादित होती हैं। वे

लैंगिक कोशिकायें या युग्मक होते हैं, और जब ये संगलित होते हैं तो हर युग्म का उत्पाद एककोशिक भ्रूण या युग्मनज होता है जिससे यथा समय एक नया व्यक्ति उत्पन्न होता है।

क्लैमिडोमॉनैस के जनन से पुष्पी पादप के जनन तक एकदम पहुँच जाने में हम विकास संबंधी बहुत से रोचक तथ्यों को छोड़ देते हैं, इसलिए यहाँ दूसरे प्रकार के पौधों, जैसे बहुकोशिक शैवालों, लिवरवर्टस, मॉस, पर्णागों और शंकुधारी पौधों, के जनन का वर्णन करने के लिए विलम्ब करने में हर प्रकार का प्रलोभन है। केवल इस प्रकार के ही अध्ययन से जनन के प्रक्रमों के विकास के क्रम की खोज हो सकती है। यद्यपि यह स्वयं ही एक अध्ययन है और यह वनस्पतिज्ञों तथा विकास के व्यावसायिक विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त महत्व का होते हुये भी वर्तमान कार्य, अर्थात आनुवंशिकता के प्रक्रम की खोज के लिए बहुत आवश्यक नहीं है।

प्रथम दृष्टि में तो क्लैमिडोमॉनैस तथा पुष्पी पादपों के जनन के प्रक्रमों के मध्यस्थ किसी प्रकार की समानता का व्यवहार दृष्टिगोचर प्रतीत नहीं होता। लेकिन जितना ही अधिक सूक्ष्म निरीक्षण होता है उतना ही अधिक जनन के प्रक्रम समरूप होते प्रतीत होते हैं।

यह सत्य है कि बहुकोशिक पुष्पी पादप अलैंगिक एककोशिक चल बीजाणु उत्पन्न नहीं करता, तो भी यह कायिक विधियों द्वारा अलैंगिक रूप में प्रवर्धन की महान शक्ति प्रतिधारण करता है और इन शक्तियों के कारण कई पौधे स्वभावतः संख्या में वृद्धि करते हैं। आलू की बहुत-सी किस्में पुष्प उत्पन्न करने में असफल रहती हैं, और यदि वे पुष्प उत्पन्न भी करती हैं तो उनमें विरल ही बीज पैदा होते हैं। कन्द जाति के प्रवर्धन का कार्य करते हैं। उपयुक्त मिट्टी में लगाये गये डैफोडिल के पौधे कुछ ही वर्षों में संख्या में सौ गुना वृद्धि करते हैं जो पृथक् हो कर स्वतंत्र पौधों के समान बढ़ते हैं। कंटक-गुल्म बीज के द्वारा जनन करने के अतिरिक्त अपनी संख्या में वृद्धि के लिए अलैंगिक विधियों को काम में लाते हैं। उनकी मेहरावी शाखायें जमीन की ओर झुक जाती हैं, और जहाँ पर वे जमीन को छूती हैं वहाँ जड़ें उत्पन्न करती हैं, और जल्दी ही स्वयं रोपित शाखा की कलियों से नवीन पौधे उत्पन्न होते हैं और पुराने पौधे से दूर तक फैल जाते हैं। इंगलैंड के एल्म्स की समानता तथा बड़ी पंक्तियों में संरेखण का श्रेय उस शक्ति को है जिसके द्वारा मूल अंतःभूस्तारी (suckers) उत्पन्न करते हैं, और अगण्य जंगली तथा कृष्ट पौधे कायिक प्रवर्धन की विधियों का उपयोग करते हैं। वास्तव में कुछ को, अपनी जाति के प्रवर्धन के लिए कोई दूसरा साधन ही नहीं मिलता। इलोडिया कैनेडेन्सिस जो कैम नदी के प्रवाह को रुद्ध कर देता है,

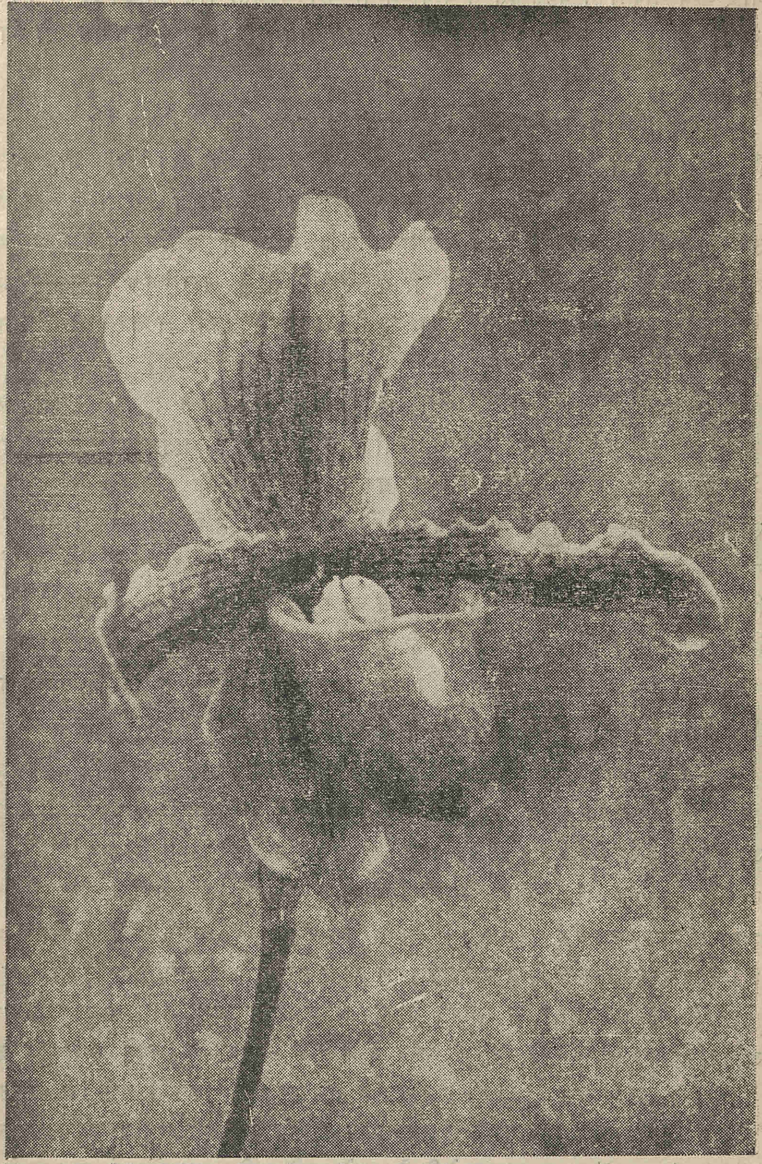

चित्र ४२—एक ऑर्किड (सिप्रिपीडियम) का पुष्प

और अन्य नदियों में बहुतायत से पाया जाता है; मुख्यतः पौधे के टुकड़ों के पृथक् हो जाने से प्रवर्धन करता है, क्योंकि इंगलैंड में इस पौधे के केवल मादा पेड़ ही स्थापित हो पाये हैं।

तथापि, अधिकांश पुष्पी पादप बीजों के द्वारा अपनी किस्म को जनित करते हैं जिनके भ्रूण लैंगिक जनन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। कोई भी, जो फूलों के अनुपम रूपों की विविधता तथा रचना की विस्तृतता का सर्वेक्षण करता है वह अच्छी तरह कल्पना कर सकता है कि लैंगिक जनन पुष्पी पादप में क्लैमिडोमॉनैस की अपेक्षा अधिक संकीर्ण होना चाहिए। तब भी यह ऐसा नहीं है, प्रारम्भिक अवस्थाएँ अधिक विस्तृत हैं, लेकिन निषेचन की क्रिया पुष्पी पादपों में उतनी ही सरल है जितना कि एककोशिक हरित शैवालों में।

रचना की अधिक संकीर्णता जो पुष्प प्रदर्शित करते हैं उसका कोई प्रत्यक्ष संबंध जनन से नहीं बल्कि परागण, अर्थात् परागकोश से वर्तिकाग्र तक परागकणों के पहुँचने की क्रिया, से होता है। परागकण उसी पुष्प के वर्तिकाग्र तक या उसी स्पीशीज के दूसरे फूलों के वर्तिकाग्र तक ले जाये जाते हैं जिनमें कि परागकण वृद्धि कर सकें और निषेचन में भाग ले सकें। इस प्रकार पुष्पी पादप पुष्पी विरचनाओं की विलक्षण श्रेणियाँ, सापेक्षतः साधारण, जैसे बटरकप में, से उच्चतः विस्तृत, जैसे डेजी में, प्रदर्शित करते हैं। इन श्रेणियों की संकीर्णता की चरम सीमा ऑर्किड्स में पायी जाती हैं (चित्र ४२), जिनमें से अधिकांश का वर्णन डार्विन की पुस्तक 'पुष्पों के रूप और ऑर्किडस' में अत्यन्त सुन्दरता से किया गया है।

एक पुष्पी पादप के पुष्प में अंगों के बहुत से समुच्चय होते हैं जिनमें से प्रत्येक को किसी साधारण रचना के पुष्प, उदाहरणार्थ मैग्नोलिया, में आसानी से पहचाना जा सकता है। मैग्नोलिया (चित्र ४३) तथा कुछ दूसरे पुष्पों में सबसे बाहर परि-दलपुंज (perianth) होता है जो एकसमान सदस्यों का समुच्चय होता है, परन्तु प्रायः यह बाह्यदलपुंज (calyx) और दल-पुंज (corolla) में भिन्नित रहता है। पश्चाद्वृत्त अवस्था में बाह्यदलपुंज या तो पृथक् पत्ती के समान बाह्यदलों का बना होता है, या एक दूसरे से संयुक्त बाह्यदलों का बना होता है। ये पुष्प कलिका के अधिक कोमल सदस्यों की रक्षा के काम में आते हैं जिनको वे लपेटे रहते हैं। बाह्य-दलपुंज के अन्दर दल (petals) होते हैं जो सामूहिक रूप से दल-पुंज कहलाते हैं और ये भी पृथक या एक दूसरे से संयुक्त हो सकते हैं। दल बहुधा चमकदार रंग के होते हैं और उनमें प्रायः सुगन्ध होती है; जो कभी-कभी मनुष्यों एवं मधुमक्खी तथा अन्य कीड़ों के लिए समान रूप से ही आकर्षक और सुखकर होती है, और कभी-कभी

हमारी इन्द्रियों के लिए तो अप्रिय होती है लेकिन कुछ मक्खियों के लिए आकर्षित करने वाली होती है और ये कीड़े इन मांस की दुर्गन्ध-युक्त पुष्पों के परागण कारकों का कार्य करते हैं। प्रिमुला तथा कई और पौधों में संयुक्त दल एक नली बनाते हैं जिसमें मकरन्द, अर्थात मधुमक्खियों, पतंगों और अन्य कीड़ों के लिए एक आकर्षक शर्करा युक्त तरल पदार्थ, होता है। रंग, गंध, मकरन्द कीड़ों को पुष्प की ओर आकर्षित करने में सहयोग प्रदान करते हैं। दलपुंज नली की लम्बाई और पुष्प की सामान्य रचना कीड़ों की कुछ विशिष्ट किस्मों के कार्यकारी आगमन को सुगम बनाते हैं; लेकिन दूसरे कीड़ों को, उदाहरणार्थ जिनकी शुंड छोटी होती है, मकरन्द को उनकी

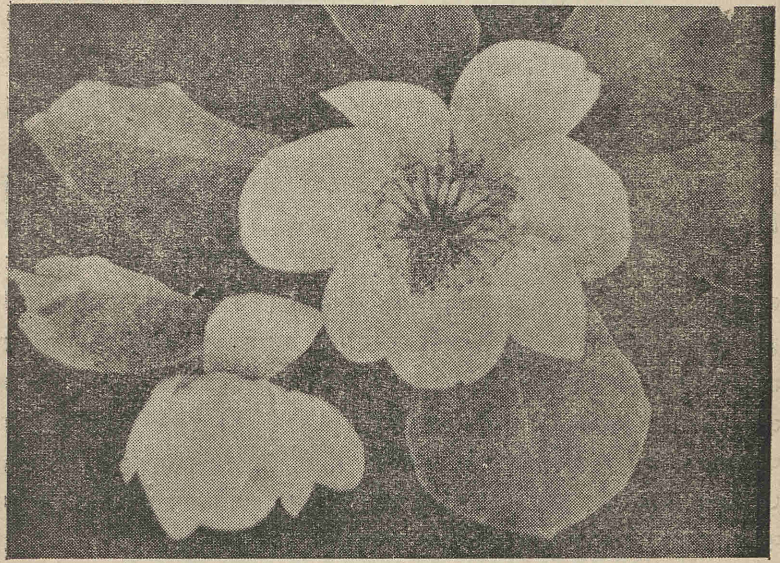

चित्र ४३—मैग्नोलिया वाटसोनाइ का पुष्प असंख्य पुंकेसरों और अंडपों सहित सरल रूप की पुष्प रचना प्रदर्शित करते हुये।

पहुँच से दूर रखकर उनके आगमन में बाधा डालते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी रचना इस प्रकार की होती है कि जब उचित प्रकार का कीड़ा पराग या मकरन्द की खोज में फूल में आगमन करता है तो उसके शरीर का कोई भाग पहले तो वर्तिकाग्र को स्पर्श करता है और तत्पश्चात पुंकेसरों को। यदि पुंकेसर परिपक्व हों तो जब कीड़ा उड़ता है तो उसके शरीर पर पराग निक्षेपित हो जाता है और बाद में यह दूसरे फूल

के वर्तिकाग्र तक स्थानान्तरित हो जाता है और इस प्रकार किसी स्पीशीज के एक फूल से दूसरे फूल तक उड़ने में कीड़ा प्रत्येक को बारी-बारी से परागित करता है।

इन साधनों द्वारा, जिनकी विस्तृत व्याख्यायें उतने ही विभिन्न प्रकार की हैं जितने वे सुन्दर हैं, बहुत-सी जातियों में पर-परागण होता है। यद्यपि अधिकांश जातियों में पर-परागण एक नियम है, लेकिन बहुत से ऐसे भी हैं जिनमें स्वपरागण होता है। उदाहरणार्थ, साधारण मटर में, यद्यपि फूल की रचना के आधार पर यह बात प्रदर्शित करते हैं कि यह पर-परागण निष्पन्न करने में कभी कार्यशील था, लेकिन अब पुष्प स्वभावतः स्वपरागित होते हैं। जब कलिका खुलने को होती है तो पुंकेसर, जिनके परागकोश वर्तिकाग्र के चारों ओर वलयाकार रूप में व्यवस्थित रहते हैं, वर्तिकाग्र के ऊपर सीधे पराग छिड़कते हैं, तो भी दूसरे मटरकुलीय (papilionaceous) पुष्प, उदाहरणार्थ यूलेक्स, इसी प्रकार की रचना के होते हुए भी मधु मक्खियों द्वारा पर-परागण सम्पन्न करने में पूर्ण दक्ष है। ग्रीष्म के प्रभात काल में जब यूलेक्स के मधु के समान गन्ध से हवा भरी होती है तो कीड़े मधु एकत्रित करने में तत्पर रहने के हेतु एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर निरन्तर जाते रहते हैं और आकस्मिक ढंग से परन्तु निश्चय ही एक पुष्प से दूसरे पुष्प के वर्तिकाग्र (stigma) तक पराग पहुँचाते हैं।

परागण में इसका महत्व होते हुए भी बाह्यदलपुंज की भाँति दल-पुंज भी आवश्यक अगों का बना नहीं होता, लेकिन उसमें निषेचन के लिए सहायक अंग होते हैं। एक पौध को बीज उत्पन्न करने के योग्य बनाया जा सकता है यद्यपि उसके बाह्यदल पुंज एव दलपुंज को कृत्रिम रूप से पृथक् कर दिया जाय। पुष्प के आवश्यक अंग पुंकेसर (stamen) तथा स्त्रीकेसर (pistil) हैं। पुंकेसरों को इस प्रकार पहचाना जा सकता है कि परिपक्व अवस्था में वे, अथवा परागकोश (anthers), जो उनके प्रमुख अग होते हैं, फटते हैं और अपने परिवर्धन काल में बने हुए पराग को कभी धीरे से और कभी धड़ाके के साथ बाहर निकालते हैं। पुंकेसर की अपेक्षा केन्द्र में स्थित स्त्रीकेसर होता है। कुछ पुष्पों में और विशेषकर सरल आकार वालों में, उदाहरणार्थ बटरकप और मैग्नोलिया (चित्र ४३) में, अनेक पृथक् स्त्रीकेसर होते हैं और दूसरों में केवल (चित्र ४४ क) एक ही होता है। स्त्रीकेसर कालान्तर में बीज-पात्र हो जाती है। इसके तीन भाग होते हैं: सबसे निम्नतम फूला हुआ थैले के समान अण्डाशय (ovary) होता है जिसमें एक या अधिक सूक्ष्म सफेद से बीजाण्ड होते हैं। प्रत्येक बीजाण्ड (ovule) में छोटा वृन्त युक्त ऊतक का लगभग गोलाकार आकृति का पुंज होता है, जो निषेचन के पश्चात वृद्धि करता है और बीज में परिवर्धित हो जाता है। अण्डाशय के ऊपर, स्त्रीकेसर हरे ऊतक के लम्बे या छोटे

स्तम्भ के सदृश सतत रहती है, यह वर्तिका (style) है जिसका अन्त घुंडीदार, पट्टवत या सपालि वर्तिकाग्र में होता है और परिपक्व अवस्था में अपने रोमिलता अथवा चिपचिपेपन के द्वारा बहुत से पुष्पों में इसको पहचाना जा सकता है। परागण के हेतु हवा पर आश्रित पुष्पों, उदाहरणार्थ मक्का और दूसरी घासों, में वर्तिकाग्री पृष्ठ बड़ा होता है और लम्बे रोमों की वृद्धि के कारण लगभग पंखदार होता है जिससे

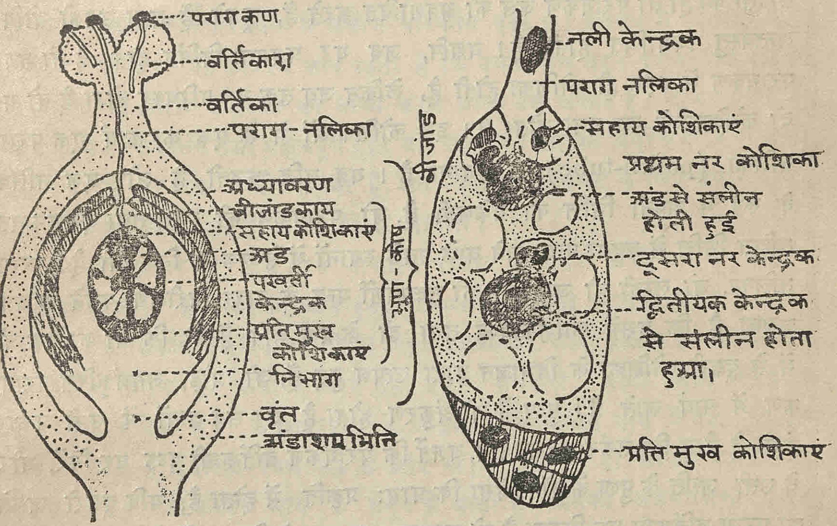

चित्र ४४—क और ख—चित्र जिनमें (क) स्त्रीकेसर की संरचना और (ख) निषेचन का प्रक्रम दिखलाया गया है।

कि हवा द्वारा उड़ाये हुए पराग के वर्तिकाग्र तक पहुँचने की संभावना बहुत अधिक हो जाती है, बजाय उस दशा के जब वर्तिकाग्री पृष्ठ छोटा होता है जो प्रायः उन जाति के पौधों में पाया जाता है जिनमें कीड़ों के द्वारा परागण होता है।

इसको प्रयोग द्वारा दिखलाया जा सकता है कि पुंकेसर तथा स्त्रीकेसर जनन के लिए आवश्यक हैं। यदि सुगमता से प्रश्नीय पुष्प का पुंस्त्वहरण (emasculated) कर दिया जाय, अर्थात जब पुंकेसर पुष्प के कलिका-अवस्था में ही तथा स्फुटन की दशा के पूर्व ही पृथक् कर दिया जाय बशर्ते कि उस जाति के पराग को वर्तिकाग्र तक पहुँचने को पतले कागज के थैले से पुष्प को ढक कर रोका जाय, तो बीज नहीं बनता।

यदि किसी प्रकार उसका या उसी जाति के दूसरे पुष्प का पराग परिपक्व वर्तिकाग्र पर बुरक दिया जाय तो उचित समय में ही बीज बन जाता है।

परागण एवं निषेचन के मध्य जो प्रक्रम होते हैं उनका सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से निरीक्षण किया जा सकता है। परागकण अपना स्वतन्त्र अस्तित्व, यद्यपि अल्पकालिक ही, धारण करने के योग्य हैं। इस तथ्य को उन्हें शर्करा विलयन में अंकुरित करने से प्रदर्शित किया जा सकता है। यदि पराग परिपक्व हों और विलयन ठीक सांद्रता का हो तो परागकण जल को अवशोषित करते हैं, फूलते हैं तथा उनकी जीवित अन्तर्वस्तु विभाजित होती है। यद्यपि, जब यह प्रथमतः निर्मित होता है तो तरुण परागकण में एक ही कोशिका होती है, लेकिन जब तक यह परिपक्व होता है तो यह दो कोशिकाओं का बना होता है। इन कोशिकाओं में से एक का कार्य एक पराग-नलिका (pollen-tube) को बनाना है। यह वृद्धि करती है और एक नलिका के रूप में अपनी भित्ति को धकेलती है, जो परागकण की स्थूल तथा एकसमानतः तक्षित भित्ति में बहुधा पाये जाने वाले पतले स्थानों में से एक से निकलती है। पराग-नलिका, जो लम्बी हो जाती है, को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के द्वारा निरीक्षण करने से पता चलता है कि इसमें कोशिकाद्रव्य तथा दो केन्द्रक होते हैं जो कि दो कोशिकाओं में से दूसरी कोशिका के विभाजन द्वारा उत्पन्न हुए हैं, जो प्रौढ़, अनअंकुरित पराग-कण में पाये जाते हैं। पुष्प में जो अंकुरण होता है वह सब बातों में उसी प्रकार होता है जैसा कि शर्करा विलयन में, बशर्ते कि परागकण वर्तिकाग्री पृष्ठ पर गिरें, और वे उसी जाति के पुष्प के हों। जैसा कि प्रायः प्रकृति में होता है, यदि दूसरी जाति का पराग वर्तिकाग्र पर गिरता है तो सामान्यतया यह अंकुरित नहीं होता। तुलनात्मक रूप से बहुत कम दृष्टान्तों में दूसरी जाति का पराग वृद्धि कर सकता है और निषेचन भी सम्पन्न हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप संकर (hybrid) उत्पन्न होता है। इस प्रकार, प्रकृति तथा कर्षण दोनों ही अवस्थाओं में, जाति के मध्य बहुत से संकर उत्पन्न हुए हैं और विशेष रूप से ऑर्किड में, एक कुल जो दूसरों से इस तथ्य में भिन्न है, सुगमता से एक वंश की जातियों में ही नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न वंश के पौधों में संकरण होता है।

पुंकेसरों के निर्माण तथा पराग के परिपक्व होने के दरम्यान बीजांडों में परिवर्धन होता है। एक बीजांड बाह्यत्वचीय एवं अधः बाह्यत्वचीय स्तरों से उत्पन्न कोशिकाओं से बने हुए ऊतक के छोटे से टीले के रूप में अंडाशय से उत्पन्न होता है। सर्वप्रथम प्रत्येक बीजांड में लगभग समान कोशिकाओं का नग्न पुंज-सा होता है, लेकिन शीघ्र ही वह एक या दो आवरणों (अध्यावरणों) से परिवेष्टित हो जाता है जो (चित्र ४४)

बीजावरणों को बनाते हैं। अध्यावरण बीजांड के चारों ओर वृद्धि करते हैं और केवल अग्र भाग को छोड़कर, यह इसको पूर्ण रूप से परिवारित करता है, जहाँ कि वृद्धि के रुक जाने के कारण वे एक संकरा खुला मार्ग, अर्थात बीजांडद्वार (micropyle), बीजांड के लिए मार्ग प्रदान करने को छोड़ देते हैं। यद्यपि बीजांड में बीजांडद्वार देखना कठिन अवश्य है, लेकिन यह बीज की अवस्था में बहुधा प्रत्यक्ष दिखायी देता है और एक सूक्ष्म छिद्र की तरह प्रतीत होता है, जिसके नीचे भ्रूण के मूल का शीर्ष स्थित होता है। बीजांड के परिवर्धन में संकीर्ण परिवर्तन होते हैं। वास्तव में परिवर्तन इतने अनुपम होते हैं कि यह निश्चय जान पड़ता है कि उनके पीछे बहुत पुरानी एवं विभिन्न प्रकार के विकासीय इतिहास का बाध्य करने वाला बल अवश्य है। लेकिन परिवर्धित बीजांड में ये परिवर्तन तभी महत्वपूर्ण होते यदि उस इतिहास का अनुरेखण किया जाता, और क्योंकि यह एक लम्बी कहानी है, अतः यहाँ पर निषेचन के लिए तैयार बीजांड के आवश्यक भागों का ही वर्णन किया जायेगा।

बीजांडद्वार के ठीक नीचे परिपक्व बीजांड के सतह के नीचे एक केन्द्रकीय कोशिका होती है, जिसको अंड (oosphere) या स्त्री युग्मक कहते हैं। इसके साथ दो कोशिकाएं (सहाय कोशिकाएं; synergidae) और होती हैं जो निषेचन के पर्यन्त विलुप्त हो जाती हैं और इस प्रक्रम में बिना स्थायी भाग लिये हुए ही योगदान देती हैं। कोशिकाद्रव्य के केन्द्रीय रिक्तिकायुत भाग में पड़े हुए दूसरे केन्द्रक होते हैं (देखिये चित्र ४४ क और ख)। इनमें से, दो अधिक महत्व के हैं। उनमें से एक तो ऊपरी भाग के समूह से आता है जिसकी अंडकोशिका (अंड) और इसके संघटित दो कोशिकाएं एक भाग हैं, और दूसरा बीजांड के दूसरे आधारीय सिरे पर निर्मित चार केन्द्रकों के प्रतिमुख समूह (antipodal group) से आता है। प्रायः ध्रुवीय केन्द्रक (polar nuclei) से ज्ञात ये दो केन्द्रक एक दूसरे के निकट पहुँचते हैं और या तो तुरन्त ही एक द्वितीयक केन्द्रक (secondary nucleus) बनाने के लिए सलीन होते हैं या घटनाओं की प्रतीक्षा करते हैं। तदनन्तर वर्तिकाग्र पर निक्षेपित परागकणों की पराग-नलिकायें वृद्धि करती हैं और परजीवी पौधों की भाँति वर्तिकाग्र के केन्द्रीय भाग से होकर बढ़ती हैं और अंडाशय की गुकिहा तक पहुँच जाती हैं। वहाँ पहुँच कर प्रत्येक पराग-नलिका निसन्देह रासायनिक तौर पर आकर्षित हो किसी भी दिशा में बढ़ने के बजाय बीजांडद्वार का मार्ग खोज लेती है और उस संकरी कुल्या से होकर आगे बढ़ती है और सिरे पर।चौड़ी होती हुई बीजांड की सतह के निकट ही स्थित होती है। पराग-नलिका के चौड़े सिरे पर भित्ति कोमल और श्लेष्मकी हो जाती है, और दो केन्द्रक (नर युग्मक), जो नलिका मे होते

हैं, और प्रत्येक के साथ यद्यपि थोड़ा लेकिन निश्चित रूप से कोशिकाद्रव्य होता है, द्रवित भित्ति से होकर निकलते हैं और बीजांड में प्रवेश करते हैं। नर युग्मक में से एक अंड-कोशिका तक पहुँच जाता है और इसका केन्द्रक कोशिकाद्रव्य को वेधता है और मादा युग्मक तक पहुँच कर थोड़े समय तक उसके समीप पड़ा रहता है। अन्ततः नर व मादा केन्द्रक एक दूसरे के साथ संलीन होते हैं जिससे एक केन्द्रक बन जाता है। जो भी कोशिकाद्रव्य नर-केन्द्रक के साथ अंड-कोशिका में प्रवेश करता है अंड-कोशिका के कोशिकाद्रव्य के साथ संलीन हो जाता है। इस प्रकार केन्द्रकीय और कोशिकाद्रव्यीय संयोजन से निषेचित अंड-कोशिका या युग्मनज (zygote) बन जाता है। इस प्रकार एक नये व्यक्ति का जन्म होता है।

निषेचित अंड-कोशिका के चारों ओर एक कोशिका-भित्ति व्यवस्थित हो जाती है। अधिक या अल्प काल के विश्राम के उपरान्त, युग्मनज विभाजित होना प्रारम्भ करता है, और फल बनने के हेतु अंडाशय की भित्ति के परिपक्व होने के पूर्व ही युग्मनज एक सूक्ष्म बहुकोशिक पादप के रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसमें एक जड़, एक स्तम्भ, जो कलिका में अन्त होता है, और बीजपत्र होते हैं। सूक्ष्म जड़ बीजांडद्वार के समीप रहती है और अंकुरण के समय इसी द्वार से बाहर निकलती है। अतः यह स्पष्ट है कि पुष्प पादप का निषेचन प्रक्रम क्लैमिडोमॉनैस से सारभूततः समरूप है एक में, दूसरे की भाँति दो युग्मक संलीन होते हैं और एककोशिका, युग्मनज, को जन्म देते हैं जो नये व्यक्ति का प्रारम्भ होता है। क्लैमिडोमॉनैस में व्यक्तिविशेष एककोशिक होता है, और इसलिए युग्मनज को केवल आकार में वृद्धि करना होता है। पुष्पी पादप में एककोशिक युग्मनज को प्रौढ़ बहुकोशिक व्यक्ति होने के पूर्व विभाजित व पुनः विभाजित होना पड़ता है और जिन कोशिकाओं को यह उत्पन्न करता है उनका भी विभाजन होना आवश्यक है जब तक कि वे जड़, तना, पत्ती जैसे अंगों के रूप में प्रकट नहीं होते।

घटनाओं की प्रतीक्षा के हेतु छोड़ दिये गये दो केन्द्रकों का भविष्य आलेखन के योग्य है। जैसे ही वे निकट पहुँचते हैं, और कभी-कभी उनके संलयन के उपरान्त ही एक तीसरा केन्द्रक उनके निकट प्रतीत होता है। यह पराग-नलिका का द्वितीय केन्द्रक, अर्थात् दूसरा नर युग्मक है। यह केन्द्रक मादा युग्मक के साथ संलीन होने से किसी प्रकार वर्जित रखा जाता है, क्योंकि जैसे ही एक नर युग्मक निषेचन को कार्यशील बनाता है वैसे ही युग्मनज में रासायनिक परिवर्तन होता है जो कि दूसरे नर युग्मक के प्रवेश में रुकावट पैदा करता है। अंड-कोशिका के निकट गुजर कर द्वितीय नर युग्मक दो केन्द्रकों के साथ संलीन होता है। वे सब एकत्रित रूप में

संलीन होकर एक सूक्ष्मदर्शीय एवं शरीर-क्रियात्मक रूप से अति विरूप केन्द्रक बनाते हैं। इस प्रकार त्रिक संलयन (triple fusion) द्वारा बना केन्द्रक भ्रूणपोष केन्द्रक कहलाता है। इसके विभाजन से, और इसके कोशिकाद्रव्य के उत्तरवर्ती विभाजन से केन्द्रक भ्रूणपोष (endosperm) को जन्म देता है, जिसके ऊतक मादा पादप से प्राप्त तेल या मंड तथा प्रोटीन खाद्य पदार्थ से भर जाते हैं। भ्रूणपोष से परिवर्धनशील भ्रूण पोषण का प्रदाय ग्रहण करता है। अतः इस प्रकार पुष्पी पादप में द्विनिषेचन (double fertilization) होता है: एक तो, सत्य निषेचन

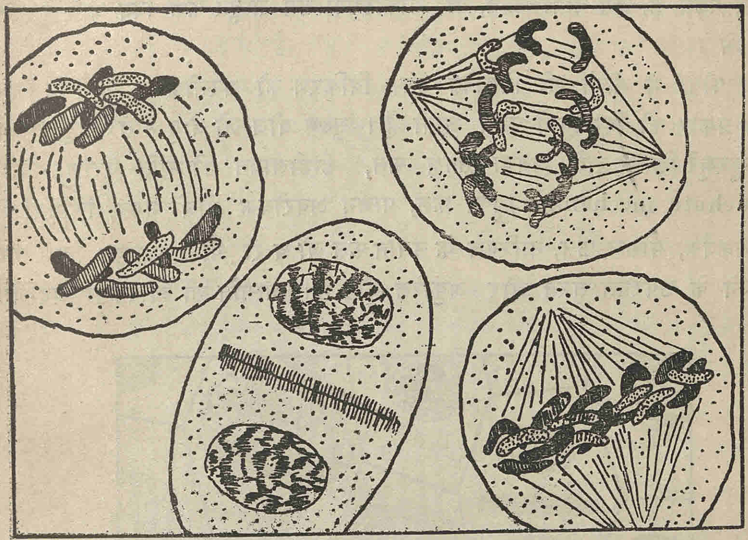

चित्र ४५—ऐलियम में केन्द्रकीय विभाजन का आरेखी निरूपण। अर्धसूत्री विभाजन (अर्धसूत्रण)।

जिसके फलस्वरूप युग्मनज, तथा तत्पश्चात् भ्रूण बनता है; दूसरा एक अतिरिक्त निषेचन होता है, जो खाद्य पदार्थ की कुछ मात्रा प्रदान करने के अलावा नये व्यक्ति की रचना में कोई प्रत्यक्ष योगदान नहीं देता। इस खाद्य पदार्थ को नवीन व्यक्ति बीज से बाहर आने तथा भूमि में अपने को स्थापित करने और निजी रक्षा करने के योग्य होने के लिए यथोचित एवं पर्याप्त रूप में बड़ा होने से पूर्व अपनी किशोर अवस्था में ग्रहण करता है।

परागण और निषेचन पुष्प में द्वितीयक परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। जैसे ही पराग वर्तिकाग्र पर निक्षेपित होता है और उसका अंकुरण प्रारम्भ होता है, अंडाशय

भित्तियों में वृद्धि और परिवर्धन के परिवर्तन उत्पन्न होते हैं और पुष्प के दूसरे भाग में भी ये परिवर्तन हो सकते हैं। अंडाशय भित्तियाँ फल भित्तियों में परिवर्तित हो जाती है और जैसे ही बीज परिपक्व होते हैं तो फलों में एक न एक प्रकार के परिवर्तन होते हैं तथा वे अपवृद्ध होते हैं और पक भी जाते हैं। अंडाशय मांसल या इतना काष्ठी हो जाता हैं कि उनके क्षय से ही बीज निर्मुक्त होते हैं, अथवा झिल्लीदार होकर झिल्लियाँ अन्ततोगत्वा फट जाती हैं और दुर्बल क्षेत्रों की रेखाओं के पास-पास खंडों में पृथक् हो जाते हैं ताकि बीज निर्मुक्त हो सकें और इस प्रकार या तो धीमे से गिर पड़ते हैं, जैसे वायोलेट में, या आकस्मिक रूप से दूर फेंक दिये जाते हैं, जैसे यूलेक्स में।

पौधों में बीजों की निर्मुक्ति तथा विकिरण को सरलीकरण करने के लिए विभिन्न प्रकार की विरचनायें पायी जाती हैं। सूक्ष्म बीज जो वायु में तैरते हैं, सपक्ष बीज, खुरखुरे किनारे वाले अथवा सपक्ष फल, डैन्डीलायन की भाँति पैराशूट-विधि (parachute mechanism) युक्त फल, पाचन अवरोधक बीजों युक्त, चिड़ियों के लिए आकर्षक, मांसल फल, नारियल के समान फल जो खारी पानी में बहुत दिनों तक डूबे रहने के उपरान्त तैरते और अंकुरित होते हैं। वनस्पति की व्यापकता प्रदर्शित

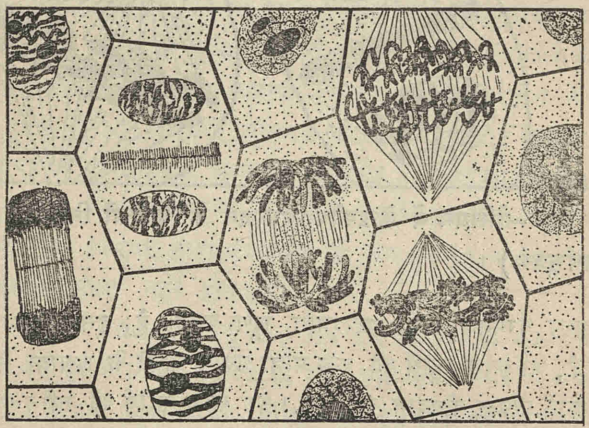

चित्र ४६—ऐलियम स्पी० में सूत्री विभाजन का अर्ध आरेखी निरूपण।

करती है कि इन सब और दूसरे अगण्य विरचनाओं द्वारा पृथ्वी की सतह पर उनके विशेष भूमि प्रदेशों में पौधों का बोया जाना निश्चित रूप से उपयुक्त होता है।

लैंगिक जनन के प्रक्रम से संबंधित तथ्य, जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है, पौधों तथा जन्तुओं के आनुवंशिकता से सम्बन्ध रखते हैं। प्रत्येक जनक सन्तान के शरीर के लिए भौतिक योगदान प्रदान करता है। जो काय वास्तव में नर व मादा युग्मक में स्थित रहता है केन्द्रकीय और कोशिकाद्रव्यी पदार्थ से बना होता है और इनके संलयन से एक नया व्यक्ति उत्पन्न होता है। लैंगिक जनन के तथ्यों से एक और परिणाम निकाला जा सकना सम्भव है। पुष्पी पादप में होने वाले प्रक्रम के वर्णन में यह संकेत किया गया था कि नर युग्मक, यद्यपि पराग-नलिका में कोशिका-द्रव्य से घिरा है लेकिन मादा कोशिका तक पहुँचने तथा उसके साथ संलीन होने के समय यह पूर्ण रूप से केन्द्रकीय पदार्थ का बना होता है। यह बात पौधों, जन्तुओं एवं दूसरे जीवधारियों के किस्मों के लिए भी सत्य है। उनमें यद्यपि अंड-कोशिका (मादा युग्मक) में केन्द्रक तथा कोशिकाद्रव्य दोनों ही होते हैं परन्तु नर कोशिका जो मादा कोशिका से बहुधा बहुत ही छोटी होती है, मुख्यत: या केवल केन्द्रकीय पदार्थ की बनी होती है।

जहाँ तक आनुवंशिकता के प्रयोगात्मक खोजों से और जीवन के तथ्यों से प्रकट होता है कि मादा जनक की अपेक्षा नर जनक का सन्तान के गुणों और रूप पर औसतन कम प्रभाव नहीं पड़ता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आनुवंशिकता का भौतिक आधार युग्मकों के केन्द्रक में होना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि किसी भी प्रकार से यह नहीं कहा जा सकता कि अंड-कोशिका के कोशिकाद्रव्य का कोई महत्व नहीं है। यह स्पष्ट रूप से नर युग्मक के अथवा बिना उसके योगदान के युग्मनज् के कोशिकाद्रव्य को प्रदान करता है। हरे पौधे में इसमें एक या अधिक अवर्णी लवक होते हैं जिसके उत्तरवर्ती विभाजन से काय के सभी अवर्णी लवक उत्पन्न होते हैं। फिर भी, जहाँ तक आनुवंशिकता का सम्बन्ध है नर या मादा युग्मक का केन्द्रक ही परम महत्व का है। यह निष्कर्ष उतना ही अधिक निश्चित होता जाता है जितना अधिक केन्द्रक की रचना तथा व्यवहार का अन्वेषण किया जाता है और जितना अधिक पौधों या जन्तुओं के गुणों की वंशागति (inheritance) के मार्ग का अध्ययन किया जाता है।

पौधे में कोशिका-विभाजन की विधि का कई बार हवाला दिया जा चुका है, परन्तु इस प्रक्रम के विस्तृत विवरण को इस स्थान पर विचार के लिए आरक्षित रखा गया है। जब एक साधारण कायिक कोशिका, उदाहरणार्थ किसी स्तम्भ या जड़ के अग्र कोशिका का विभाजन होना होता है, तो केन्द्रक में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं (चित्र ४६)। विभाजनों के मध्यान्तर वर्धमान कोशिका या सुप्त कोशिका का

केन्द्रक लगभग समांग रूप प्रस्तुत करता है। तथापि इसका एक भाग दूसरों की अपेक्षा अधिक गहनता से अभिरंजित होता है जिससे सूक्ष्मदर्शी के नीचे केन्द्रक लगभग कणिकामय आकृति प्रदर्शित करता है। विभाजित होने वाली कोशिका का केन्द्रक विस्तृत परिवर्तनों की श्रेणियों द्वारा इस तथ्य की घोषणा करता है। इन परिवर्तनों का मुख्य परिणाम यह होता है कि एक कुंडलित सूत्र गहन अभिरंजनशील पदार्थ के पुंज से गुथा हुआ प्रतीत होता है मानों कि रंगीन दानों से गुथा हुआ हार हो। सूत्र कम सन्निकट रूप से कुंडलित होता चला जाता है और शीघ्र ही विशिष्ट रूप से पृथक लम्बाइयों की श्रेणियों का रूप धारण कर लेता है। ये गुणसूत्र (chromosomes) हैं। ये कोशिका के जीवित अंग होते हैं जो स्वयं कोशिका की भाँति स्वांगीकरण, वृद्धि एवं विभाजन की शक्ति रखते हैं। पौधों की किसी विशिष्ट जाति की किसी कायिक कोशिका के केन्द्रकीय विभाजन के काल में प्रकट होने वाली गुणसूत्रों की संख्या कम हो सकती है जैसे पाँच और अधिक से अधिक छत्तीस या उससे भी अधिक हो सकती है, परन्तु चाहे यह संख्या कम हो या अधिक उनकी संख्या नियत होती है। चित्र ४६ में इनकी संख्या सोलह है। विभाजित होने वाले केन्द्रक के गुणसूत्रों द्वारा रूप व आकार में प्रायः भेद प्रतीत होते हैं और जब वे प्रतीत होते है तो ये भेद उसी प्रकार नियत रहते हैं और स्पीशीज के हर क्रमिक विभाजन में पुनः प्रकट हो जाते हैं।

गुणसूत्रों का विशिष्ट रूप और नियत संख्या का नियमित आवर्तन यह संकेत करता है कि प्रत्येक गुणसूत्र अपना व्यक्तित्व रखता है। सामान्यतः गुणसूत्र जो वास्तव में सूक्ष्मदर्शीय होते हैं दण्ड, V, या लगभग लघु विराम आकार के अथवा लगभग गोलाकार होते हैं। सर्वप्रथम वे केन्द्रक की रूपरेखा के अन्दर अनियमित व एक दूसरे से लिपटे हुए पड़े रहते हैं, लेकिन बाद की अवस्था में गुणसूत्र एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं और कोशिका की मध्यवर्त्ती या केन्द्रीय क्षेत्र में एकत्रित हो जाते हैं जहाँ कि वे लगभग एक ही समतल में क्रम से व्यवस्थित हो जाते हैं। मध्यवर्त्ती पट्टी (equatorial plate) अवस्था में पहुँचने पर या उसके पूर्व ही प्रत्येक गुणसूत्र केवल एक ही सूत्र दृष्टिगोचर न होकर युग्म सूत्र प्रतीत होता है और ऐसा मालूम होता है कि दो अनुदैर्घ्य अर्धों का बना हुआ हो। तब तक सूक्ष्म जीवद्रव्यीय तन्तुक—तर्कु—तन्तु (spindle fibres) जो गुणसूत्रों से बहुत भिन्न अभिरंजनशील गुणों वाले होते हैं कोशिका में प्रकट होते हैं। वे एक ध्रुव से दूसरे तक फैले रहते हैं और दोनों सिरों पर सघनतर जीवद्रव्य के पुंजों या ध्रुवीय टोपियों से विलयित हो जाते हैं। गुणसूत्र तन्तुओं से अपने को सम्बन्धित कर लेते हैं और फिर उनका पृथक्करण प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्येक गुणसूत्र के

अर्ध भाग साथ छोड़ देते हैं। अज्ञात शक्तियों से चालित एक संतति दल, अर्थात् अर्ध गुणसूत्रों का एक सेट एक ध्रुव तक पहुँच जाता है और दूसरा दूसरे ध्रुव तक। यात्रा पूरी होने पर गुणसूत्र कुंडलित हो जाते हैं और उनकी अलग-अलग रूपरेखायें पहचानी नहीं जा सकती और झिल्ली के निर्माण के साथ ही प्रत्येक संतति केन्द्रक उस दशा में चला जाता है जिसमें कि वह जनक केन्द्रक विभाजित होने से पूर्व था। केन्द्रक विभाजन के पश्चात, स्वच्छ जीवद्रव्य का एक पट्ट कोशिका के आरपार संतति केन्द्रक से समकोण बनाते हुए और सामान्यतः उनके बीचोंबीच प्रकट होता है। जीवद्रव्यी पट्ट के भीतर कोशिका-भित्ति पदार्थ स्रावित होता है और अन्ततः एक नयी कोशिका-भित्ति बनाने के लिए कोशिका के मध्य आरपार तना हुआ दिखाई देता है। यह एक ओर से दूसरी ओर तक फैल कर और जनक-कोशिका-भित्ति से मिल कर कोशिका को दो संतति कोशिकाओं में विभाजित करता है। कोशिका-विभाजन अब पूर्ण हो जाता है। जनक-कोशिका का पदार्थ दो संतति कोशिकाओं के मध्य बँट जाता है।

केन्द्रक विभाजन के मार्ग को क्रमशः अनुसरण करने वाले किसी भी व्यक्ति को गुणसूत्रों की संख्या एवं रूप की नियतता, और अनुदैर्घ्य अर्धभाग करने तथा उन अर्धभागों को पृथक् होने से अवश्य प्रभावित होना चाहिए। जैसा कि मान लिया गया है कि गुणसूत्रों की रचना एक माला या गले के हार की भाँति है, अर्थात् एक डोरे में गुथे हुए भिन्न-भिन्न अमूल्य पदार्थों की तरह है, इसलिए प्रत्येक गुणसूत्र का अनुदैर्घ्य विभाजन सराहनीय रूप से यह निश्चित करता है कि जनक केन्द्रक के अधिकार में कीमती वस्तुओं का समतुल्य दहेज या दान प्रत्येक संतति कोशिका को प्राप्त हो। यदि ऐसा हो तो कम से कम संभाव्यतः संतति केन्द्रक जनक केन्द्रक के तथा एक दूसरे के साथ पूर्णतया समरूप होते हैं। तदनन्तर विभेदन की क्रिया संतति कोशिकाओं को भिन्न मार्गों द्वारा रूप और कार्य की बहुत भिन्न प्रारब्धों की ओर ले जाता है लेकिन जहाँ तक गुणसूत्र अवयवों का सम्बन्ध है संतति कोशिका हर दशा में समान ही उत्पन्न होती है। अतः यह निष्कर्ष निकालना उचित ही है कि अभी वर्णन की गयी कोशिका-विभाजन के प्रक्रम द्वारा उत्पादित संतति कोशिकाएं जनक कोशिका के गुण दाय प्राप्त करती हैं क्योंकि वे उस कोशिका के कोशिकाद्रव्यी और केन्द्रकीय पदार्थों के समान अर्ध भागों के बने होते हैं।

निरीक्षणों से इन अनुमानों की पुष्टि होती है। कलम द्वारा जिन पौधों का कायिक प्रवर्धन होता है वे जनक पौधों के सामान्य ही नहीं बल्कि विशेष लक्षण पुनरुत्पादित करते हैं। वास्तव में यह सामान्य उद्यान कृषि सम्बन्धी कार्य प्रणाली है

कि बीज से तद्रूप न प्रजनित होने वाले फल वृक्षों, गुलाबों तथा अन्य उद्यान पादपों के सधारण करने तथा उनकी सख्या में वृद्धि के लिए कायिक प्रवर्धन की विधि उपयोग में लायी जाती है। जहाँ तक इस प्रकार से प्रवर्धित पौधों का सम्बन्ध है यह कदाचित आश्चययुक्त नही है कि जिस पौध से वे लिये गये हैं उसके ही पूर्णरूपेण समरूप हों क्योंकि वे जनक पौध के केवल पृथक्कृत भाग हैं।

इसके विपरीत लैंगिक जनन में दो कोशिकाएं--नर व मादा युग्मक--एक नये व्यक्ति को बनाने के लिए सलीन होती हैं। अतः यदि कायिक कोशिका के केन्द्रक के लाक्षणिक गुणसूत्रो की सख्या यदि प्रत्येक युग्मक में होती है तो हर युग्मक संलयन क्रिया मे उस सख्या का योगदान देगा। अतः युग्मनज में उससे दुगुनी संख्या हो जायगी और इसी प्रकार हर पीढ़ी में बढ़ती जायगी, जो पूर्णतया अयुक्त है। वास्तव में एक व्यक्ति के परिवर्धन में एक क्षण एसा भी आता है जब पौधा अपने शरीर की पूण वृद्धि करके बीजाडों तथा परागकोशों में स्थित उन ऊतकों के निर्माण के लिए अग्रसर होता है जिनसे लैंगिक कोशिकाएं उत्पन्न होने को होती हैं। जब वह क्षण आता है तो उन कोशिकाओं के केन्द्रक सूत्री विभाजन क्रिया, अर्थात् उस प्रक्रम से जिसका वणन पूववत् हो चुका है, द्वारा विभाजित नहीं होते। शरीर निर्माण सम्बन्धी कोशिका विभाजनों तथा अर्धसूत्री विभाजन अर्थात वह विभाजन जो युग्मक उत्पादक ऊतकों के निर्माण के प्रारम्भ को निर्देश करता है, के मध्य भेदों को चित्र ४५ और ४६ में सचित्र दिखलाया गया है और फिर चित्र ४७ में आरेखी रूप में दिखलाया गया है, और इन चित्रों में किसी जाति में केन्द्रकीय विभाजन के जो दो प्रकार होते हैं उनका चित्रण किया गया है जिसकी कायिक कोशिकाओं में प्रत्येक में ६ गुणसूत्र होते हैं।

जैसा कि चित्र ४७ से निदर्शित होता है, युग्मक उत्पादक ऊतकों के निर्माण से सम्बन्धित विभाजन में मध्यवर्ती क्षत्र में जब गुणसूत्र व्यवस्थित होते हैं तो वे कायिक सख्या के आध ही प्रतीत होते हैं और जो उदाहरण लिया गया है उसमें ६ नही अपितु ३ होते हैं। अर्ध सख्या का होना यद्यपि उतना ही भ्रमोत्पादक होता है जितनी कि आकृतियाँ होती हैं। तीन वास्तव में छः होते है, क्योंकि तीन में से प्रत्येक में दो गुणसूत्र होते हैं जो युग्म में रहते हैं। सम्पूर्ण लम्बाई में घनिष्ठ सम्पर्क में रहने के कारण दो गुणसूत्र एक ही प्रतीत होते हैं। प्रत्येक युग्म के दो सदस्य पूर्वगत सूत्री विभाजन की भाँति अनुदैर्घ्य रूप में विभाजित नहीं होते हैं। लेकिन जब तर्कु तन्तु बनते हैं तो युग्मित गुणसूत्र पृथक् हो जाते हैं। एक युग्म का सम्पूर्ण गुणसूत्र एक ध्रुव को जाता है और दूसरा दूसरे ध्रुव को और इस प्रकार प्रत्येक संतति कोशिका के

केन्द्रक में छः गुणसूत्र नहीं बल्कि तीन ही होते हैं। इस कारण यह विभाजन बहुधा न्यूनकारी विभाजन (reduction division) कहलाता है। इसमें सूत्री कोशिका

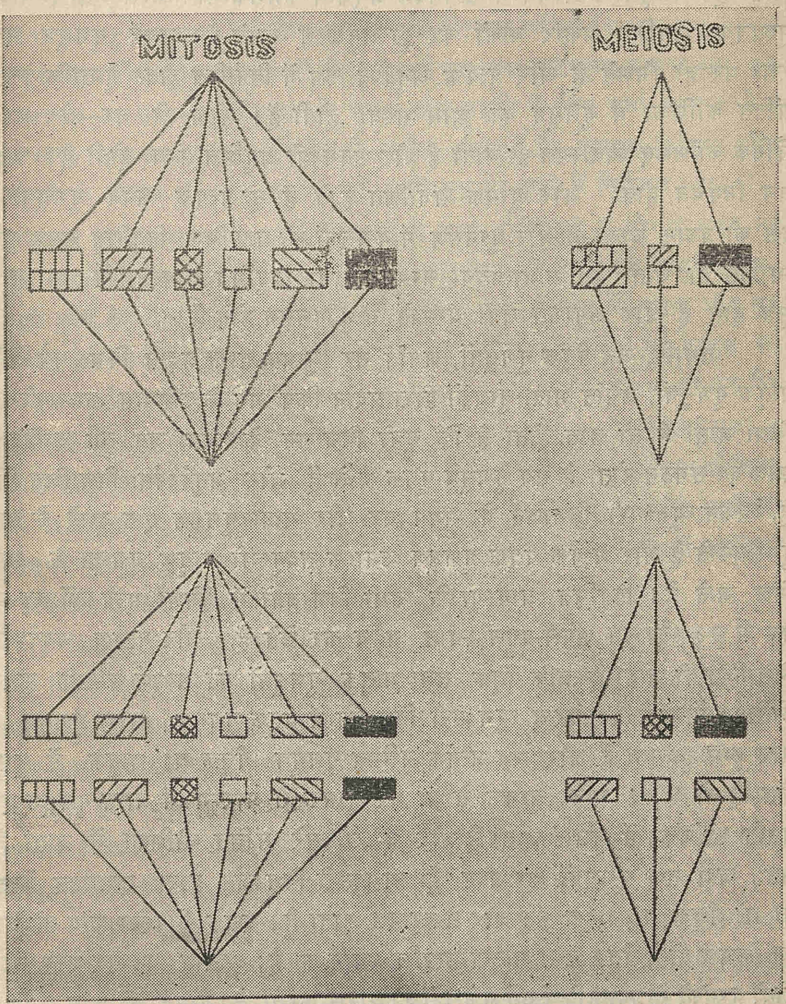

चित्र ४७—सूत्री विभाजन और अर्धसूत्री विभाजन का आरेख।

विभाजन के लाक्षणिक गुणसूत्रों की संख्या चाहे जो कुछ भी हो उसका आधा कर

दिया जाता है। अतः इस संख्या को अगुणित (haploid) कहना अधिक उपयुक्त है और दुगुनी संख्या, जो सूत्रीविभाजन का लक्षण है, को द्विगुणित (diploid) कहा जाता है। अर्धसूत्री विभाजन से उत्पादित अनुजात कोशिकाओं के अनुवर्ती विभाजन मुख्यतया द्विगुणित प्रकार वालों का ही अनुसरण करते हैं। उनमें गुणसूत्र मध्य रेखा पर ही मिलते हैं और प्रत्येक अनुदैर्घ्य रूप में विपाटित होता है ताकि प्रत्येक संतति कोशिका में गुणसूत्र की ह्रास संख्या होती हैं। शीघ्र ही नर और मादा लैंगिक कोशिकएं व्यवस्थित हो जाती हैं और उनमें भी अगुणित संख्या होती है। अतः, जब निषेचन होता और युग्मक संयोजित होते हैं तो प्रत्येक अपने गुणसूत्रों के दल को प्रदान करता है और युग्मनज में गुणसूत्रों की प्रारंभिक द्विगुणित संख्या पुनः स्थापित हो जाती है। सामान्यतया युग्मनज तथा द्विगुणित प्रावस्था में २*n* गुणसूत्र होते हैं और अगुणित तथा युग्मकों में *n* गुणसूत्र होते हैं।

तथापि, जब पैतृक गुणसूत्रों, अर्थात् नर युग्मक द्वारा प्रदान किये गये, और मातृक गुणसूत्रों, अर्थात् मादा युग्मकों द्वारा प्रदान किये गये के इतिहास का अनुरेखण किया जाता है तो ज्ञात होता है कि सूत्री विभाजन के समय जब नये व्यक्ति के काय का संगठन होता है सब गुणसूत्र पृथक् रहते हैं और अनुदैर्घ्यतः विभाजित होते हैं, लेकिन न्यूनकारी विभाजन के समय नर और मादा गुणसूत्र एक दूसरे के साथ युग्म बनाते हैं और प्रत्येक पैतृक गुणसूत्र उसी के तदनुरूपी मातृक गुणसूत्र के साथ मिल जाते हैं। द्विगुणित प्रावस्था के सभी विभाजनों में हमेशा मध्यवर्ती पट्ट पर क्रम से २*n* गुणसूत्र अगल-बगल स्थान ग्रहण कर लेते हैं, और प्रत्येक अनुदैर्घ्यतः विभाजित हो जाता है ताकि पैतृक तथा मातृक गुणसूत्रों की सम्पूर्ण सामग्री प्रत्येक कोशिका में होती है। परन्तु न्यूनकारी विभाजन में पैतृक गुणसूत्र मादा गुणसूत्र के साथ युग्म बनाता है और जब प्रत्येक युग्मित गुणसूत्र पैतृक या मातृक में पृथक् होता है तो या तो मादा युग्मक से या नर युग्मक से प्रारम्भ में प्राप्त गुणसूत्र एक संतति कोशिका में चला जाता है और दूसरा दूसरे संतति कोशिका में जाता है। अतः, जहाँ तक गुणसूत्रों का प्रश्न है न्यूनकारी विभाजन द्वारा उत्पादित केन्द्रक या तो पैतृक या मातृक् की ओर से व्युत्पन्न होता है। इसके विपरीत काय कोशिका का केन्द्रक दोनों पैतृक तथा मातृक उत्पत्ति स्थान का है; अर्थात् वह नर और मादा दोनों युग्मकों से प्रदान किये गये गुणसूत्रों को धारण करता है। युग्मक का काय कोशिका से वही सम्बन्ध है जो एकपथी वस्तु का द्विपथी वस्तु से । किसी युग्म का कौन-सा गुणसूत्र किस मार्ग द्वारा अथवा किस संतति कोशिका को जाता है, यह बात संयोग के ऊपर निर्णय होने को छोड़ दी जाती है। यदि ऐसा है और जहाँ तक पादप द्वारा

उत्पादित युग्मकों की संख्या बहुत बड़ी है तो संयोग इस बात का निर्णय करेगा कि गुणसूत्रों के सभी सम्भव वितरण युग्मकों में समान अनुपात में होंगे।

न्यूनकारी विभाजन में गुणसूत्रों का व्यवहार—युग्मनज में युग्म का बनना और संलयन, काय कोशिकाओं में साथ-साथ रहना, अनुदैर्घ्य रूप में विभाजित होना, परिपक्वता को पहुँचना तथा द्विगुणित प्रावस्था के निरन्तर क्रमिक विभाजनों के दरम्यान में पुनः विभाजित होना, न्यूनकारी विभाजन में पुनः एक बार युग्म बनाना और अलग हो जाना—ये सब आनुवंशिकता के प्रक्रम तथा प्रकृति के लिए मार्ग दर्शन करते हैं। इस व्यवहार के कारण यह निसन्देह ही प्रतीत होता है कि गुणसूत्र विशिष्ट भौतिक वस्तुओं के वाहक हैं और प्रत्येक का उनके एक या दूसरे में निश्चित स्थान है। ये विविध व विभिन्न वस्तुयें पादप कोशिकाओं में कार्य करते रहते हैं और ये अपने अनेक और समन्वित क्रियाओं द्वारा उन लक्षणों को जन्म देते हैं जो कि सामूहिक रूप में किसी जीव के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। किसी एक गुणसूत्र में सुचारु और सुव्यवस्थित रूप से लगे हुए इन भौतिक पदार्थों को 'जीन' (gene) या कारक कहते हैं और यह विश्वास के साथ मान लिया जा सकता है कि प्रत्येक कारक का एक विशेष कार्य या बहुत से विशेष कार्य कोशिकाओं के रूप एवं व्यवहार की विशिष्टताओं तथा उनके जीवन की अभिव्यक्ति करने के लिए होता है। जहाँ तक कि काय उन कोशिकाओं की विशिष्टताओं और क्रियाओं की ही अभिव्यक्ति है जो इसकी रचना करते हैं तो गुणसूत्रों में गुथे हुए ये 'जीन' कोशिकाद्रव्य के साथ मिलकर अन्त में व्यक्ति की विशिष्टिताओं तथा रूप के लिए उत्तरदायी हैं।

अतः यह अनुसन्धान करना अति रोचक विषय है कि आनुवंशिकता के ज्ञात तथ्य विभाजित होने वाले केन्द्रक के सूक्ष्मदर्शीय अन्वेषण पर आधारित तथ्यों के साथ मेल खाते हैं या नहीं। इस अनुसन्धान का पौधों तथा जन्तुओं के वैज्ञानिक प्रजनन द्वारा प्राप्त आनुवंशिकता के ज्ञान के पुनर्विलोकन का रूप होना चाहिए। प्रत्येक प्रकार के पौधों तथा जन्तुओं को भिन्न करने वाले गुणों के वंशागति की विधि का प्रजनन या अन्य विधियों द्वारा प्रायोगिक अनुसन्धान करने से सम्बन्धित विषय को 'आनुवंशिकी' या आनुवंशिक विज्ञान (genetics) कहते हैं।

जब से मनुष्य ने सोचना प्रारम्भ किया तब से आनुवंशिकी की समस्याओं ने उसको विक्षुब्ध कर रखा है। समस्यायें इतनी जटिल प्रतीत होती थी कि यद्यपि धीरे-धीरे काफी संख्या में तथ्यों का संचय हुआ और क्रम के संकेत यद्यपि हर स्थान पर स्पष्ट थे फिर भी उस क्रम को निर्धारित करने वाले नियमों की खोज में बहुत ही कम उन्नति हुई जब तक कि प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ग्रेगर मेन्डेल ने उस कार्य को

पूरा करने के लिए स्वयं अपने को संलग्न न कर दिया। वह आस्ट्रिया में ब्रन शहर का एक मठाधिकारी था और उसने अपने प्रयोगों को मठ के उद्यान में प्रारम्भ किया।

वे तर्क जिनके आधार पर मेन्डेल ने प्रयोग करने आरम्भ किये इस प्रकार के रहे होंगे। जीवधारियों की जटिलता के कारण मनुष्य आनुवंशिकता के नियमों के अन्वेषण करने में उदासीन रहे हैं। मैं इस जटिलता की अवज्ञा करूँगा। मैं जीवधारी को मानों खण्डों में विभाजित कर दूँगा, और प्रत्येक खण्ड की आनुवंशिकता के मार्ग का अन्वेषण करूँगा। मैं एक समय में एक कायकीय गुण की वंशागति की विधि का अन्वेषण करूँगा। हम इस उद्यान में मटर की भिन्न-भिन्न किस्में उगाते हैं। कुछ पौधों के बीजों के पीले रंग के आवरण हैं तथा कुछ के हरे रंग के। कुछ जातियों के गोल बीज होते हैं और दूसरी जातियों के झुर्रीदार बीज होते हैं। कुछ जातियाँ इतनी लम्बी हो जाती है कि उनको सहारा देने के लिए टेक की आवश्यकता होती है और दूसरे इतने बौने होते हैं कि उनको ऐसी कोई आवश्यकता नहीं होती। साधारण मनुष्य कह सकते हैं कि ये सब अनावश्यक गुण हैं, परन्तु मुझे इसके विपरीत सोचने का दैवी अधिकार प्राप्त है, क्योंकि क्या यह नहीं कहा गया है कि "तुम्हारे सिर के सभी बाल गिने हुए हैं?" और कौन-सी बात वस्तुतः अनावश्यक है और कौन-सी जीवन में महत्वपूर्ण है, इसको कौन बतायेगा? इसलिए मेन्डेल अपने कार्य में व्यस्त हो गया। उसने मटर की हरे और पीले बीज वाली जातियों को तथा गोल व झुर्रीदार एवं लम्बे तथा बौनी किस्मों को संगमित किया और प्रत्येक बार वंशागति के नियम में क्रम को पाया।

मेन्डेल के अभिक्रम का अनुसरण करते हुए दूसरों ने भी उसी प्रकार के प्रजनन प्रयोग किये और उन्होंने उसके परिणामों की पुष्टि की है, तथा उनको आगे बढ़ाया है। पिछले साठ वर्षों में अनेक प्रकार के पादप तथा जन्तु लक्षणों की प्रजनन परीक्षा की गई है: जैसे पत्ती का आकार, फूल का रंग, रोग के लिए प्रतिरोध एवं प्रभाववश्यता, वार्षिकता एवं बहुवर्षिता, पुष्पों के फूलने में शीघ्रता एवं देरी, पुष्पों की द्विगुणता एवं एकलता, चितकबरापन, आटे का भर्जन गुण, कड़ापन एवं कोमलता, कद, अवन्ध्यता, वन्ध्यता, इत्यादि।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि सभी प्रकार के पादप-लक्षणों की परीक्षा करना सम्भव हो गया है तो भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रमुख एवं अनावश्यक, आकृतिक या शरीर-क्रियात्मक, इत्यादि बहुत प्रकार के लक्षणों की वंशागति का इस विधि द्वारा सफलतापूर्वक अन्वेषण किया गया है। मेन्डेल के कार्यों से नहीं अपितु उसके कुछ अँगरेज शिष्यों (बेटसन तथा उसके साथियों) में से कुछ के कार्यों से

से पर्याप्त रूप से यह स्पष्ट हो जायेगा कि मेन्डेल के द्वारा प्राप्त किये गये निष्कर्ष क्या थे।

चीनी प्रिमुला या प्रिमुला सायनेन्सिस एक बहुत परिवर्तनशील पौधा है। कुछ किस्मों में ताड़ की-सी पत्तियाँ होती हैं अर्थात हस्ताकार आकृति की होती हैं, दूसरों में पर्णांग की सी पत्तियाँ होती हैं, अर्थात वे पिच्छाकार आकृति की होती हैं। कुछ किस्में ऐसी हैं जो हस्ताकार पत्ती के लक्षण के लिए तद्रूप प्रजनित होती हैं। स्वनिषेचित या संकरण द्वारा उत्पन्न सभी सन्तान में ताड़ सदृश पत्तियाँ होती हैं। दूसरी किस्में पर्णांग सदृश पत्ती के लक्षण के लिए तद्रूप प्रजनित होती हैं।

यदि एक तद्रूप प्रजनित ताड़ सदृश पत्तीवाला पौधा पर्णांग सदृश पत्ती वाले पौधे के साथ संकरण कराया जाय तो संकरण की सन्तान जो प्रथम संतानीय पीढ़ी (first filial generation) या एफ$_{१}$ के नाम से ज्ञात होता है, सभी ताड़ सदृश पत्ती की तरह के होते हैं।

ताड़ × पर्णांग
|
एफ$_{१}$ .... ताड़

पर्णांग सदृश पत्ती वाला लक्षण विलुप्त हो गया है और इस कारण अप्रभावी लक्षण (recessive character) कहलाता है। ताड़ सदृश पत्ती वाला लक्षण प्रकट होता है इसलिए यह प्रभावी लक्षण (dominant character) कहलाता है।

तथापि, यदि एफ$_{१}$ पीढ़ी के पौधे स्वनिषेचित कराये जांय या एक दूसरे के साथ संकरण कराये जाँय तो अप्रभावी लक्षण (पर्णांग पत्ती) कुछ सन्तानों में पुनः प्रकट हो जाता है। द्वितीय या एफ$_{२}$ पीढ़ी एक मिश्रित आकृति उपस्थित करती है। कुछ पौधे ताड़ पत्ती के सदृश होते हैं और दूसरे पर्णांग पत्ती के सदृश होते हैं। इसके अतिरिक्त, एक बड़ी एफ$_{२}$ पीढ़ी को उत्पन्न किया जाय तो यह बता चलता है कि पर्णांग पत्तीदार तथा ताड़ पत्तीदार पादपों में एक संख्यात्मक सम्बन्ध दिखाई देता है। जितनी ही संख्या अधिक होती है उतना ही लगभग यह इस अनुपात के होते हैं: ३ ताड़ : १ पर्णांग। अतः इस योजना को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है—

जनक ताड़ × पर्णांग
|
एफ$_{१}$ ताड़
|
एफ$_{२}$ ताड़ : पर्णांग
३ : १

आनुवंशिकीय व्यवस्थितता अनुगामी पीढ़ियों में भी देखी जाती है। यदि पर्णांग पत्तीदार एफ़$_2$ पादपों को स्वपरागण कराया जाय तो वे पीढ़ी दर पीढ़ी पर्णांग पत्तीदार पौधों के अतिरिक्त किसी और को उत्पन्न नहीं करते। वे उस लक्षण के लिए तद्रूप प्रजनित होते हैं। यदि दूसरी ओर एफ़$_2$ ताड़ पत्तीदार पौधे स्व-निषेचित कराये जाँय, और यद्यपि प्रयोग में उपयोग किये गये पौधे, जहाँ तक पत्ती के आकार का सम्बन्ध है, एक समान दृष्टिगोचर होते हैं फिर भी जिस प्रकार की सन्तान वे उत्पन्न करते हैं उससे यह प्रदर्शित होता है कि वे संघटन में समान नहीं हैं। इस प्रकार यदि ताड़ के सदृश पत्ती वाले एफ़$_2$ पौधों की बहुत बड़ी संख्या को स्व-निषेचित किया जाय और प्रत्येक की सन्तति को अलग रखा जाय तो ज्ञात होता है कि औसतन प्रत्येक तीन में से एक उस गुण के लिए तद्रूप प्रजनित होता है और दूसरे दो ताड़ पत्तीदार एफ़$_1$ पौधों के समान ही व्यवहार करते हैं। वे जिस सन्तान को जन्म देते हैं उनमें से तीन तो ताड़ की पत्ती के सदृश तथा एक पर्णांग की पत्ती के सदृश होते हैं। इस प्रकार पूर्ण आनुवंशिकीय योजना को निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है:

तद्रूप प्रजनित होने वाली ताड़ की पत्ती सदृश किस्म — ताड़ — ताड़
तद्रूप प्रजनित होने वाली पर्णांग की पत्ती सदृश किस्म — पर्णांग — पर्णांग

जनक ताड़ × पर्णांग

एफ़$_1$ ताड़

एफ़$_2$ १ ताड़ २ ताड़ १ पर्णांग

एफ़$_3$ ताड़ ३ ताड़ १ पर्णांग पर्णांग

इस प्रयोग से तीन विशेष महत्व के तथ्य निकलते हैं।

प्रथम तो यह है कि किसी विशिष्ट लक्षण की वंशागति नियमित होती है।

दूसरा तथ्य यह है कि पौधे, उदाहरणार्थ ताड़ की पत्तीदार प्रिमुला सायनेन्सिस

समरूप ही प्रतीत हो सकते हैं फिर भी उनकी सन्तान से ज्ञात होता है कि वे भिन्न संघटन के हैं। उदाहरणार्थ हर तीन ताड़ के पत्तीदार पौधों में से एक तद्रूप प्रजनित होता है और दूसरे दो ऐसा नहीं करते।

तीसरा तथ्य, जिसका स्पष्ट रूप से कुछ सम्बन्ध पिछले तथ्य के साथ है, यह है कि, उदाहरण के लिए एक ऐसा लक्षण जैसा पर्णांग पत्ती का, जो एफ़$_1$ सन्तान में प्रकट होने में असफल रहता है वह पुनः प्रकट हो सकता है। या जैसा कि कहा जाता है कि वे आगामी एफ़$_2$ पीढ़ी में पृथक्कृत हो सकता है। अतः एफ़$_2$ पीढ़ी में पर्णांग पत्ती रूप ताड़ पत्ती रूप से पृथक्कृत (segregates) हो जाता है, ताकि सन्तान में से कुछ तो पर्णांग पत्तीदार होते हैं और कुछ ताड़ पत्तीदार।

लैंगिक प्रजनन के तथ्यों तथा न्यूनकारी विभाजन में गुणसूत्रों का व्यवहार इन आनुवंशिकीय नियमों को समझने में सहायता प्रदान करता है। केन्द्रकीय विभाजन के अध्ययन के प्रसंग में प्रस्तावित 'जीन' की परिकल्पना ताड़ तथा पर्णांग पत्तीदार पौधों के संकरण के परिणामस्वरूप बहुत-सी पीढ़ियों के व्यवहार की व्याख्या करने के उपयोग में लायी जा सकती है। यह मान लिया जा सकता है कि एक 'जीन' है जो कि पौधे में उपस्थित होने पर पत्ती को ताड़ की पत्ती के आकार का बनाने के लिए उत्तरदायी है। इसको किसी रूढ़ चिह्न, उदाहरणार्थ बड़े अक्षर से प्रदर्शित किया जा सकता है। माना कि ताड़ पत्तीदार जीन के लिए D प्रयोग में लाया जा सकता है, और माना कि d उस 'जीन' के लिए उपयुक्त होता है जो पर्णांग-पत्ती नहीं बना सकता और ताड़-पत्ती हो जाता है। तद्रूप प्रजनित होने वाली ताड़ पत्तीदार किस्मों को चाहे स्वनिषेचित कराया जाय या एक दूसरे के साथ संकरण कराया जाय वे केवल ताड़ पत्तीदार पौधों को जन्म देते हैं। यह सब किस प्रकार होता है उसकी योजना निम्न रूप से प्रदर्शित की जा सकती है—

तद्रूप प्रजनित होने वाला ताड़ पत्तीदार पौधा

D D

D, D युग्मक पैदा करता है, अर्थात एक ही प्रकार के युग्मक

नर युग्मक × मादा युग्मक

D —— D

D —— D

सब D D युग्मनज उत्पन्न करता है

अर्थात् सब ताड़ पत्तीदार

तथापि, जब लक्षण के प्रति तद्रूप जाति को अप्रभावी पर्णांग पत्ती के लक्षण वाली जाति के साथ संकरण किया जाता है, तो उसकी योजना चित्र ४८ में दिखाई गयी है। किन्हीं चार एफ$_2$ पौधों में तीन में प्रभावी जीन D=ताड़ पत्ती वाले होते हैं और तीन में से एक =(DD) जीन के लिए तद्रूप प्रजनित (समयुग्मजी) होता है और इस कारण अनुगामी पीढ़ियों में केवल ताड़ पत्ती वाले पौधे उत्पन्न करता है। तीन में से दूसरे दो (Dd) होते हैं, अर्थात् वे तद्रूप प्रजनित नहीं होते लेकिन ताड़ पत्ती वाले जीन के लिए विषमयुग्मजी (heterczygous) होते हैं। वे स्वनिषेचित होने पर ताड़ तथा पर्णांग पत्ती वाले दोनों के पौधों को ३ : १ के अनुपात में उत्पन्न करते हैं। चार में से शेष एक (dd) होता है, अर्थात उसमें ताड़ पत्ती के लिए जीन नहीं होता, इसलिए वह पर्णांग पत्तीदार होता है, और उस लक्षण के लिए तद्रूप प्रजनित होता है।

कोई भी जो इस योजना को अर्धसूत्रण में गुणसूत्रों के व्यवहार के दृष्टिकोण से देखेगा वह यह जान जायेगा कि आनुवंशिकीय एवं कोशिकीय तथ्य एक दूसरे का बहुत ही सुन्दर एवं निश्चित रूप से संपूरण करते हैं। माना की जीन D किसी एक गुणसूत्र में एक निश्चित स्थान ग्रहण करता है। तद्रूप प्रजनित किये गये ताड़ पत्ती वाले पौधे में दोनों नर और मादा युग्मकों द्वारा D प्रदान किया जाता है। अतः युग्मनज तथा प्रत्येक काय कोशिका में एक पैतृक और एक मातृक गुणसूत्र में जीन D होता है। न्यूनकारी विभाजन के समय ये गुणसूत्र पृथक हो जाते हैं लेकिन या तो नर या मादा गुणसूत्र एक युग्मक की ओर जाता है तो वह युग्मक D जीन ले जाता है। दूसरी ओर ताड़ × पर्णांग संकरण में ताड़ पत्ती वाले जनक के नर एवं मादा युग्मक प्रत्येक में D जीन रहता है और पर्णांग पत्ती वाले जनक के नर व मादा युग्मक में प्रत्येक में अप्रभावी जीन में रहता है। अतः संकरण जनक D तथा एक दूसरा d लाते हैं। युग्मनज तथा काय कोशिकाएं (Dd) होती है, अर्थात गुणसूत्रों में से जो जीन के लिए एक स्थायी स्थान प्रदान करते हैं, एक तो D तथा एक d ले जाता है। न्यूनकारी विभाजन के समय D गुणसूत्र और d गुणसूत्र युग्मित होते हैं तथा पृथक् हो जाते हैं और इसलिए जब युग्मक बनते हैं तो उनमें से आधे में D रहेगा और आधे में d रहेगा। यह नर और मादा युग्मक दोनों के लिए सत्य होने पर उनके घटनावश युग्मन से औसतन रूप से निम्न गणना प्रदर्शित करनी चाहिए।

१ DD, २ Dd, १ dd

नर युग्मक

मादा युग्मक		D	d
	D	DD	Dd
	d	Dd	dd

मेन्डेलीय आनुवंशिकता (Mendelian inheritance) के इस प्रकार के बहुत से दूसरे उदाहरणों का अन्वेषण किया गया है। यह कहना आवश्यक नहीं है कि किसी रूप से भी सभी लक्षण इस प्रकार का साधारण आनुवंशिकीय व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। जीवन अति जटिल है, और जैसा कि प्रत्येक मनुष्य जानता है कि आनुवंशिकता बहुधा अनोखे मार्गों का अनुसरण करती है और बड़ी विचित्र क्रीड़ा करती है। कुछ स्पष्ट जटिलताओं को सुलझाना कठिन नहीं है। जैसा कि आशा की जाती है प्रभाविता हमेशा स्पष्ट नहीं होती है। उदाहरणार्थ, किसी स्पीशीज के लाल और श्वेत पुष्प के संकरण से गुलाबी एफ$_1$ प्राप्त होता है शुद्ध लाल जाति में जब प्रत्येक युग्मक एक रंग बनाने वाला जीन धारण करता है तो युग्मनज को दो जीन प्राप्त होते हैं, एक प्रत्येक जनक से, और दोनों प्रभावी होते हैं, इसलिए पुष्पों में लाल वर्णक उत्पन्न हो जाता है। लेकिन जब एक रंगीन तथा श्वेत पुष्प की जाति के सदस्य के मध्य संकरण किया जाता है तो युग्मनज रंग उत्पादन के लिए केवल एक जीन प्राप्त करता है और वह जीन केवल इतना ही प्रभावी होता है कि फूल गुलाबी हो सके।

दूसरे गुणों के सम्बन्ध में, दो या उससे भी अधिक जीन की उपस्थिति एक विशिष्ट लक्षण उत्पादित करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसका उदाहरण कुछ विशेष पुष्पों के रंग, उदाहरणार्थ उद्यान मटर से दिया जाता है। यदि कोई भी जीन अनुपस्थित हो तो पुष्प श्वेत होता है। उद्यान मटर जो सिसिली देश में जंगली तौर पर उगती है, उसमें नील-लोहित रंग के पुष्प होते हैं और वे तद्रूप प्रजनित होते हैं। कदाचित प्रकृति में और निश्चय ही कर्षण में विभिन्न रंग, जैसे लाल, नीला, गुलाबी, नारंगी तथा श्वेत उत्पन्न हो जाते हैं। उद्यान-मटर के पुष्प में किसी रंग के उत्पन्न होने के लिए यदि दो जीन उपस्थित होने चाहिए तो यह परिणाम निकलता है कि दो प्रकार के श्वेत पुष्प वाले उद्यान-मटर होने चाहिए, या हो सकते हैं, जो श्वेतपन के लिए समरूप प्रतीत हों परन्तु एक दूसरे से आनुवंशिकीय रूप से भिन्न होते हैं, और इसमें एक में तो दो रंग उत्पादक जीन में से एक अनुपस्थित रहता है और दूसरे में दूसरा जीन

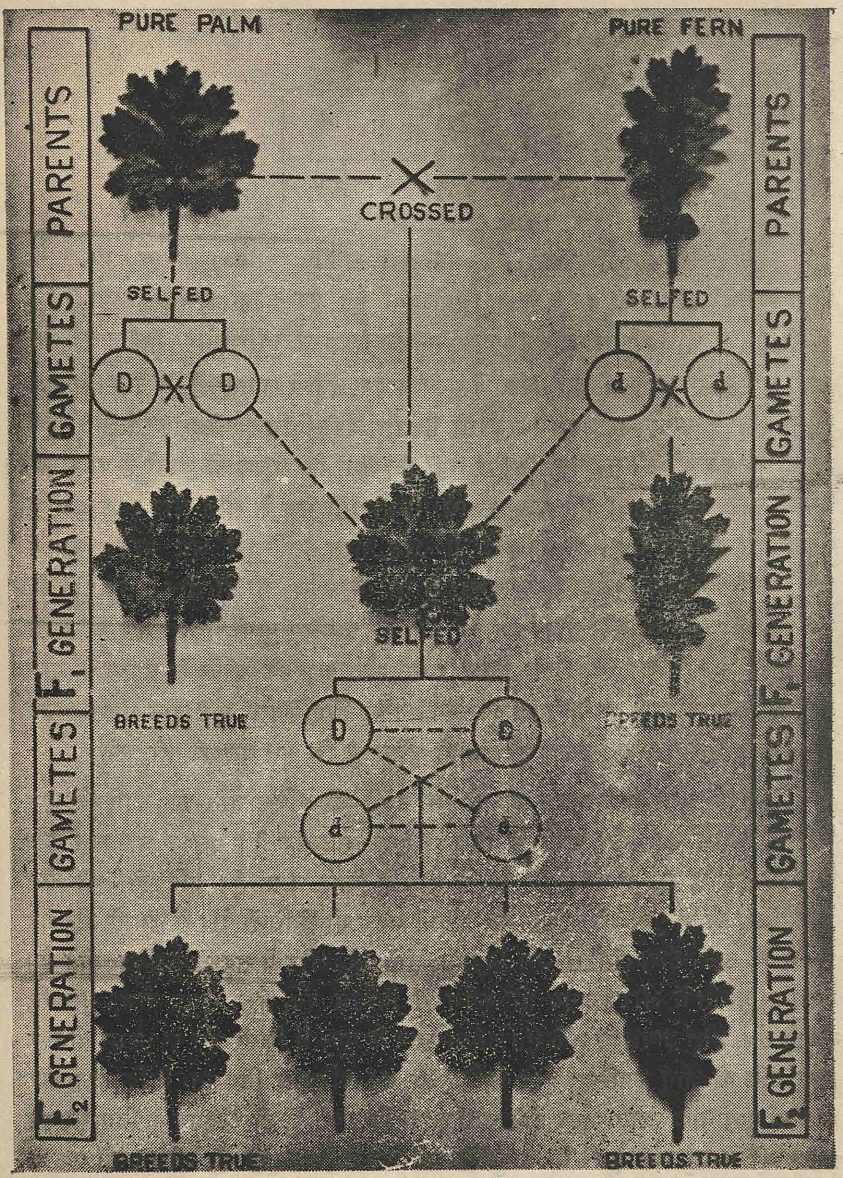

चित्र ४८—ताड़ व पर्णांग पर्ण प्रिमुला सायनेन्सिस में वंशागति।

अनुपस्थित रहता है। रंग के जीन को C और R अक्षरों द्वारा प्रदर्शित करने से एक समयुग्मजी (homozygous) श्वेत पुष्प वाली जाति की रचना CCrr होगी और दूसरे की रचना ccRR होगी, तथा दो के मध्य रंगीन पुष्पों वाले एफ़$_१$ पादपों का उत्पादन होगा अत :—

जनक :	श्वेत	×	श्वेत
	CCrr	×	ccRR
युग्मक :	Cr	×	cR
एफ़$_१$	CcRr		
	रंगीन		

आनुवंशिकीय हाथ की सफाई कुछ वर्ष पूर्व डा० बेटसन तथा प्रोफेसर पनेट द्वारा किये गये प्रयोगों में दिखाई गयी है। उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि प्रत्यावर्तन अर्थात कुछ प्राचीन नष्ट हुए जातीय लक्षण तभी पुनः दृष्टिगोचर हो सकते हैं जब कि पूरक कारकों वाली जातियाँ एक दूसरे के साथ संवेशित की जाती हैं। जब पूरक जीन युग्मनज में मिलते हैं तो बहुत पहले नष्ट हुए लक्षण सन्तान के शरीर में पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

एक दूसरी जटिलता का उसके सामान्य शरीर-क्रियात्मक महत्व के कारण उल्लेख किया जा सकता है और उसकी व्याख्या भी की जा सकती है। कुछ पौधों, जैसे चीनी प्रिमुला और फॉक्सग्लॅव इत्यादि, में दो प्रकार के श्वेत पुष्प होते हैं। उनमें से एक साधारण प्रकार का है, जिसमें रंग के कारक का अभाव होता है। वह अप्रभावी श्वेत कहलाता है। जब इसका रंगीन जाति के साथ संकरण कराया जाता है तो यह रंगीन एफ़$_१$ को उत्पन्न करता है, क्योंकि, यद्यपि केवल एक ही जनक रंग के लिए जीन प्रदान करता है तो भी एक ही जीन की उपस्थिति रंग उत्पादन के लिए पर्याप्त होता है। दूसरे प्रकार का श्वेत भिन्न प्रकार से व्यवहार करता है। एक रंगीन जाति के साथ संकरण किये जाने पर यह श्वेत एफ़$_१$ उत्पन्न करता है। प्रजनन प्रयोगों द्वारा प्रमाणित व्याख्या यह है कि इस दशा में श्वेतपन एक जीन के कारण होता है जो रंग निर्माण को रोकता है, अर्थात इस पर निषेधाधिकार लगाता है। इस जीन के धारण करने वाली जातियाँ प्रभावी श्वेत कहलाती हैं। यदि रंग के निरोधक जीन को I से प्रदर्शित किया जाय और रंग उत्पादक जीन को C अक्षर से तो एक समयुग्मजी प्रभावी श्वेत जाति की रचना, जो रंग उत्पादन करने वाली जीन को धारण करती है, वह IICC होती है, और रंगीन पुष्पों वाली समयुग्मजी जाति को iiCC से प्रदर्शित किया जा सकता है। दोनों के संकरण का परिणाम यह है :—

जनक : प्रभावी श्वेत × रंगीन
IICC × iiCC
युग्मक : IC × iC
एफ$_{१}$ IiCC = श्वेत
युग्मक IC —— IC
×
iC —— iC
एफ$_{२}$ १ IICC, २ IiCC, १ iiCC
तीन प्रभावी श्वेत : १ रंगीन

अब तक मेन्डेलीय लक्षणों के केवल एक युग्म की वंशागति की ओर ही ध्यान सीमाबद्ध किया गया है, लेकिन अब लक्षणों के दो भिन्न युग्मों की वंशागति के व्यवहार पर विचार करना आवश्यक है। पूर्ववत् अलग-अलग अन्वेषण किये गये चीनी प्रिमुला के पुष्प रंग, पत्ती की आकृति के लक्षण तथा अन्य और कोई लक्षण अन्वेषण के लिए उपयुक्त होंगे। यदि चीनी प्रिमुला की दो जातियाँ, एक तो ताड़ पत्तीदार और रंगीन पुष्प के लिए तद्रूप प्रजनित होने वाली तथा दूसरी पर्णांग पत्तीदार और श्वेत (अप्रभावी श्वेत) पुष्प के लिए तद्रूप प्रजनित होने वाली जातियों का यदि एक दूसरे के साथ संकरण कराया जाय तो यह ज्ञात होता है कि एफ$_{१}$ पीढ़ी के सदस्य सभी ताड़ पत्तीदार होते हैं तथा रंगीन पुष्पों को धारण करते हैं। एफ$_{१}$ पीढ़ी दोनों प्रभावी लक्षणों को प्रदर्शित करती है। यदि दो ऐसी जातियों के मध्य संकरण किया जाय जिनमें से एक तो ताड़ पत्ती और श्वेत (अप्रभावी श्वेत) पुष्प धारण करता हो और उनके लिए तद्रूप प्रजनित होता हो और दूसरा रंगीन पुष्प और पर्णांग पत्ती को, तो समान ही परिणाम प्रकट होता है। जहाँ तक इन लक्षणों का सम्बन्ध है दोनों दशाओं में जनक की सामान्य आकृति में अन्तर होने के बावजूद भी दो संकरणों के परिणामस्वरूप उत्पन्न एफ$_{१}$ पौधे बिल्कुल समान होते हैं। यह किस प्रकार होता है इसका स्पष्टीकरण एफ$_{१}$ पीढ़ी तथा जनकों की आनुवंशिकीय रचना के ऊपर विचार करने से प्रत्यक्ष हो जाता है। पहले संकरण में जनक इस प्रकार है—

ताड़; रंगीन पर्णांग; श्वेत
DD CC dd cc
युग्मक DC × dc
एफ$_{१}$ Dd Cc

बाद की दशा में जनक इस प्रकार है:

ताड़; श्वेत पर्णांग; रंगीन
DD cc dd CC
युग्मक Dc × dC
एफ$_{१}$ Dd Cc

अतः यह स्पष्ट है कि आनुवंशिकता के मार्ग को सामान्य आकृति नहीं अपितु आनुवंशिकीय रचना ही निर्धारित करती है। यदि इन संकरणों में से किसी के परिणामस्वरूप उत्पन्न किये पादपों को स्वनिषेचित किया जाय या एक दूसरे के साथ संकरण किया जाय तो उत्पादित युग्मकों की रचना इस प्रकार होनी चाहिए—

(एफ$_{१}$ Dd Cc)
युग्मक DC
Dc
dC
dc

अब यदि कल्पनायें की जाँच, प्रथम तो यह कि नर और मादा युग्मक के इन प्रकारों में प्रत्येक अधिक एवं लगभग समान संख्या में उत्पादित होता है, और दूसरा यह कि किसी प्रकार की रचना का एक नर युग्मक किसी प्रकार के मादा युग्मक के साथ उसी शीघ्रता से संगमित हो जाता है तो एफ$_{२}$ के परिणाम को प्रागुक्त किया जा सकता है।

Female gametes

Male gametes	DC	Dc	dC	dc
DC	DD CC	DDCc	DdCC	DdCc
Dc	DD Cc	DD cc	DdCc	Ddcc
dC	Dd CC	DdCc	ddCC	ddCc
dc	Dd Cc	Dd cc	dd Cc	ddcc

संगमों और एफ$_{२}$ युग्मनजों की रचना, जो उनके परिणामस्वरूप बनती हैं,को प्रदर्शित करने की साधारण विधि को चित्र में दिखाया गया है। इस चित्र में

युग्मकों की रचना को बड़े वर्ग की दो पार्श्वों की लंबाई के रुख प्रदर्शित किया गया है और प्रत्येक छोटे कोष्ठ में प्रत्येक प्रकार के नर युग्मक को मादा युग्मक के साथ निषेचित करने से उत्पन्न युग्मनज की रचना को अक्षरों द्वारा दिखाया गया है। एफ$_2$ युग्मनजों के भिन्न-भिन्न प्रकारों को विभिन्न रंगों की छाया द्वारा प्रदर्शित किया गया है: जिनमें दोनों प्रभावी D और C हैं दुगने रंगों की छाया से दिखाये गये हैं, और इस प्रकार सभी।

जैसा कि चित्र प्रदर्शित करता है नर और मादा युग्मकों के सभी सम्भव युग्मनों को सन्तुष्ट करने के लिए १६ संगमों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार उत्पादित १६ एफ$_2$ व्यक्ति निम्न प्रकार के होने चाहिए।

९ (DC) जो दोनों D तथा C जीन धारण करते हैं।
३ (Dc) जो D को धारण करता है लेकिन C को नहीं।
३ (dC) जो C को धारण करता है लेकिन D को नहीं।
१ (dc) जो न तो C को और न D को धारण करते हैं।

अर्थात् एफ$_2$ वंश के १६ व्यक्तियों में औसतन रूप से निम्न संख्या होनी चाहिए—

९ DC, ३ Dc, ३ dC, १ dc
=९ ताड़ रंगीन, ३ ताड़ श्वेत, ३ पर्णांग रंगीन, १ पर्णांग श्वेत

इन दो लक्षणों से सम्बन्धित दो भिन्न जातियों के संकरण के फलस्वरूप बहुत अधिक संख्या में प्राप्त एफ$_2$ पौधों को उत्पादित करने से यह प्रदर्शित होता है कि यह अनुपात प्राप्त होता है, और प्रत्येक वर्ग के एफ$_2$ पादपों के साथ प्रजनन प्रयोग यह भी प्रदर्शित करते हैं कि बहुत से वर्गों के सदस्य वास्तव में उनसे सम्बन्धित रचना धारण करते हैं। अतः यह सम्भव है और दिखाया गया है कि D और C दोनों धारण करने वाले ९ पौधों की रचना निम्न प्रकार है:–

१—DDCC जो तद्रूप प्रजनित होती हैं।
२—DdCc जो एफ$_2$ में : ३ DC : १ dC उत्पन्न करते हैं,
अर्थात् ३ ताड़ रंगीन : १ ताड़ श्वेत
३—DDCc जो एफ$_3$ में : ३ :D CD१ c देते हैं
अर्थात् ३ ताड़ रंगीन : १ ताड़ श्वेत
४—Dd Cc जो एफ$_2$ पौधे के समान व्यवहार करते हैं।

इस प्रकार प्रयोग द्वारा यह दिखलाया गया है कि स्पष्टतया मेन्डेलीय युग्मों से संबंधित लक्षण एक दूसरे से स्वतंत्रापूर्वक पृथक्कृत हो जाते हैं और इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक लक्षण को तथा दूसरे लक्षण को प्रकट

करने वाले जीन स्वतंत्र अपव्यूहन (independent assortment) करते हैं। यदि मान लिया जाय कि गुणसूत्रों का प्रत्येक पैतृक तथा मातृक युग्म अर्धसूत्रणा के अन्तर्गत एक स्वतंत्र इकाई के रूप में व्यवहार करता है और दूसरे गुणसूत्रों से स्वतंत्रतापूर्वक अपने पैतृक तथा मातृक अवयवों में पृथक हो जाता है तो प्रयोग द्वारा प्राप्त परिणामों की तर्कपूर्ण व्याख्या हो जाती है। जीवित पदार्थों की जटिलता से परिचित हर कोई विश्वास कर सकता है कि लक्षणों के दो युग्मों की वंशागति के अन्वेषण के परिणाम हमेशा साधारण (द्विसंकर) ९ : ३ : ३ : १ व्यवस्था का अनुसरण नहीं करते हैं। परन्तु जहाँ जटिलता पैदा होती है तो कोशिका-विज्ञानवेत्ता सुगमता से उसकी व्याख्या कर सकता है।

विविध मेन्डेलीय लक्षणों के कारकों के स्वतंत्र अपव्यूहन के प्रमाणित तथ्य से बहुत महत्व के प्रायोगिक परिणाम निकले हैं। अतः गेहूँ की एक जाति बहुत उपजाऊ हो सकती है लेकिन रतुआ कवक के एक विशेष किस्म के आक्रमण का तत्काल शिकार बन सकती है। दूसरी किस्म रतुआ प्रतिरोध कर सकती है लेकिन अत्यधिक कम उत्पत्ति करती है। दो जातियों को संकरण किये जाने पर यह खोज की जा सकती है कि क्या उपज की कमी और अधिकता, रतुआ प्रभाववश्यता और रतुआ प्रतिरोध मेन्डेलीय लक्षण हैं, और वे किस प्रकार वंशागत होते हैं, और क्या एक ही जाति में वांछित लक्षणों को संयुक्त करना सम्भव है। यह प्रयत्न किया गया है और सफल प्रमाणित हुआ है। जनक जातियों के एक के अधिक उत्पादन गुण को दूसरे के रतुआ प्रतिरोधक गुण के साथ मिलाने वाली विविध किस्में हमारे खेतों में उत्पन्न हो रही हैं। इसी के समान मेन्डेलीय विधियों से गेहूँ की दूसरी जातियाँ भी प्राप्त की गयी हैं जो कि आटे की शक्ति को अधिक उत्पादन गुण के साथ संयुक्त करती हैं। आटे की शक्ति के गुण, जो इसको सुरूप, सुडौल फूली हुई और विस्तीर्ण पाव रोटी के रूप में अभिव्यक्त करता है, को अधिक उत्पादन के गुण के साथ संयुक्त कर लिया गया है। इसके परिणामस्वरूप किसान अब दोनों प्रकार की, सबल व अधिक उत्पादित होने वाली, विभिन्न किस्मों को उगा सकते हैं, जब कि पहले वे अधिक उत्पादन करने वाले गेहूँ को उगाने में सन्तोष पाते थे और जो शक्ति की कमी के कारण आधुनिक पाव रोटी बनाने के लिए सुयोग्य न था। अतः मेन्डेल के महान कार्य के फलस्वरूप पादप प्रजनन एक प्रमुख विधि हो गई है जिससे फार्म और उद्यान पादपों के कर्षण के क्षेत्र और आर्थिक मूल्य का संवर्धन किया जा सकता है।

इस अध्याय को सौंपा गया कार्यभार अब पूरा हो चुका है। इसने मेन्डेलीय डोरों की झलक दे दी है जिससे कि जीवन का वस्त्र बुना हुआ है और जिससे उस

वस्त्र का संधारण और नवीकरण होता है। विभिन्नता की प्रकृति की जाँच और प्राकृतिक वरण या वातावरण के प्रभाव का विकास से संबंध, जैसे प्रसंगों का इस पुस्तक में वर्णन नहीं किया गया है। विख्यात यात्रा पर जीवों को आगे की ओर संचालन करने वाली शक्ति जिसने उसको अब तक संचालित किया है और अब भी करती है तथा उस आकाश की परीक्षा करना जिससे कि यह खोज की जा सके कि वह कौन-सा नक्षत्र हो सकता है जिससे विकास ने अपने अति प्राचीन मार्ग को निश्चित किया है का अन्वेषण करना बड़ा प्रसंग है।

अध्याय ९

पादप राष्ट्रमंडल और उसका शाषन; पादप का एकीकरण; छुईमुई का पौधा; उद्दीपन और उत्तेजन; ग्राही और प्रेरणा चालक; उत्तेजन का पारगमन; रासायनिक संदेशवाहक (हार्मोन)

राष्ट्रमंडल (commonwealth) के सदस्य देशों के मध्य जो सम्बन्ध होता है ठीक उसी के सदृश पौधे के अंगों के मध्य भी सम्बन्ध पाया जाता है। राष्ट्रमंडल के स्वाधीन राष्ट्र जिस प्रकार बन्धन-रहित स्वतन्त्रता का बड़े पैमाने पर उपभोग करते हैं उसी प्रकार पादप राष्ट्रमंडल के सदस्य भी करते हैं।

पादप-शरीर के अंग भी राष्ट्रों की भाँति बंधुता और रीतियों के सामान्य बंधनों में एक दूसरे से बंधे हुए रहते हैं। इन बंधनों में बँधे होने के परिणामस्वरूप और अपनी स्वाधीनता को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये मंडल के ये राष्ट्र मेल के साथ कार्य करते हैं। इस तरह विश्व के सम्मुख राष्ट्रमंडल एक संयुक्त मोर्चे के रूप में होता है। ठीक उसी भाँति एक पौधे के अंग इस प्रकार एक दूसरे से, बँधे रहते हैं कि उनके अनेक कार्य व्यवस्था प्रदर्शित करते हैं और पौधा अपने अंगों की संख्या और विषमता के होते हुए भी एक व्यक्ति के समान व्यवहार करता है और उसी प्रकार प्रतीत होता है। जिस प्रकार राष्ट्रमंडल की इकाई एक व्यक्ति नागरिक है ठीक उसी प्रकार पादप-मंडल में एक कोशिका का स्थान होता है। जीवित कोशिका का मनुष्य की भाँति अपना एक विशेष व्यक्तित्व होता है। मनुष्य की तरह यह भी यद्यपि एक इकाई को प्रदर्शित करती है, परन्तु कोशिका किसी भी तरह साधारण रूप की नहीं होती, अपितु इसका संघटन बड़ा जटिल होता है। कोशिका या प्रोटोप्लास्ट जीवित होता है। यह भोजन खाता है, पदार्थ में वृद्धि करता है, श्वसन का कार्य करता है और एक प्रकार की सक्रिय गति करता है, तथा विभाजित होकर नई कोशिकाओं का निर्माण करता है। मानव के व्यक्तित्व को दृढ़तापूर्वक स्वीकार किये जाने पर भी वह राष्ट्र में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार कोशिकाओं का व्यक्तित्व उन अंगों में विलीन हो जाता है जिसके वे अवयव होते हैं और इन अंगों का व्यक्तित्व पादप राष्ट्रमंडल के वृहत्तर व्यक्तित्व में विलीन हो जाता है।

सबसे साधारण पौधों में, जो एक ही प्रोटोप्लास्ट के बने होते हैं, कोशिका का स्थान एक व्यवित विशेष के रूप में होता है। जब इसका विभाजन होता है तो

जो दो कोशिकाएं बनती हैं एक दूसरे से अलग हो जाती हैं। उच्चकोटि के पौधों में भी उनके जीवन-इतिहास के प्रारम्भ में एकल कोशिका ही व्यक्ति विशेष के रूप में होती है। तुरन्त ही यह कोशिका एककोशिक युग्मनज (zygote) अर्थात् निषेचित अंडकोशिका (fertilized egg-cell) विभाजित होती है परन्तु स्वतंत्र अवस्था प्राप्त करने के बजाय दो संतति कोशिकाएँ, जिनमें प्रत्येक एक कोशिका-भित्ति पदार्थ की सतत भित्ति द्वारा घिरी होती है, एक दूसरे से मिली रहती हैं। इसी भाँति जब संतति कोशिकाएँ विभाजित होती हैं तो चार पोती कोशिकाएँ एक दूसरे से मिली रहती हैं। इस प्रकार क्रमिक विभाजन के द्वारा प्रौढ़ पौधा बहुकोशिक जीव के रूप में स्थापित हो जाता है। अपनी कोशिका-भित्ति के अन्दर स्थित होते हुए भी कोशिकाएँ एक दूसरे से विच्छिन्न नहीं होती। सेलुलोस की भित्तियाँ जो जीवद्रव्य को आच्छादित किये रहती हैं, वे इतनी पतली और पारगम्य होती हैं कि एक कोशिका द्वारा स्रावित पदार्थ उनमें से विसरित होकर दूसरी कोशिकाओं तक पहुँच जाते हैं। इसके अतिरिक्त पौधे की कोशिकाओं के मध्य सायुज्यन के जीवित बंधक भी होते हैं। कोशिकाद्रव्य से निकलते हुए पतले रेशे कोशिका-भित्ति के गर्तों में हो कर समीपस्थ कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य के उसी प्रकार के रेशों से कम या अधिकांश रूप में मिल जाते हैं। जीवद्रव्य की इस सततता के फलस्वरूप अत्यधिक अविसरणशील पदार्थ, उदाहरणार्थ, एन्जाइम भी एक कोशिका से दूसरी कोशिका में वितरित हो जाते हैं। अतः यह ज्ञात होना आश्चर्य की बात नहीं है कि किसी भी बहुकोशिक जीव की कोई भी कोशिका अपने ही पर केवल निर्भर नहीं रहती। उनमें हर एक को कार्य की स्वाधीनता के उपभोग करने का अवसर मिलता है। परन्तु हर कोशिका पर एक सीमा तक सामाजिक आभार का उत्तरदायित्व होता है। इस प्रकार स्वाधीनता और बन्धन के मध्य समझौते के फलस्वरूप सदस्यों का व्यक्तित्व उत्पन्न होता है और इसी से पादप राष्ट्रमंडल का वृहत्तर व्यक्तित्व उपस्थित होता है।

पौधों का व्यक्तित्व वास्तविक होते हुए भी उच्चकोटि जन्तुओं में किसी की भी अपेक्षाकृत निरपेक्ष (absolute) है। इस भेद को एक साम्राज्य और राष्ट्र-मंडल के भेद के समान कहा जा सकता है। राष्ट्रमंडल सम्बन्धित सदस्यों को अधिक स्वाधीनता प्रदान करता है। वे राष्ट्रमंडल से अपने को पृथक् भी कर सकते हैं, परन्तु साम्राज्य से अपने को पृथक् करने का प्रयत्न एक वृहत संकट का रूप ले सकता है, और इसके असफल होने पर 'विद्रोह' का नाम देते हैं। पौधे से काटी गई कलम (cutting) जड़ उत्पन्न कर सकती है और एक व्यक्ति रूप का पुनः निर्माण करती है और यह पृथक्करण पौधे को कोई स्थायी हानि नहीं पहुँचाता। कुछ स्थितियों

में, जैसे डैन्डलिऑन और सीकेल, इत्यादि में जड़ से लिये गये एक टुकड़े से जो कि छः पेंस के सिक्के से न तो अधिक चौड़ा और न मोटा ही होता है, पूरे पौधे को पुनः उत्पन्न किया जा सकता है। एवं ऐसे पौधे भी हैं जिनमें पुनरुद्भवन की इतनी प्रबल शक्ति होती है कि पौधे में अपने स्थान पर होते हुए भी पत्ती या तने की केवल एक ही कोशिका एक निषेचित अंड-कोशिका की शक्तियाँ ग्रहण कर सकती हैं और विभाजित होकर वृद्धि तब तक जारी रखती है जब तक यह एक ऐसी कलिका का स्वरूप न ग्रहण कर ले जो पृथक् होने पर एक स्वाधीन पौधे का रूप ले ले और जड़ उत्पन्न कर सके। इस भाँति, जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है बीगोनिया की कुछ स्पीशीज की पत्ती की एक ही कोशिका एक नवीन पौधे को उत्पन्न कर सकती है।

यद्यपि प्राकृतिक अवस्थाओं में जड़ों का जीवन और उनकी वृद्धि तने और पत्ती से पहुँचे हुए खाद्य पदार्थ के प्रदाय पर निर्भर करता है, तने से पृथक् की गयी जड़ शर्करा तथा खनिज लवण युक्त उचित पोषक पदार्थ के माध्यम में रख होने पर जीवित रह सकती है, लम्बाई और मोटाई में बढ़ सकती है, तथा काष्ठीय ऊतकों तथा पार्श्व जड़ों को बहुत कुछ उसी प्रकार बनाना जारी रखती है जैसे इसने तने से जुड़ी होने की अवस्था में किया होता। लम्बाई में एक इंच के पच्चीसवें भाग से कुछ अधिक पृथक् किया हुआ एक मूल-छद का टुकड़ा भी अपनी आवश्यकतानुसार कुछ प्रोटीन, शर्करा एवं खनिज लवणों के प्राप्त होने पर वृद्धि करना जारी रखता है। इसकी कोशिकाएं विभाजित होती हैं और विभिन्न ऊतकों को जन्म देती हैं।

तथापि, स्वतन्त्र वृद्धि और विकास की शक्तियाँ, जो पादप राष्ट्रमंडल के सदस्य रखते हैं, के होते हुए भी पौधा अब भी एक स्वतन्त्र व्यक्ति है, जिसमें इसके सभी भाग एक दूसरे के सापेक्ष में आवश्यक एवं उचित व्यवस्था प्रतिपालित करते हैं। चीड़ के वृक्ष के प्रमुख प्ररोह का व्यवहार सम्पूर्ण पौधे के हितार्थ भागों की क्रिया-शीलता की अधीनता प्रदर्शित करता है। अग्र नायक एक अग्रस्थ कलिका होती है जिसके नीचे पार्श्व कलिकाओं का चक्कर होता है। साधारण परिस्थितियों में जब बसन्त में वृद्धि होना प्रारम्भ होता है तो अग्रस्थ कलिका लम्बी हो जाती है और एक तना बनाती है जो उदग्र दिशा में ऊपर की ओर बढ़ता है और पार्श्व कलिकाएँ लगभग क्षैतिज दिशा में बढ़ती है जिससे शाखाओं का एक चक्कर बन जाता है। परन्तु दुर्घटना से या विधानवश यदि अग्रस्थ कलिका नष्ट हो जाती है तो पार्श्व कलिकाओं में से कोई अग्रगन्ता का स्थान ग्रहण करती है। इसके द्वारा बनाया हुआ प्ररोह अब क्षैतिज दिशा में पार्श्व शाखाओं के चक्कर के भाग के रूप में नहीं बढ़ता, लेकिन ऊपर

की ओर उदग्रतः बढ़ कर अपने खोये हुए अग्रगन्ता का स्थान ग्रहण कर लेता है। अतः यह स्पष्ट है कि पौधे में कुछ प्रक्रम ऐसे भी काम करते रहते हैं जो उसके व्यक्तित्व की रचना करते हैं। उनको एकीकरण (integration) के प्रक्रम कह सकते हैं और पादप शरीर-क्रिया विज्ञान में महत्वपूर्ण विषय एकीकरण प्रक्रमों की प्रकृति है।

उच्चकोटि के पौधों में अभिगमन के विस्तृत तंत्र का होना, जिसके द्वारा पानी और खनिज लवण पत्तियों तक ले जाये जाते हैं और शर्करायें और दूसरे खाद्य पदार्थ पत्तियों से तने तथा जड़ के दूसरे भागों तक ले जाये जाते हैं, उसके एकीकरण प्रक्रमों के अस्तित्व एवं दक्षता दोनों का स्पष्ट उदाहरण है। जिस प्रकार सड़कों और दूसरे संदेश साधनों का स्तर मानव समाजों के सामाजिक उत्थान का द्योतक है, ठीक उसी प्रकार पौधों में संदेश साधनों की निपुणता उनके विकासीय स्तर का प्रतीक है क्योंकि यह समान रूप से एक या किसी के लिए भी सत्य है कि निंदित संदेश-साधन अच्छे राष्ट्रमंडलों को भ्रष्ट बना देते हैं।

पौधे को एकत्व प्रदान करने वाले एकीकरण प्रक्रम मुख्य रूप से अभिगमन सेवा के विस्तार के कारण हैं। राष्ट्रमंडल के राष्ट्रों को एकत्व में बांधने के बन्धन वायु के समान हल्के एवं लोहे के समान दृढ़ होते हैं। जो बन्धन कोशिकाओं को ऊतकों में तथा ऊतकों को सदस्यों में संयोजित करते हैं पादप राष्ट्रमंडल के सामान्य हितार्थ अधीनस्थ होते हैं, वे कम प्रबल अथवा कम मर्मज्ञ नहीं होते।

एकता को स्थापित करने वाले बन्धन कितने मर्मज्ञ होते हैं इसका अनुमान तो उन संवेदी पौधों में किसी एक, उदहारणार्थ छुईमुई के व्यवहार से हो सकता है जो उद्दीपित होने पर पत्तियों की व्यवस्थित गति द्वारा अपने व्यक्तित्व को प्रदर्शित करते हैं। यदि छुईमुई का पौधा तीव्र गति से वृद्धि कर रहा हो और दिन कुछ गर्म तथा धूपयुक्त हो तो तनिक धक्के के प्रभाव से पत्ती बन्द हो जाती है और पर्णवृन्त लटक जाते हैं। उदाहरणार्थ जब सूर्य की किरणें एक उत्तल लेंस द्वारा किसी एक पत्रक पर केन्द्रित की जाती हैं तो उस पत्रक का जोड़ा और फिर दूसरा जोड़ा और इस प्रकार संयुक्त पत्ती के उस भाग के सब जोड़े बन्द हो जाते हैं। तब पर्णवृन्त जो मुड़ी हुई और अवलम्बित पत्तियों को धारण करता है तीव्रता से गिर जाता है एवं झुक जाता है। अब भी फैलता हुआ यह विप्लव उसी प्रकार से पर्ण-वृन्तों तथा पत्ती के दूसरे भागों को प्रभावित करता है, जब तक कि अन्त में मुख्य पर्णवृन्त एक एक गिर जाता है और सम्पूर्ण पत्ती एक क्लेशमय दृश्य उपस्थित करती है।

इन घटनाओं की श्रृंखला से यह स्पष्ट है कि एक स्थानीय एवं प्राणघातक धक्का सुदूरवर्ती एवं व्यवस्थित परिणामों को प्रेरित करता है। किसी प्रकार का

विक्षोभ, जैसे कि बाह्य दशाओं में परिवर्तन होना, जिसके फलस्वरूप प्रतिक्रिया होती है उसको उद्दीपन (stimulus) कहते हैं। उद्दीपन का तत्कालिक प्रभाव ऊतकों का स्थानीय परिवर्तन ही है जिस पर उद्दीपन क्रिया करता है। इस परिवर्तन को

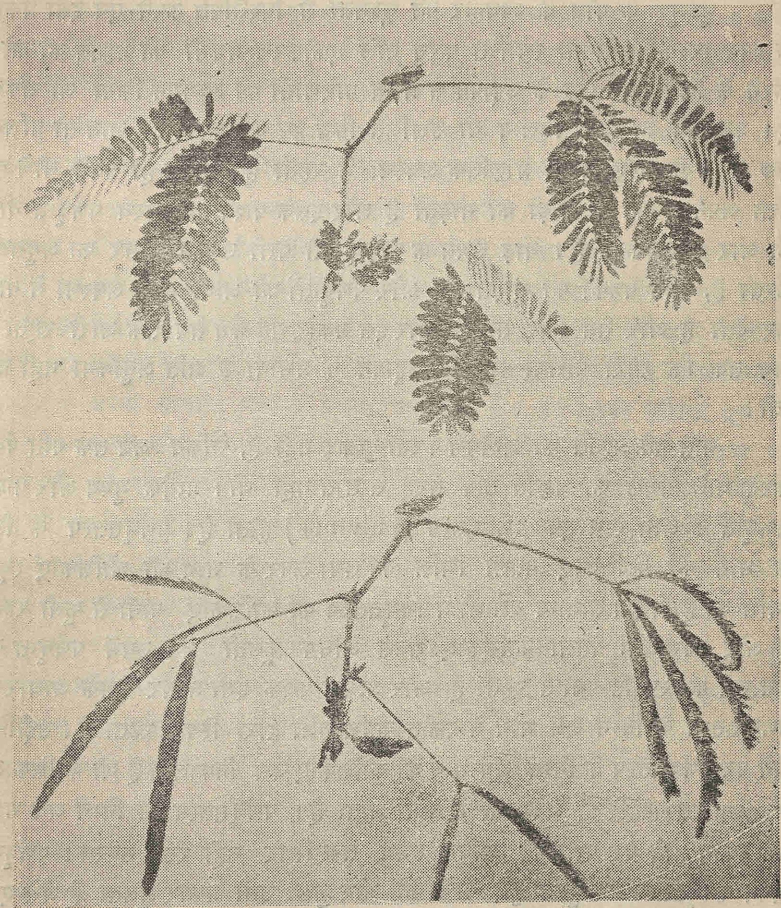

चित्र ४९—छुईमुई का पौधा जिसमें पत्तियाँ सामान्य स्थिति में और उद्दीपन के पश्चात दिखाई गई हैं।

उत्तेजन (excitation) कहते हैं। ऊपर वर्णन की गयी स्थिति में उत्तेजन का अन्तिम परिणाम पर्णवृन्त तथा पत्तियों की गति ही है। उत्तेजित ऊतक एक संदेश

भेजती है जो उस क्षेत्र से होकर भेजी जाती है जो उद्दीपन को प्राप्त करने वाले पौधे के भाग—ग्राही (receptor) तथा वे भाग जो इसके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं—प्रेरणा चालक (effectors) के मध्यस्त स्थित हैं।

छुईमुई के पौध के व्यवहार को सूक्ष्मता से विश्लेषित करने एवं इसी प्रकार के व्यवहार की समानता स्थापित करने वाले एकीकरण प्रक्रमों की प्रकृति की खोज करने के लिए मुख्य जड़ के उद्दीपन से प्राप्त परिणामों का अध्ययन किया जा सकता है। यदि तने को बिना हिलाये या उत्तेजित किये हुए जड़ को काटा जाय तो पत्तियाँ कुछ समय के लिए अपनी प्राकृतिक अवस्था में रहती हैं। तुरन्त ही सबसे नीचे की पत्ती अपने पत्रकों के जोड़ों को मोड़ती है और इसके पार्श्व एवं मुख्य पर्णवृन्त नीचे की ओर संकेत करते हैं। थोड़े समय के बाद दूसरी पत्ती उसी व्यवहार का अनुसरण करती है, अपने पत्रकों को मोड़ती है और पर्णवृन्तों को आधी झुकी अवस्था में नीचे कर देती है और तब फिर तीसरा और इस प्रकार यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक कि सारी पत्तियाँ जड़ के उद्दीपन के प्रभावों के प्रति अनुक्रिया नहीं कर देती।

गति की प्रकृति का अन्वेषण करना दुष्कर नहीं हैं, लेकिन अब तक गति पैदा करने वाले संदेश की प्रकृति ठीक तरह से ज्ञात नहीं थी। प्रत्येक मुख्य और पार्श्व पर्णवृन्त के आधार में एक पर्णवृंततल्प (pulvinus) होता है। पर्णवृंततल्प के नीचे के भाग की कोशिकाएं पतली भित्ति की तथा ऊपर के भाग की कोशिकाएं स्थूल भित्ति की होती है। सामान्य दशाओं में पर्णवृंततल्प की कोशिकाएं पानी से फूली रहती हैं और स्वभावतः पतली कोशिकाएं सबसे अधिक फूलती हैं। उनमें पर्णवृन्त को सम्भालने की स्फीति पर्याप्त रहती है और प्रत्येक पर्णक इसी प्रकार इसके आधार में पर्णवृंततल्प के निम्न अर्ध भाग में स्फीत कोशिकाओं द्वारा स्थिर रहता है। उद्दीपित होने पर पर्णवृंततल्प के निम्न अर्ध भाग की कोशिकाएं जल निकालती हैं जो कोशिकाओं के मध्य अंतराकोशिकी अवकाशों में चला जाता है। पर्णवृंततल्प का निम्न अर्ध भाग कम स्फीत होने पर पत्ती को अधिक समय तक स्थिर नहीं रख सकता। पर्णवृन्त अपने पर्णवृंततल्प पर घूमते हुए नीचे की ओर कुछ उसी प्रकार झूलता है जैसे एक फाटक अपनी चूलों पर घूमता है और अपने ही भार से बन्द हो जाता है। पत्तियों की आपेक्षिक धीमी एवं क्रमिक गति यह संकेत करती है कि जड़ से होकर संदेश ऊपर की ओर तने में होकर जाता है और उत्तरोत्तर पत्तियों को मिल जाता है। जिस मार्ग से होकर संदेश जाता है उसका प्रयोग द्वारा अन्वेषण किया जा सकता है। यदि बाह्यत्वचा, वल्कुट और फ्लोएम को काट दिया जाय तो पत्तियाँ मुख्य

जड़ की क्षति के प्रति निरन्तर प्रतिक्रिया करती रहती हैं और वे ऐसा ही करती हैं जब संदेश को ले जाने के लिए केवल एक काष्ठीय ऊतक के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता। तब किसी भी प्रकार एक या दूसरे रूप में संदेश काष्ठ के सहारे जाता है। अन्य प्रयोग इस तथ्य के रहस्य को बतलाता है कि यह एक संदेशवाहक द्वारा ले जाया जाता है। संदेशवाहक काष्ठ के तत्वों के ताप या संवेदनाहारी औषधि द्वारा मारे जाने पर भी चला जाता है। उदाहरणार्थ जब तने का एक छोटा हिस्सा अपने ऊतकों के 'मृत्यु बिन्दु' से ऊपर गर्म किया जाता है तो क्षत क्षेत्र के बाहर पत्तियाँ कुछ समय तक ताजी बनी रहती हैं क्योंकि जड़ों से अब भी पानी उन तक पहुँचता है और इसी प्रकार संदेशवाहक भी उन तक पहुँच सकता है; क्योंकि अब यदि जड़ों को काट दिया जाय तो पत्तियाँ पहले की भाँति बन्द हो जाती हैं। संदेश को ले जाने वाले संदेशवाहक का भेद भी जाना जा सकता है। यदि जड़ को उद्दीपित करने के पूर्व तने को दो हिस्सों में विभक्त कर दिया जाय और पानी से भरी छोटी शीशे की नली विच्छेदित सिरों को जोड़ने के काम में लायी जाय तो पौधा कुछ समय के लिए शल्य-क्रिया के प्रभाव से अपनी सामान्य अवस्था में पुनः आ जाता है। जब इसकी पत्तियाँ एक बार और बाहर की ओर फैल जाती हैं तो वे जड़ को काट कर फिर से बन्द करवा कर लटकायी जा सकती हैं। अतः यह संदेशवाहक एक विशिष्ट रासायनिक पदार्थ है जो उद्दीपन के फलस्वरूप निर्मुक्त हो जाता है, उदाहरणार्थ जैसे जड़ के काष्ठीय ऊतकों को काटने से, रासायनिक दूत या हार्मोन काष्ठीय वाहिकाओं के द्वारा वाष्पोत्सर्जन धारा द्वारा ले जाया जाता है और जैसे ही यह आगे बढ़ता है यह हर उत्तरोत्तर पत्ती पर मानो धक्का देता है। संदेशवाहक के पहुँचने का प्रभाव पर्णवृंततल्प के स्फीत कोशिकाओं से पानी निकालने का कारण बन जाता है जिससे कि वह वृन्त तथा पर्णकों के भार को सहन करने की शक्ति खो देता है।

यद्यपि यह किसी प्रकार भी छुईमुई की संवेदनशीलता का पूर्ण रहस्य नहीं है फिर भी इससे पर्याप्त रूप में यह प्रदर्शित हो जाता है कि पौधे के पर्णीय सदस्यों के व्यवहार का एकीकरण किस प्रकार होता है, और पौधों में सामान्यतः एकीकरण किस प्रकार होता है उसके ढंग को भी बतलाता है। क्योंकि यह नहीं माना जा सकता कि कुछ विशेष रासायनिक उत्तेजकों या हार्मोनों द्वारा उद्दीपन की विधि छुईमुई के पौधे के लिए बड़ी अनुपम है। यह सभी पौधों के लिए सामान्य है।

उन उद्दीपनों में, जिनके प्रति पौधे बहुत ही सतर्कता एवं शीघ्रता से प्रतिक्रिया करते हैं, वे हैं, जो प्रकाश के उनके ऊपर पड़ने की दिशा में परिवर्तन तथा उदग्र दिशा के सापेक्ष स्थिति परिवर्तन द्वारा स्थिर किये जाते हैं। प्रकाश और गुरुत्व उद्दीपनों

के प्रति प्रतिक्रियायें क्रमशः प्रकाश-अनुवर्ती तथा गूरुत्वानुवर्ती गतियाँ कहलाते हैं। तना और जड़ के सम्बन्ध में वक्रता की अनुक्रियाशील गति अनुवर्ती सदस्य के दीर्घभावी क्षेत्र के दोनों ओर की वृद्धि की सापेक्ष दर में परिवर्तन के कारण होती है। एक जड़ जो क्षैतिज दिशा में रखी हो अपने दीर्घभावी प्रदेश के दोनों ओर असमान वृद्धि के कारण नीचे की ओर वक्र हो जाती है जब तक कि इसका अग्रक एक बार पुनः उदग्र नहीं हो जाता। घास का प्रांकुर-चोल, उदाहरणार्थ जई का नवोद्भिद—जिसका अग्रक एक ओर से प्रदीप्त होता है उससे उसकी वृद्धि में एक बाधा पड़ जाती है। पत्ती का दीर्घभावी निचला भाग प्रकाश से दूर वाले पार्श्व में अधिक तीव्रता से वृद्धि करता है जिसके कारण अग्रक फिर प्रकाश की ओर आ जाता

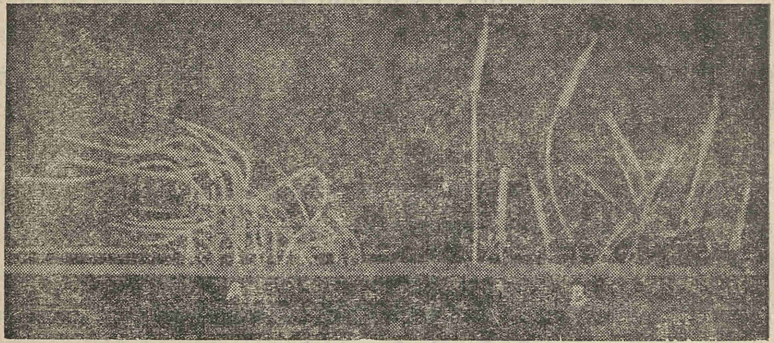

चित्र ५०—फैलेरिस कैनेरीयेंसिस घास के प्रांकुर-चोल प्रकाश-अनुवर्ती उद्दीपन के सम्मुख रखे हुये। (क) अग्र खुले हुये; (ख) अग्र ढके हुये।

है। ग्रीष्म काल में हवा एवं वर्षा के तूफानों द्वारा मुड़े हुए मक्का के पेड़ों की दशा बड़ी शोचनीय दृष्टिगोचर होती है जब मक्का के सब तने भूशायी हो जाते हैं। परन्तु यदि मक्का पर्याप्त रूप से न पका हुआ हो तो ये पुनः संभल जाते हैं और एक बार फिर प्रत्येक तना सीधा खड़ा हो जाता है। तूफान ने तनों को अपने-अपने मार्ग से छितरा दिया और प्रत्येक धरती पर क्षैतिज दिशा में गिर गया। भूशायी अवस्था में तनों की फूली हुई गाँठें गुरुत्व की क्रियारेखा की विपरीत अवस्था में लेट जाती हैं और इस अवस्था में स्वतः ही गुरुत्वानुवर्ती उद्दीपन से उद्दीपित होती हैं। इसके परिणामस्वरूप वे फिर से वृद्धि करना प्रारम्भ करती है और ऊपर के पार्श्व की अपेक्षा नीचे के पार्श्व में अधिक वृद्धि करती हैं। हर एक तीक्ष्णता से झुकी हुई गाँठ तने को इसके उदग्र मार्ग में एक बार और स्थिर करती है। तने जब एक बार पुनः उदग्र

स्थिति में स्थापित हो जाते हैं तो गुरुत्व से बाधा नहीं होती और सीधे खड़े पौत्रे विश्राम की अवस्था में हो जाते हैं। इस अवस्था में गांठे उद्दीपित न होने पर अधिक समय तक एक ओर की अपेक्षा दूसरी ओर तीव्र गति से वृद्धि नहीं करती हैं और इस प्रकार उदग्र मार्ग जारी रहता है।

प्रत्येक जड़ का नीचे की ओर उदग्र दिशा में संकेत करना और प्रत्येक तने का उदग्र दिशा में ऊपर की ओर वृद्धि करना समायोजन की उन उत्कृष्ट शक्तियों का लक्षण है जिससे कि पौधा अपना व्यक्तित्व प्रतिपादित करता है और अपने सदस्यों के लिए कार्य करने की अनुकूल स्थितियाँ सुरक्षित रखता है। इसको इस स्थिति का परिचय इस तथ्य से प्राप्त हो सकता है कि तने के विपरीत साधारण प्रकार की पत्ती को सूर्य के प्रकाश का पूर्ण लाभ उठाने के लिए प्रकाश की दिशा के लगभग समकोण तल में रहने की आवश्यकता होती है। जैसा कि प्रत्यक्ष है कि चौड़ी पत्तियाँ साधारणतया इस तल में रहती हैं। उनको इस अवस्था से हटाने का प्रयत्न करने पर वे झुक या मुड़ जाती हैं और किसी प्रकार प्रकाश के सापेक्ष में प्राकृतिक अवस्था ग्रहण कर लेती हैं। यदि वे केवल एक ओर से ही प्रदीप्त की जांय तो पत्तियाँ या तो अपने पत्रदल या पर्णवृन्त की वृद्धि होने से मुड़ जाती हैं, जब तक कि पर्ण के पृष्ठ का तल एक बार पुनः प्रकाश के लगभग समकोण दिशा में न हो जाय। यदि पत्रदल को स्थिर कर दिया जाय जिससे कि वह हिल न सके तो फिर भी पत्ती पूर्व अवस्था में पर्णवृन्त के मुड़ जाने से आ जाती है।

छुईमुई में उद्दीपन किसी भी भाग से जैसे, जड़, तना, पत्ती, से ग्रहण किया जा सकता है, लेकिन पौधों के उन भागों में जो प्रकाश या गुरुत्व के उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं, ग्राही अंग के स्थानीकरण अर्थात उस उपकरण का जो उद्दीपन का पंजीयन करता है का अन्वेषण करना चाहिए।

यह बहुत पहले ही देखा गया था कि जड़ों के गुरुत्व उद्दीपन में मूल अग्रक ग्राही अंग का कार्य करता है। उदाहरणार्थ, यदि मूल अग्रक काट दिया जाय तो क्षैतिज दिशा में रखी हुई जड़ गुरुत्वावर्ती प्रतिक्रिया नहीं करती परन्तु लगभग क्षैतिज दिशा में वृद्धि जारी रखती है। यह प्रयोग द्वारा दिखाया जा सकता है कि गुरुत्व के उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया करने की शक्ति का ह्रास ग्राही अंग को हटा देने के कारण है न कि प्रेषण अंग या प्रेरणा चालक उपकरण में किसी परिवर्तन के कारण। इस प्रयोग को साधारणतया बिना किसी विशेष उपकरण की सहायता से किया जा सकता है लेकिन यह विशेष शिक्षाप्रद होता है यदि क्लाइनोस्टैट से इस प्रयोग को अधिक सुतथ्यता से किया जाय। इस यंत्र में एक घड़ी की तरह या कोई दूसरी

यंत्रकला होती है जो कि एक क्षैतिज अक्ष में निरन्तर और मन्द गति से परिक्रमण करती है। नवोद्भिद पौधे जो अक्ष के समानान्तर जुड़े होते हैं हर परिक्रमण में पूर्णरूपेण पलट जाते हैं। परिक्रमण काल में जब अक्ष आधा परिक्रमण कर लेता है तो

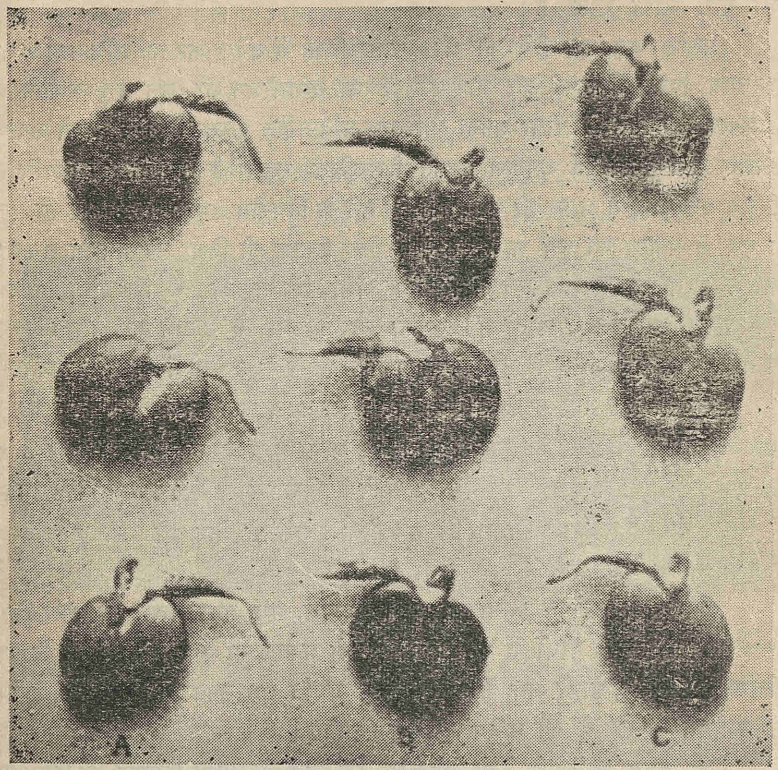

चित्र ५१--बाकला की जड़ का गुरुत्वानुवर्ती उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया। A, अविकल जड़ घनात्मक गुरुत्वानुवर्तन प्रदर्शित करती हुई; B, शिरच्छेदित जड़ कोई गुरुत्वानवर्ती अनुक्रिया प्रदर्शित नहीं करते हुये; C, उन जड़ों की गुरुत्वानुवर्ती अनुक्रिया जिनका अग्र भाग विच्छेदित कर दिया गया था लेकिन जिलेटिन द्वारा पुनःस्थापित कर दिया गया था।

वह भाग जो प्रारम्भ में ऊपर की ओर था नीचे की ओर हो जाता है और जब परिक्रमण पूर्ण हो जाता पुनः ऊपर की ओर हो जाता है। अतः क्लाइनोस्टैट पर गुरुत्व की क्रिया रेखा के सापेक्ष में तना या जड़ विपरीत स्थितियों की श्रेणी से होकर जाती

है जो मानो प्रभाव को नष्ट कर देती है। किसी भी स्थिति में वक्रता द्वारा उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया करने के लिए पौधा पर्याप्त समय के लिए स्थिर नहीं रहता। हर स्थिति ग्राही अंग उद्दीपन को ग्रहण करता है और थोड़ा उत्तेजित होता है लेकिन कोई कार्यकारी संदेश पाने के पूर्व १८०° के कोण पर मुड़ कर जड़ पलट जाती है। यदि ग्राही अंग कोई संदेश भेज भी रहा है तो उसको यह संदेश भेजना पड़ता है जो उसके विपरीत होता है जिसको उसे पहले भेजना चाहिए था, और इसी प्रकार यह चारों ओर होता है। इसका परिणाम यह होता है कि कोई भी संदेश संचारित नहीं होता और मन्द गति से घूमने वाला पौधा कोई गुरुत्वानुवर्ती वक्रण नहीं प्रदर्शित करता। जड़ और तना यदि प्रारम्भ में सीधे हों और उनको प्रकाश से गोपित कर दिया जाय तो वे सीधे ही रहते हैं। वे उसी दिशा में वृद्धि करते रहते हैं जिसमें कि वे प्रारम्भ में रखे गये थे।

इसलिए क्लाइनोस्टैट इस कार्य के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि यह सांयोगिक गुरुत्वानुवर्ती उद्दीपन को रोकता है। सांयोगिक उद्दीपन की संभावना दूरवर्ती भी नहीं है क्योंकि यदि जड़ को उदग्र दिशा से एक अंश भी इधर-उधर रखा जाय तो गुरुत्वानुवर्ती वक्रण साहुल सूत्र की निश्चितता से जड़ के हटने को प्रदर्शित करेगा। कुछ पुष्ट पौधों, जैसे सूर्यमुखी या बाकला के नवोद्भिदों को नारियल के रेसों में उगाया जाय और जब उनकी जड़ें एक इंच से डेढ़ इंच तक लम्बाई में हों तो उनको एक निर्दिष्ट समय के लिए जड़ों को क्षैतिज दिशा में रखकर जोड़ों में रखा जा सकता है, जैसे मानो एक जोड़ा एक मिनट के लिए, एक पाँच मिनट के लिए, एक दस मिनट के लिए और एक पन्द्रह मिनट के लिए। क्षैतिज स्थिति में रखे जाने के पश्चात मूल अग्रक हर एक जोड़े में से एक से अलग कर दिया जाता है। निश्चित समय के अन्त में एक जोड़े का नवोद्भिद क्लाइनोस्टैट पर लगा कर घुमाया जाता है। उपकरण को लगभग एक घंटे तक चालू रखा जाता है। यह हमेशा इस धीमी गति से परिक्रमण करता है मानो २० मिनट में एक परिक्रमण। परिक्रमण करते हुए नवोद्भिदों में कोई गुरुत्व उद्दीपन प्रभावशील नहीं होता और किसी प्रकार की सुलक्षित एवं क्रमिक वक्रता जो इन नवोद्भिदों में से किसी में दृष्टिगोचर होती है उसका श्रेय उस गुरुत्वानुवर्ती उद्दीपन को है जिसकी क्रिया के अधीनस्थ उनको क्लाइनोस्टैट पर रखे जाने से पहले ही कर दिया था। जिन नवोद्भिदों को क्षैतिज दिशा में पन्द्रह मिनट तक रखा गया था उनका वक्र होना प्रारम्भ होने में अधिक समय नहीं लगता, कदाचित यह पाँच मिनट का ही कार्य है। लगभग पाँच मिनट के बाद दस मिनट तक रखे हुए नवोद्भिद भी वक्र होना प्रारम्भ करते हैं और केवल पाँच मिनट तक क्षैतिज दिशा

में रखे हुए नवोद्भिद भी शीघ्र ही कुछ वक्रता प्रदर्शित करते हैं। क्षैतिज अवस्था में एक मिनट तक रखे जाने वाले नवोद्भिद कोई वक्रता नहीं दिखाते चाहे उनको क्लाइनोस्टैट पर कितनी ही देर क्यों न रखा जाय। अतः यह स्पष्ट है कि ग्राही अंग––मूल अग्रक––उत्तजन के लिये उद्दीपन के सम्मुख किसी निश्चित न्यूनतम समय के लिए प्रस्तुत करना चाहिए जिससे वह प्रेरक अनुक्रिया कर सके। इस न्यूनतम समय को उपस्थापन काल कहते हैं और यह गुरुत्वानुवर्तन प्रतिक्रिया के लिए पौधों की दशा और भद के अनुसार ५ या १० मिनट तक होता है। दूसरी ओर उद्दीपन केवल तात्क्षणिक होता है लेकिन तिस पर भी वर्धन प्रदेश में कोई संदेश पहुँचाने के लिए पर्याप्त शक्तिमान होने और इस क्षेत्र को वक्र करने के पूर्व उत्तेजन के परिणाम एक निश्चित परिमाण तक पहुच जाने चाहिए। अतः एक मिनट तक उद्दीपित होने वाले नवोद्भिद कोई वक्रता नहीं दिखाते। सन्देश भेजने की पर्याप्त प्रबलता प्राप्त कर लेने के पूर्व ही उसका उत्तजन समाप्त हो जाता है। तो भी गुरुत्व उद्दीपन के सम्मुख एक मिनट तक प्रगटीकरण के समय भी उद्दीपन था और इस प्रकार व्यवस्थित क्लाइनोस्टैट के उपयोग द्वारा यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि किसी निश्चित समय के लिए, माना एक मिनट के लिए, अपने परिक्रमण काल में रुक जाय और फिर अपना परिक्रमण जारी रखे। यदि परिक्रमण की गति बहुत धीमी हो तो आंतरायिक क्लाइनोस्टैट पर रखी हुई जड़ें कोई वक्रता प्रदर्शित नहीं करती। प्रत्येक निर्बल उद्दीपन जो अल्पकालिक रुक जाने में होता है वह समाप्त हो जाता है। यदि परिक्रमण की दर, कुछ अधिक तीव्र हो जिससे कि विश्रामावस्था और परिक्रमण के समय का अनुपात १:५ से कम न हो तो जब क्लाइनोस्टैट रुक जाता है तब भी उद्दीपन का कुछ भाग बना रहता है और उद्दीपन जुड़ते रहते हैं जब तक कि वे एक पर्याप्त परिमाण तक पहुँच कर संदेश भजने के काबिल हो जाते हैं और जो दीर्घमान प्रदेश तक पहुँच कर वहाँ प्राप्त किया जाता है और क्रियान्वित किया जाता है और जड़ गुरुत्वानुवर्ती रूप से वक्र हो जाती है।

सतत क्लाइनोस्टैट में प्रयोग किये जाने वाले नवोद्भिदों के हर एक जोड़ों में एक से मूल अग्रक को काट कर यह दिखलाया जा सकता है कि पर्याप्त समय के लिए गुरुत्वनुवर्तन उद्दीपन की ओर उद्भासन के पश्चात् ग्राही को हटाने का उद्दीपन के पारेषण पर ही न कोई प्रभाव डालता है और न उसकी प्रतिक्रिया पर, चाहे उनको विच्छेदित किया गया हो अथवा न किया गया हो पर प्रत्येक जोड़े की जड़ें समान रूप से व्यवहार करती हैं। यदि अविकल जड़ गुरुत्वानुवर्ती रूप से वक्र होती है तो उसी प्रकार शिरच्छेदित मूल भी व्यवहार करती है।

अतः गुरुत्वानुवर्ती अनुक्रिया को विश्लेषित करना सम्भव है: उद्दीपन, ग्राही, उत्तेजन; उद्दीपन के परिणामों को एकत्रित करना जब तक कि यथेष्ट प्रबल संदेशवाहक यात्रा को सफल बनाने के लिए उपस्थिति में न लाया जाय; संदेशवाहक का ग्राही से प्रेरणा चालक प्रदेश तक यात्रा करना; कोशिका वृद्धि के कार्य के अवरोध प्रतिपालित करने के परिणामस्वरूप पहुँचना, जो अवरोध प्रेरक अनुक्रिया द्वारा प्रदर्शित होता है; क्षैतिज दिशा में प्रस्तुत होने की अवस्था में जो कोशिकाएं ऊपर थी उनका अपेक्षाकृत अधिक तेजी से वृद्धि करना जो विपरीत दिशा में थीं, और वह भाग जिसकी अधिक तीव्रता से वृद्धि करने वाली कोशिकाएं एक अंग है नीचे की ओर वक्र हो जाती है जब तक कि मूल अग्रक फिर से पृथ्वी के केन्द्र की ओर संकेत करता है।

शिरच्छेदित जड़ों के व्यवहार से केवल एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है। गुरुत्व उद्दीपन के अपावरण के पूर्व शिरच्छेदित जड़ें कोई अनुक्रिया नहीं प्रदर्शित करती। वे जो गुरुत्व उद्दीपन के अपावरण के पश्चात् शिरच्छेदित की जाती है वक्र हो जाती हैं।

शिरच्छेदन से ग्रहण-केन्द्र नष्ट हो जाता है; लेकिन पहली स्थिति में संदेश प्राप्त होने के पूर्व क्षति हुई थी जब कि बाद की स्थिति में संदेश पहले ही लिया जा चुका था और नष्ट होने से पहले ही भेज दिया गया था। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि गुरुत्व उद्दीपन के लिए ग्राही शिखर में स्थानीकृत रहता है।

ग्राही का स्थानीकरण पौधे के उन भागों में दिखलाया जा सकता है जो प्रकाश के उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। विभिन्न प्रकार के घासों, जैसे जई इत्यादि के नवोद्भिद भाले के आकार के प्रथम अपूर्ण पर्ण उत्पन्न करते हैं जो प्रकाश के लिए विलक्षण रूप में संवेदनशील होते हैं। एक छिछले बक्स में उगाये हुए नवोद्भिद अंधेरे में सीधे खड़े रहते हैं। कुछ नवोद्भिद हल्के विसारित प्रकाश में लाये जाने पर, शीघ्रता से उनके शिखर को टोपी के रूप में मुड़ी हुई टिन की पन्नी से ढक कर अंधकार में किये जा सकते हैं। यदि टोपी चढ़ाने की क्रिया के लिए लाल प्रकाशयुक्त अंधेरा कमरा उपलब्ध हो तो अति उत्तम है क्योंकि लाल प्रकाश बैंगनी या नीले प्रकाश की अपेक्षा प्रकाश-अभिवर्तन को प्रेरित करने में कम क्षम होता है। प्रकाश में लाये जाने पर और केवल एक ओर से प्रदीप्त किये जाने पर, उदाहरणार्थ नवोद्भिदों वाले बन्द बक्स के खुले भाग के ऊपर रखे हुए कार्डबोर्ड के ढक्कन में एक सूचीछिद्र के द्वारा, वे सभी टोपीविहीन पौधे इस प्रकार वक्र होते हैं कि उनकी प्रत्येक पत्ती का शिखर सूचीछिद्र की ओर संकेत करता है। दूसरी ओर टोपी-युक्त पौधे या तो सीधे खड़े रहते हैं, अथवा प्रभावहीन एवं संकोचमय वक्रता प्रदर्शित करते हैं जो टोपी विहीन पौधों की वक्रता के समान कभी नहीं होती। यह निष्कर्ष प्रदर्शित

करता है कि, जैसे गुरुत्व उद्दीपन के लिए, ठीक उसी प्रकार प्रकाश उद्दीपन के लिए ग्राही का स्थानीकरण होता है, और पौधे का प्रत्येक भाग, जिस पर प्रकाश पड़ता है इतना प्रभावित नहीं होता कि सही व निश्चित संदेश भेजने के लिए उसको प्रेरित किया जा सके जिससे कि वह दूरस्थ भागों की निश्चित सही वृद्धि-वक्रता के लिए उत्तरदायी हो। ग्राहियों के सम्बन्ध में कुछ अधिक कहना आवश्यक होगा लेकिन इस समय संदेशों को भेजने की प्रकृति में हमारी उत्सुकता अधिक है।

जब मानव शरीर के ग्राही, उदाहरणार्थ ज्ञानेन्द्रियाँ, बाह्य जगत में उचित परिवर्तन द्वारा उद्दीपित होती हैं तो वे परिवर्तन को पंजीकृत करती हैं, उत्तेजित होती है और संदेश भेजती हैं। तंत्रिका आवेग के नाम से ज्ञात संदेश विशिष्ट संवाहन मार्गों अर्थात् तंत्रिकाओं से होकर जाते हैं और शीघ्र ही या कुछ देर में मांसपेशियों, ग्रन्थियों एवं दूसरे संवेदनग्राही अंगों को कार्यान्वित करते हैं। नाक पर बैठी हुई मक्खी हाथ के द्वारा शीघ्र ही उड़ा दी जाती है।

उत्तेजन के परिणामों के भेजे जाने के कार्य में तन्त्रिकाओं द्वारा लिए गये भाग के ज्ञान से यह स्वाभाविक ही है कि शरीरक्रिया विज्ञानवेत्ता को पशुओं की तंत्रिकाओं का प्रतिरूप पौधों में भी खोजना चाहिए। स्थानीकृत ग्राहियों का अस्तित्व इस खोज को प्रोत्साहित करता प्रतीत होगा क्योंकि वे जन्तुओं की प्रमुख ज्ञानेन्द्रियों के अनुरूप होती हैं, तिस पर भी खोज अब तक वृथा हो रही है। पौधों में निश्चयपूर्वक जन्तुओं के तंत्रिकाओं के अनुरूप कोई संरचनाएं नहीं हैं। यह सत्य है कि कुछ लोगों ने यह अनुमान लगाया है कि सूक्ष्म जीवद्रव्यी रेशे जो एक कोशिका से दूसरी कोशिका को जोड़ते हैं आद्य तंत्रिकायें हैं, लेकिन यद्यपि इस कल्पना का खंडन नहीं किया जा सकता फिर भी यह अधिक संभव है कि इन रेशों का कार्य एक कोशिका से दूसरी कोशिका में रासायनिक या द्रव्य संचारण है, न कि जन्तुओं के तंत्रिका आवेगों के समान भौतिक संदेशों का संचारण।

अतः किसी तरह यह ज्ञात है कि छुईमुई के पौधे के समान अन्य पौधों में भी उद्दीपन के फलस्वरूप कुछ विशिष्ट रासायनिक पदार्थ बनते हैं जो ग्राही व प्रेरक क्रियाविधि के मध्य संदेशवाहक की भाँति कार्य करते हुए वातावरण में परिवर्तन के अधीनस्थ प्रेरक में गति या अन्य परिवर्तन उपक्रमण करते हैं। यदि जई के नवोद्भिद के प्रथम पर्ण के अग्रक को काट दिया जाय तो शेष भाग के एकपार्श्विक प्रदीप्त होने पर भी वह प्रकाश-अनुवर्ती वक्रता नहीं दिखलाता लेकिन यदि जिलेटिन की पतली पर्त द्वारा यदि अग्रक को उचित अवस्था में पुनः स्थापित कर दिया जाय तो नवोद्भिद प्रकाश-अनुवर्ती अनुक्रिया की शक्ति ग्रहण कर लेता है। पुनः स्थापित अग्रक के एक-

पार्श्विक प्रदीप्ति वर्धन प्रदेश में इस प्रकार की वक्रता लाती है कि अग्रक प्रकाश की ओर मुड़ जाता है। अतः यह अनुमान किया जाता है कि एकपार्श्विक प्रदीप्ति के फलस्वरूप जो उत्तेजन होता है उससे नवोदभिद की पत्ती के अग्रक में स्थित ग्राही उपकरण में हार्मोन का उत्पादन होता है और यह हार्मोन जिलेटिन से होकर अग्रक से विसरित होता है और प्रेरक क्षेत्र में पहुँचता है और दोनों पार्श्वों की वृद्धि की दर में उन परिवर्तनों को प्रेरित करता है जो पत्ती की वक्रता लाने में सफल होते हैं। संदेश के अभिग्रहण से दोनों पार्श्वों की वृद्धि की दर में क्यों परिवर्तन होता है यह तथ्य अस्पष्ट है। यह संभव है कि हार्मोन की भिन्न-भिन्न मात्रायें दो भिन्न-भिन्न पार्श्वों को जाती हैं और जैसे कि कोई अशुभ सूचना की छोटी मात्रा उत्तेजक हो सकती है और अधिक मात्रा कष्टकारक हो सकती है ठीक उसी प्रकार हार्मोन की भिन्न-भिन्न मात्राओं से भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं।

जो बात प्रकाश-अनुवर्ती संदेश के लिए सत्य है वही गुरुत्वानुवर्ती संदेश के लिए भी है। एक दूसरे की भाँति रासायनिक संदेश है। मूल अग्रक के अलग हो जाने के परिणामस्वरूप गुरुत्वानुवर्तन का ह्रास हो जाता है। ग्राही के अलग हो जाने से उद्दीपन पंजीकृत नहीं होता, लेकिन यदि विच्छेदित अग्रक जिलेटिन द्वारा अपने स्थान में पुनः स्थापित कर दिया जाय तो पहले की भाँति गुरुत्व उद्दीपन के सम्मुख जड़ के उदभासन से गुरुत्वानुवर्ती वक्रता होती है। समुण्ड जड़ मुड़ती है जब तक कि अग्रक एक बार ऊर्ध्वाधर अधोमुखी नहीं हो जाता।

इस खोज के बहुत पहले ही कि प्रकाश तथा गुरुत्व के उद्दीपनों के प्रति तने, जड़ें व पत्तियों के सोद्देश्य अनुक्रिया रासायनिक सन्देशों द्वारा होते हैं, यह ज्ञात हो चुका था कि कुछ दूसरे पौधों की गतियाँ रासायनिक उत्तेजन के परिणाम हैं। विशिष्ट रासायनिक पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया करने की शक्ति, यदि सब में नहीं, तो बहुत निम्न श्रेणी के जीवों में होती है। उदाहरणार्थ, अमीबा को उसके समीप सोख्ता कागज की एक गोली को मांस के सत्व में भिगो कर रखने से उसकी पादाभी गति की दिशा बदलने को विवश किया जा सकता है। सत्व से विसरित पदार्थ द्वारा उत्तेजित अमीबा गोली की दिशा में एक जीवद्रव्यी उद्वर्ध (पादाभ) उत्पन्न करता है और इसका काय पादाभ में बहकर गोली को जल्दी ही परिग्रहण करता है जो उसके शरीर में रिक्तिका में पड़ा हुआ दृष्टिगोचर हो सकता है। यदि मांस के सत्व के स्थान पर गोली को टैनिन के घोल या सिल्वर नाइट्रेट के घोल में भिगोया जाय तो अमीबा धीरे-धीरे इससे दूर हट जाता है।

मुक्त गतिमान जीवों की दैशिक गतियाँ जो विशिष्ट रासायनिक पदार्थों की

ओर या उनके विपरीत होती है, रसायन अनुचलनी (chemotactic) गतियाँ कहलाती हैं। रासायनिक उद्दीपन के प्रति अनुचलन अनुक्रिया के प्रमुख उदाहरणों में वे हैं जो मॉस और पर्णांगों के नर जनन कोशिकाओं द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। ये कोशिकाएं जो पुमणु कहलाते हैं, प्रत्येक एक सूक्ष्म एककोशिक पक्ष्माभिकी प्रोटोप्लास्ट का बना होता है। स्त्री जनन कोशिका, जिससे पुमणु का संलयन होना आवश्यक है, ताकि निषेचन-क्रिया हो सके, परिपक्व होने पर सूक्ष्म फ्लास्क के आकार के मादा जननेंद्रिय, जिसको स्त्रीधानी कहते हैं, की पेंदी में स्थित रहती है। इसकी ग्रीवा स्वतंत्र सिरे पर खुली होने पर जलमय श्लेष्मकी पदार्थ से भरी होती है। पुमणु स्त्रीधानी की ग्रीवा में प्रवेश करते हैं और उनमें से एक अपने साथियों से आगे बढ़ कर अंड-कोशिका तक पहुँचता है और उसके साथ संलीन हो जाता है। मार्ग केवल सांयोगिक भ्रमण पर नहीं अपितु एक निश्चित संकेत का अनुसरण करने पर मिलता है। संकेत एक द्रव्य पदार्थ होता है। स्त्रीधानी की ग्रीवा से पानी के पटल में होकर एक विशिष्ट पदार्थ विसरित होता है जो पौधे को ढक लेता है जिस पर जननेद्रियाँ स्थित होती हैं। उस पटल पर पुमणु लक्ष्य विहीन दिशा में तैरते रहते हैं जब तक कि स्त्रीधानी से विसरित संदेशवाहक उन तक पहुँचता है और उनका अधिक सांद्रण के स्थान की ओर मार्ग-दर्शन कराता है जब तक कि वे स्त्रीधानी के ग्रीवा तक न पहुँच जायँ। एक के बाद दूसरे रासायनिक पदार्थों का प्रभाव देखने से यह सिद्ध हो चुका है कि मॉस के स्त्रीधानी द्वारा स्रावित हार्मोन इक्षु शर्करा तथा पर्णांगों द्वारा स्रावित पदार्थ मैलिक अम्ल है।

पुष्पी पादपों में भी विशिष्ट रासायनिक पदार्थों के प्रति अनुक्रिया की शक्ति उन प्रक्रमों में भाग लेती है जो निषेचन तथा परागण के मध्यवर्ती तथा बीज व फल के पकने एवं निषेचन के मध्यवर्ती होते हैं। यद्यपि यह सभी पौधों के लिए सत्य है, लेकिन यह आसानी से उन पौधों में प्रदर्शित किया जा सकता है जिनके फूल में संवेदी वर्तिकाग्र होते हैं। मिमुलस कार्डीनेलिस इस प्रकार का एक पौधा है। इसमें द्विपालिक वर्तिकाग्र होते हैं। पालियों को हल्के से रगड़ने से वे एक साथ सिकुड़ कर बन्द हो जाती हैं। इसी प्रकार पराग के उन पर गिरने से वे बन्द हो जाते हैं। विभिन्न उद्दीपनों के प्रति वर्तिकाग्री पालियां विभिन्न प्रकार का व्यवहार करती हैं। बालू के कुछ कण या मृत पराग के कण यदि पालियों पर पड़ जायं तो वे सिकुड़ कर बन्द हो जाते हैं, परन्तु पालियां जल्दी ही खुल जाती हैं। इसी प्रकार, यदि दूसरी स्पीशीज का जीवित पराग उन पर रखा जाय तो वे अस्थायी रूप से बन्द हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि पौधे के स्वयं के पराग की यथेष्ट मात्रा वर्तिकाग्री पालियों पर रखी जाय तो

वे बन्द हो जाते हैं और फिर नहीं खुलते। इन विभिन्न व्यवहारों की व्याख्या इस प्रकार है कि दो प्रकार के उद्दीपनों के लिए पालियां संवेदी हैं। उनकी संवेदी पृष्ठ को केवल रगड़ने मात्र से, उदाहरणार्थ बालू या परागकणों के द्वारा, बन्द होने की गति पैदा होती है। सम्पर्क के प्रति अनुक्रिया तथापि शीघ्र जर्जरित हो जाती है और पालियां पुनः खुल जाती हैं। लेकिन वर्तिकाग्र रासायनिक उद्दीपन के लिए भी संवेदी है और यदि उद्दीपन ठीक प्रकार का हो और पर्याप्त रूप से प्रबल हो तो पालियां बन्द होने की गति करने के पश्चात् मानो निद्रावहित हो जाती हैं और सम्पर्क उद्दीपन के प्रभाव के क्षय होने के उपरान्त भी खुलने की शक्ति खो बैठते हैं। पालियों का रासायनिक एवं यान्त्रिक उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करने का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि पराग का जलीय सत्व मिमुलस कार्डीनेलिस के वर्तिकाग्री पालियों को बन्द करने की क्षमता रखता है और वे बन्द ही रहते हैं।

फलों के पकने के समय प्रायः बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। दल मुरझा जाते हैं, अंडाशय फूल जाता है, और इसकी भित्तियों में संरचनात्मक परिवर्तन हो जाते हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। यह निश्चित ही है कि ये सब परिवर्तन कुछ विशेष रासायनिक पदार्थों के प्रति अनुक्रिया की प्रकृति के हैं जिनमें से कुछ पराग या पराग-नलिकाओं द्वारा स्रावित होते हैं। कुछ पौधों के फूल, उदाहरणार्थ ऑर्किड के, निषेचन के फलस्वरूप रंग में परिवर्तन प्रदर्शित करते हैं। सिप्रिपीडियम लियेनम के कुछ संकरों के पुष्प श्वेत होते हैं, लेकिन निषेचन के उपरान्त उनका रंग बदल कर सरसों के समान पीला हो जाता है। फेलेनोप्सिस ल्यूडिमैनियाना के पुष्प परागण के उपरान्त तीव्र हरे रंग के हो जाते हैं। इससे भी अधिक विलक्षण बात यह है कि औन्सिडियम फ्लैक्सुओसम के पुष्प अपने वर्तिकाग्र पर उनके स्वयं के पराग गिरने के कारण मृत हो जाते हैं। वे पर-परागण के हेतु मर जाते हैं। साधारण फलों में रासायनिक उद्दीपन के सुदूरवर्ती प्रभावों के उदाहरण मिल सकते हैं। ककड़ी की कुछ किस्में परागित न होने पर भी फल परिवर्धित करती हैं; लेकिन बीजरहित फल परागित फूलों के द्वारा परिवर्धित फलों के समान बड़े नहीं होते। तथापि, यदि वर्तिकाग्र पर परागकण इतनी कम मात्रा में गिरें कि सब अंड कोशिकाओं के निषेचन के लिए यथेष्ट परागकण न हों तो ककड़ी का बिगड़ा रूप हो जाता है। वृन्त का सिरा, अर्थात् वर्तिकाग्र से बहुत दूर का सिरा, स्वतंत्र सिरे से अधिक पतला होता है। जहाँ परागकण पहुँचने में असफल रहे वहाँ फल फूलना बन्द हो जाता है। सेव भी कुरूप हो जाते हैं, जैसा कभी-कभी होता है, जब कुछ बीजांड निषेचित नहीं होते। फल-भित्ति का वह भाग जो अनिषेचित बीजांडों के

समीप होता है उन भागों की अपेक्षा कम वृद्धि करता है जो निषेचित बीजांडों के समीप होता है।

जब रासायनिक उद्दीपनों के सभी उदाहरणों पर विचार किया जाता है तो कोई सन्देह नहीं रह जाता कि रासायनिक संदेश जो एक पौधे द्वारा किसी सदस्य या ऊतक से दूसरे के लिए भेजे जाते हैं अनेक तथा प्रबल होते हैं। वे समन्वय को प्रभावित करने में बहुत बड़ा भाग लेते हैं। अधिकांश आधुनिक अन्वेषण इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। यह एक विख्यात तथ्य है कि बहुत से भाग, यद्यपि वे ऐसी कोशिकाओं के बने होते हैं जो साधारण परिस्थितियों में कभी भी विभाजित नहीं होते, लेकिन यदि यांत्रिक आघात से उद्दीपित किये जायँ तो वे विभाजन की शक्ति ग्रहण कर लेते हैं और नये ऊतक उत्पन्न करते हैं। बाग के बहुत से पौधे कलमों द्वारा नियमित रूप से प्रवर्धित किये जाते हैं। उनसे लिये हुये तने के छोटे टुकड़े जड़ पैदा कर लेते हैं और नया पौधा उत्पन्न करते हैं। कुछ पौधे, जैसे ऐंकूसा और पोस्त की जड़ की कलमें सामान्य रूप से अच्छा कार्य करती हैं और कभी-कभी स्तम्भ-कलमों से अच्छा कार्य करती हैं, और कभी-कभी बीगोनिया, ग्लोक्सीनिया इत्यादि में पर्ण कलमों से कायिक प्रवर्धन होता है। इन सब स्थितियों में पुनरुद्भवन पूर्ण होता है। स्तम्भ कलम अपने आहत सतह को उपशमन करने के उपरान्त अपस्थानिक जड़ों को उत्पन्न करता है। जड़ कलमें अपस्थानिक कलिकाएं उत्पन्न करती हैं, और यह भी सम्भव है कि नई जड़ों को भी, कलिकाओं को आंगिक ऊपरी सिरे से और जड़ों को निचले सिरे से।

तथापि पौधों के सभी भाग नये सदस्यों को पुनर्योजित करने में समान रूप से योग्य नहीं होते। जैसा कि कुछ पेड़, उदाहरणार्थ विलो, छाँटे जाने पर अपस्थानिक प्ररोहों को उत्पन्न कर सकते हैं, लेकिन दूसरे पौधों में यदि उनकी शाखाएं काट दी जायँ तो वे अपने सतह को उपशमन करने के अतिरिक्त कुछ अधिक नहीं कर सकते। उपशमन विधि बड़ी जटिल है, और बड़ी शाखा में इतनी मन्द गति से होती है कि काष्ठी तत्वों के केन्द्र की ओर धीरे-धीरे अग्रसर होते हुए काष्ठी ऊतकों के चक्र के बाद चक्र द्वारा खुली सतह को पूरी तरह ढक लेने में इसको वर्षों लग सकते हैं, और यह मुख्यतः कटी सतह के नीचे एधा की क्रियाशीलता द्वारा उत्पादित होते हैं। यांत्रिक आघात के पश्चात् पौधों के दूसरे भाग पुनरुद्भवन की थोड़ी शक्ति दिखलाते हैं, वे केवल काग की परतों द्वारा घाव को भर सकते हैं। कटने से आहत कोशिकाएं सूख जाती है और मृत हो जाती हैं। क्षय हुई सतह से नीचे की एक या अधिक कोशिकाओं की परतें विभाजन की शक्ति ग्रहण करती हैं। प्रत्येक कोशिका मुक्त

पृष्ठ के समानान्तर भित्तियों द्वारा विभाजित होती हैं और तीन या चार कोशिकाओं की उदग्र सोपान बनाती हैं। प्रत्येक पंक्ति की मध्य कोशिका या कोशिकाएं एक नियमित ईंट की आकृति धारण करती हैं, और ईंट की आकृति वाली कोशिकाओं की परत सतत हो सकती है, और उस भित्ति के समान होती है जो सतह के नीचे आहत ऊतकों के ठीक आरपार हो। इस प्रकार बनी हुई कोशिकाओं की परत काग-एधा (cork cambium) कहलाती है। प्रत्येक कोशिका तनु भित्ति वाली, केन्द्रक युक्त व कोशिकाद्रव्य से परिपूर्ण होती है। काग-एधा कोशिकाएं निरन्तर अनुप्रस्थ रूप में विभाजित होती हैं जिससे ईंट की आकृति की कोशिकाओं की एक बढ़ती हुई सोपान बन जाती है। नीचे वाली विभाजन की शक्ति स्थापित रखती है, लेकिन कोशिकाओं की धरातलीय ऊपरी परतों की कोशिकाएं कोशिकाद्रव्य तथा केन्द्रक का त्याग कर देती हैं, और जैसे-जैसे वे मृत होते जाते हैं अपनी भित्तियों के ऊपर और भीतर कागमय पदार्थ (सुबेरिन) के रस को स्रावित करती हैं जिससे अन्ततः काग की एक परत-सी बन जाती है जिससे आहत सतह के नीचे की कोमल ऊतक की शुष्कन से रक्षा होती है और घाव भर जाता है।

आघात के पश्चात् काग के बनने की क्रिया पौधों में सामान्यतः पायी जाती है। कभी-कभी यह परजीवी कवकों के आक्रमण के परिणामस्वरूप भी होता है, और तब वनस्पति विज्ञानवेत्ता एक सूक्ष्मदर्शी की सहायता से परजीवी तथा परपोषी पौधे के मध्य संघर्ष को देख सकता है। जैसे ही कवक तने या पत्ती के ऊतकों में अन्दर प्रवेश करता है, इसके पहुँचने की रासायनिक सूचना अक्षत या कम प्रभावित कोशिकाओं को दी जाती है। वे काग की परतें बना कर संदेश के प्रति अनुक्रिया करते हैं, और पौधे का जीवन उसके ऊपर निर्भर रहता है जो विजयी होता है—अर्थात आक्रमणकारी कवक या पौधे के रक्षी ऊतक। उदाहरणार्थ, लार्च कैंकर को देखने से यह ज्ञात होता है कि कैंकर के आक्रमण से आहत वृक्ष केवल निष्क्रिय शिकार के समान व्यवहार नहीं करता, अपितु आक्रमणकारी कवक को रोकने के लिए कागीय बाधाओं की श्रेणियां खड़ा कर मानो निरन्तर युद्ध करता है।

इसी प्रकार जलवायु की सन्निकट प्रतिकूल अवस्थाओं के प्रति रक्षा की विधि हमारे बहुत से पेड़ों तथा झाड़ियों द्वारा कार्यान्वित की जाती है। हर वर्ष ग्रीष्म काल के अन्त में और जाड़ा निकट आने की सूचना मौसम द्वारा पाने से बहुत पहले ही पौधे कागमय परतें बना लेते हैं, जिसको हर वसन्त ऋतु में निकाल सकते हैं, या वार्षिक रूप से एकत्रित हो कर मोटी खुरदरी छाल को जन्म देते हैं।

जाड़ा प्रारम्भ होने के पूर्व काग के बनने और समाप्त होने के लिए समय के

भीतर संदेश क्या संकेत भेजता है, यह ज्ञात नहीं है। यह सम्भव है कि मिट्टी का तापमान, जो इंगलैंड में जून में गिरना प्रारम्भ हो जाता है, घटना की एक श्रृंखला बनाता है जो संदेशों को उन ऊतकों तक पहुँचाने का कार्य करता है जो काग को बनाते हैं और उनको कार्य करने के लिए उत्तेजित करता है। अथवा यह भी सम्भव है कि सर्वदा बढ़ने वाला दबाव जो काष्ठ सिलिंडर द्वारा डाला जाता है श्रृंखला को उत्तेजित करता है। अब दिये जाने वाले उदाहरणों से कदाचित् यह सिद्ध हो जायगा कि उपर्युक्त व्याख्या सत्य है। पौधों के कुछ भागों—आलू के कन्द और गाँठ गोभी के फूले हुए स्तम्भ—में आघात के पश्चात् काग का निर्माण होता है। काग का निर्माण घाव के बहते पानी से अच्छी तरह से धोने से पूर्णरूपेण या अंशतः रोका जा सकता है। इस प्रकार धोया हुआ घाव अच्छी तरह नहीं भरता, लेकिन गाँठ गोभी में यह घाव भरा जा सकता है यदि फूले तने को पीस कर कटे सतह पर लेपांकन कर दिया जाय। आहत सतह के नीचे की कोशिकाएं रासायनिक संदेश द्वारा शीघ्र क्रियाशील की जा सकती हैं जो उन तक मृत एवं आहत कोशिकाओं द्वारा पहुँचायी जाती हैं। कोशिकाओं के धोने से संदेशवाहक धुल जाते हैं। घातक घाव से आहत ऊतकों के कार्य में यदि कोई बाधा न डाली जाय तो उनका अन्तिम कार्य 'घाव हार्मोन' का निर्माण करना है जो उपशमन का संदेशवाहक है, और यह उनसे विसरित होकर नीचे जीवित कोशिकाओं तक पहुँचता है, और पुन. उनको क्रियाशील और विभाजित होने में उत्तेजित करता है। इस प्रकार उनकी मृत अवस्था में भी पीड़ित कोशिका पादप राष्ट्रमंडल के कल्याण की देखभाल करती है।

जब पादप हार्मोन से सम्बन्धित सभी तथ्यों पर विचार किया जाता है तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पादप राष्ट्रमंडल की सरकार रासायनिक संदेशों के द्वारा चलाई जाती है तथा जब कि जन्तु काय अन्योन्य संचार का द्विमार्गी ढंग अपनाते हैं लेकिन पादप काय केवल एक ही विधि का उपयोग करता है। जन्तुओं में जो सन्देश भेजे जाते हैं वे दो प्रकार के होते हैं : एक तो द्रुत सन्देश जो तंत्रिका-तन्तुओं द्वारा भेजे जाते हैं, और जिनकी तुलना हम तार संदेशों को निश्चित पतों पर मुख्य लाइनों द्वारा भेजे जाने के ढंग से कर सकते हैं, दूसरे मन्द भौतिक सन्देश, अर्थात् 'हार्मोन' जिसको रक्त-धारा सर्वत्र पहुँचाती है। लेकिन यद्यपि बाद वाले सन्देश इसके सभी भागों तक पहुँच सकते हैं लेकिन वे शरीर के कुछ विशेष भागों द्वारा ही समझे जा सकते हैं, अर्थात् वे केवल कुछ ऊतकों में विशेष प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करते हैं। इन सन्देशों की तुलना अपूर्ण पता लिखे होने वाले पत्र से की जा सकती है जिसको कि पोस्टमैन अपने चक्कर पर अपने साथ ले जाता है और हर द्वार पर उसे प्रस्तुत करता है जब तक कि संयोगवश वह उस घर

में पहुँच जाय जहाँ उसकी आशा की जा रही हो और पत्र पाने वाला लेख को पहचान लेता है।

वर्तमान समय में यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि पौधों और जन्तुओं के अपसारी रूप और नियति इस कारण है कि पौधों में जन्तुओं के समान कोई तंत्रिका तंत्र का अभाव है। परन्तु कम से कम यह दृढ़ विश्वास के साथ कहा जा सकता कि रासायनिक संदेश पादप व्यवहार के निर्धारण में और पादप राष्ट्रमंडल के एकीकरण में बहुत बड़ा भाग लेते हैं जो जन्तु जगत् की अपेक्षा कम नहीं होता।

कोई भी जिसने पौधे के व्यवहार की इस कहानी का अनुसरण किया है अब अधिक समय तक मनुष्यों में प्रचलित इस विचार का सत्कार न करेगा कि पौधे आलसी और निष्क्रिय जीवन व्यतीत करते हैं। यह स्पष्ट है कि वे, और उनके सभी भाग, निरन्तर सन्देश प्राप्त करने में संलग्न हैं जो उनकी क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। जीवित कोशिकाएं सर्वदा संदेशों को प्राप्त करती रहती हैं और उनके पंजीयन का उपकरण इतना सूक्ष्म होता है कि वे उन संदेशों को भी प्राप्त कर सकते हैं जिसकी ओर से हम अनभिज्ञ से रहते हैं। सबसे अधिक मृदु ग्राहियों में से एक प्रतान हैं। यदि लगभग $\frac{१}{४०००}$ मिग्रा० भार के तुल्य महीन जाले का एक डोरा झुमकलता के प्रतान पर रखा जाय और वह उस पर झूलता रहे तो प्रतान कुन्तल गति प्रदर्शित करता है। इसकी उपस्थिति का ज्ञान कराने के लिए डोरे का भार इससे दस गुना अधिक होना चाहिए। मनुष्य की आँख प्रकाश के स्रोत में से अधिक दीप्त को तीव्रता से पहचान सकती है। युवावस्था में हम $\frac{१}{१००}$वाँ भाग का अन्तर देख सकते हैं, अर्थात् ९९ और १०० के कैन्डिल शक्तियों वाले लैम्पों के बीच अन्तर मालूम कर सकते हैं। अवस्था बढ़ने पर दृष्टि की तीव्रता कम हो जाती है और केवल $\frac{१}{३०}$ भाग का अन्तर अर्थात १०० और ९६·७ कैन्डिल शक्तियों वाले लैम्पों के मध्य में अन्तर पहचाना जा सकता है। पौधे की एक पत्ती एकपार्श्विक प्रदीप्ति के प्रति प्रतिक्रिया कर यह प्रदर्शित करती है कि यह $\frac{१}{७५}$वें भाग का अभिलेखन अर्थात् ९८.५ और १०० कैन्डिल शक्ति के लैम्पों के बीच का अन्तर ज्ञात कर सकती है। फिर यद्यपि मनुष्य की आँख अत्यन्त संवेदी है, फिर भी यह सन्देहात्मक है कि यह ज़ई के नवोद्भिद की पत्ती के अग्र भाग की अपेक्षा अधिक संवेदी है। एक सेकंड के $\frac{१}{२०००}$वें भाग तक पड़ने वाले प्रकाश का भी पौधा अभिलेखन कर लेता है। यदि सेकंड के इस अंश के लिए प्रकाश में खुली पत्ती वक्र नहीं होती तो भी यह दिखलाना आसान है कि वातावरण के परिवर्तन से ग्राही के ऊपर प्रभाव पड़ता है। अग्र भाग के एक पार्श्व को एकांततरः प्रकाश और अंधकार की ओर प्रस्तुत कर तथा प्रकाश की ओर उसे अल्प काल तक उद्भासित

कर, बशर्त की अंधकार के सम्मुख उद्भासन का मध्यवर्ती समय बहुत अधिक न हो, यह देखा जाता है कि पौधा तुरन्त ही ठीक उसी प्रकार से वक्र होना प्रारम्भ करता, है जैसा कि यह एकपार्श्विक प्रकाश की ओर निरन्तर उद्भासित किये जाने पर होता है। ग्राही प्रत्येक सूक्ष्म उद्दीपन का अभिलेखन करता है। इसकी जीवित कोशिकाएं उत्तेजित होती हैं। यदि उत्तरोत्तर उत्तेजनाएं एक दूसरे के बाद धीमी गति से नहीं होती तो वे जुड़ कर और एक निश्चित परिमाण तक पहुँच कर एक संदेश को भेजती हैं जो प्रेरक तक पहुँच कर इसमें प्रकाश-अनुवर्ती वक्रता लाता है।

यह विलक्षण बात है कि इतना सूक्ष्मग्राही अभिलेखन उपकरण जैसा कि जई के नवोद्भिद के अग्र भाग में होता है पत्ती को सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा जाँच करने पर भी इसकी संरचना के ढंग का कोई संकेत नहीं मिलता। लेकिन यह है ऐसा ही। फिर भी पौधे के अन्य ग्राहियों के बारे में अन्वेषण हो चुका है। उदाहरणार्थ, जड़ों के अग्रक में स्थित जो ग्राही स्थिति परिवर्तन का अभिलेखन करता है वह मूल-छद के ऊतकों में स्थित रहता है। परतों के श्रेणियों की कोशिकाएं जो मूल-छद का निर्माण करती हैं केन्द्रक युक्त होती हैं तथा जीवद्रव्य से परिपूर्ण होती हैं। उनमें बहुत से मंड कण होते हैं जिनका व्यवहार पौधे के दूसरे भागों में पाये जाने वाले मंड कणों से भिन्न होता है। इसके आरक्षित खाद्य पदार्थ के कार्य के अनुसार जब हरे पौधे निराहार रखे जाते हैं; जैसा कि जब उनको अंधकार में रखा जाता है, तो मंड कण धीरे-धीरे लोप होते जाते हैं। मूल-छद के मंड कण इस प्रकार के नहीं होते। वे बहुत दिनों तक निराहार रहने पर भी बने रहते हैं और जब तक वे बने रहते हैं जड़ गुरुत्वानुवर्ती अनुक्रिया करने में समर्थ होती है। परन्तु जब मंड कण जड़ के अग्रक की कोशिकाओं से लुप्त हो जाते हैं तो गुरुत्वानुवर्तन की शक्ति भी विलुप्त हो जाती है और अग्रक में नवीन मंड कणों के बनने पर पुनः प्रकट हो जाती है।

मूल अग्रक के मंड कणों की दूसरी प्रमुख विलक्षणता उनकी गतिशीलता है। सामान्य रूप से पौधे की कोशिकाओं में स्थित मंड कण कोशिकाद्रव्य में इस प्रकार सन्निहित रहते हैं कि वे आसानी से स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं करते; लेकिन मूल अग्रक के मंड कण इतने गतिशील होते हैं कि उदग्र के सापेक्ष में जड़ की किसी स्थिति में परिवर्तन से मूल-छद के मंड कणों में गति उत्पन्न हो जाती है। किसी तख्ते पर रखे हुए संगमरमर के टुकड़े उसको टेढ़ा करने पर जिस प्रकार लुढ़कने लगते हैं ठीक उसी प्रकार चल मंड कण उस दीवार में थोड़ी-सी ढलान होने पर लुढ़कने लगते हैं जिस पर कि वे स्थित रहते हैं।

जंतुओं, उदाहरणार्थ क्रस्टेशिया, इत्यादि, में संतुलन और अभिविन्यास संतुलन-

पुटी (statocysts) से ज्ञात विशिष्ट ग्राहियों द्वारा होता है। एक संतुलन-पुटी मुख्य रूप से सूक्ष्म खोखले कोशिकाद्रव्यी गोले का बना होता है। गोलीय स्थान के भीतर एक संतुलनाश्म (statolith) होता है जो एक खड़िया या अन्य ठोस पदार्थ की संहति होता है। जन्तु की प्रत्येक गति से संतुलनाश्म जीवित फर्स के एक भाग से दूसरे भाग में लुढ़कता है। यह विश्वास करने योग्य है कि संतुलनाश्म के दबाव के कारण कोशिकाद्रव्य के किसी दिये हुए क्षेत्र की विरूपता के फलस्वरूप उत्तेजना उत्पन्न होती है और इसके कारण उपयुक्त समायोजन की गति होती है। जब संतुलन-पुटी में एक कोशिका होती है तो इसको स्टैटोसाइट कहते हैं। इस शब्द को वनस्पति विज्ञान वेत्ताओं ने अपनाया है और मूल-अग्रक के कोशिकाओं के मंडयुक्त ग्राहियों के लिए उपयोग किया है। वास्तव में संतुलनाश्म में मंड की आवश्यकता नहीं होती। कुछ पौधे, उदाहरणार्थ, घासों के पलाल उदग्र अवस्था से विस्थापन के प्रति बहुत ही संवेदी हैं और पलाल की गाँठों में दोनों मंड कण तथा सूक्ष्म कैलसियम आक्सेलेट के क्रिस्टल कुछ कोशिकाओं के समूहों में स्थित होते हैं और गुरुत्व उद्दीपन को ग्रहण करते हैं।

निपुण एवं प्रवीण अनुसन्धानकर्ताओं ने पत्तियों के ग्राही उपकरण की प्रकृति की खोज करने का दावा किया है जो प्रकाश की दिशा में परिवर्तन का अभिलेखन करता है, और जिससे कि उन घटनाओं का क्रम जारी हो जाता है जिससे कि पत्ती की सतह का अन्ततः पुनः समायोजन होता है और पत्ती एक बार पुनः प्रकाश के समकोणिक दिशा में आ जाती है। प्रत्यक ग्राही या आँसेली में एक पृष्ठ कोशिका होती है, जिसकी बाहरी भित्ति उत्तल होने के कारण लेन्स के समान कार्य करती है और कोशिका के आधार भित्ति पर प्रकाश के बिन्दु को संकेन्द्रित करती है। जब प्रकाश उदग्र रूप से क्षैतिज पत्ती पर पड़ता है तो हर बाह्यत्वचा की कोशिका की आधार भित्ति पर बिन्दु संकेन्द्रित हो जाता है, और फिर उत्तेजन नहीं होता। लेकिन यदि प्रकाश पत्ती पर तिरछा पड़ता है तो बिन्दु केन्द्रित नहीं होते बल्कि केन्द्र के एक ओर रहते हैं। उद्दीपन के अभिलेखन और उत्तेजन के लिए विस्थापन पर्याप्त होता है जिसके कारण समायोजन की गति होती है।

कुछ प्रतानों के पृष्ठीय कोशिकाओं की बाह्य भित्तियों में सूक्ष्म गर्त होते हैं, और उनकी क्रिया की विधि की तुलना एक ढोल की त्वचा या तने हुए चर्म-पत्र के व्यवहार से की जा सकती है। जिस प्रकार ढोल की त्वचा के अल्प स्पर्श से बहुत अनुरणन (reverberation) होता है उसी प्रकार कोशिका-भित्ति के पतले स्थानों पर अल्प दबाव उस जीवद्रव्य को भेज दिया जाता है जो गर्त पर चिपका

रहता है और ग्राही की तरह कार्य करता है। इसी प्रकार दूसरे उच्चतर संवेदी संरचनाओं, उदाहरणार्थ बरबेरिस इत्यादि के पुंकेसर और वीनस फ्लाई ट्रैप या डाइओनिया और दूसरे कीटाहारी पौधों में कुछ ध्वनिकारी पटरियों के समान व्यवस्था, अर्थात् कुछ कोशिकाओं की भित्तियों में पतले स्थान, होते हैं जिससे कि संवेदी कोशिकाद्रव्य, जो उनके नीचे स्थित रहता है, उद्दीपन का अभिलेखन कर लेता है और जिसके कारण गति होती है।

पादप ग्राहियों का यह संक्षिप्त अध्ययन कोशिकाद्रव्य की संवेनशीलता और उन विभिन्न प्रकार के उद्दीपनों को प्रदर्शित करता है जिनके प्रति जीवद्रव्य अनुक्रिया करते हैं। उद्दीपन वे संकेत स्तम्भ है जिनके द्वारा पौधा अपने मार्ग की क्रमानुगति ठीक रखता है। मार्ग से थोड़ा भी विचलित होने पर चेतावनी का संकेत दिया जाता है और भ्रमित पौधा ठीक रास्ते पर आ जाता है। जिस प्रकार एक साइकिल चलाने वाला समकारी चक्करों की शृंखला द्वारा एक सीधे मार्ग का अनुसरण करता है ठीक उसी प्रकार पौधा भी करता है। बाह्य जगत से निरन्तर सम्पर्क रखने से, और एक भाग का दूसरे भाग से रासायनिक सम्पर्क के कारण पादप राष्ट्रमंडल अपने अस्तित्व को इतना स्थिर एवं समरस होकर स्थापित तथा प्रतिपादित करता है कि इसका प्रत्येक सदस्य निष्क्रिय विश्राम का जीवन व्यतीत करता प्रतीत होता है। परन्तु कवि के मर्मज्ञ नेत्र ने भी विज्ञानवेत्ता के धैर्यशील नेत्र के समान ही क्रियाशीलता के निरन्तर लहर को निहारा है जिससे जीवन प्रयत्न करता है और जीवित पदार्थ विकसित होते हैं।

विश्राम के जीवन को निहारो, यह बहा जाता है...
तीक्ष्ण जीवन इसके मार्ग को निर्देश करता है।

THE UNIVERSITY OF JAMMU
UNIVERSITY LIBRARY
JAMMU
Class No. 581
Book No. K 23 P
Accession No. 72279

DHANVANTRI LIBRARY
UNIVERSITY OF JAMMU
UNIVERSITY OF JAMMU, JAMMU